

INTERMEDIATE HINDI SELECTIONS

080 C.U.

REVISED EDITION

UNIVERSITY OF CALCUTTA 1942



Beu 2163

PRINTED IN INDIA

PRINTED AND PUBLISHED BY BHUPENDRALAL BANERJEE AT THE CALCUTTA UNIVERSITY PRESS, 48, HAZRA ROAD, BALLYGUNGE, CALCUTTA

1421 B.T .- October, 1942.- A.

95 2546



CONTENTS

	Prose	PAGES
21	त्रांस्—पंडित वालक्षण भट्ट	1-5
21	सुचाल शिचा—प्रतापनारायण मित्र	6-17
₹1	रामलीला—माधवप्रसाद मिश्र	17-29
181	ऋडि और सिडि—गोपालराम गहमरी	29-38
141	एक दुराशा—बाबू बालमुकुन्द गुप्त	39-45
€1	कवि श्रीर कविता—	
-	महावीरप्रसाद दिवेदी	45-69
91	आपत्तियों का पर्वत—केशवप्रसाद सिंह	70-82
51	समाज और साहित्य-श्यामसुन्दर दास	82-95
21	उत्साह—रामचन्द्र गुक्त	95-112
100	राजा भोज का सपना—राजा	
	शिवप्रसाद	112-137
188	भीषाष्ट्रमी—पुरुषोत्तमदास टंडन	138-149
१२।	TO THE PROPERTY OF THE PROPERT	150-170
१३।	दो बैलों की कथा—प्रेमचन्द	170-194
188	प्रेम-तर्—सुदर्भन	195-222
१५।	होली-सुभद्रा कुमारी चीहान	222-226
१६।	मानुषी—सियाराम श्रुण गुप्त	227-254
109	श्राचरण की सभ्यता—पूर्ण सिंह	255-277



[iv]

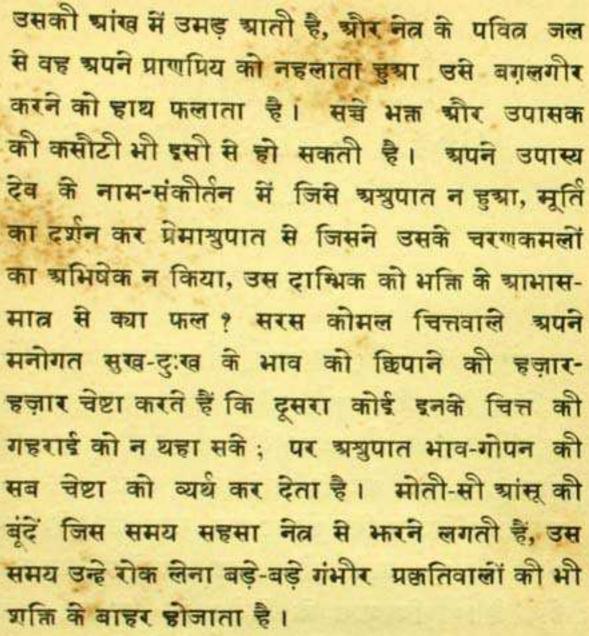
-	POETRY	PAGES
19,	कबीर की साखियां—कबीर	1-10
21	श्री उदव को मथुरा से ब्रज भेजते समय के	i
	कवित्त-जगन्नाधदास रत्नाकर	10-18
₹1	स्रदास के पद—स्रदास	18-29
81	त्रयोध्याकाण्ड—तुलसीदास	29-39
	(कवितावली से)	
41	रहीम-रत्नावली—रहीम	39-42
4 1	रसखान—रसखान	42-46
91	बिहारी के दोई—बिहारीलाल	47-49
51	गंगा और यसुना—'भारतेन्दु' हरियन्द्र	49-54
21	यशोदाविलाप—श्रयोध्या सिंह उपाध्याय	
	"हरिग्रीध"	54-64
201	वसन्त और वर्षा—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'	65-72
188	भ्रमर-दूत-सत्यनारायण 'कविरत्न'	72-82
१२।	विकट भट-मैथिलीशरण गुप्त	82-94
१३।	बालापन-सुमित्रानन्दन पंत'	95-99
281	वे दिन-महादेवी वर्मा	99-101

CENTRAL LIBRARY

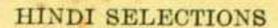
INTERMEDIATE HINDI SELECTIONS

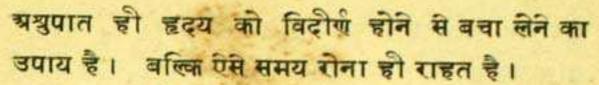
यांसू

मनुष्य के प्रशीर में आंसू भी गड़े हुए खुज़ाने के माफ़िक् हैं। जैसे कभी कोई नाजक वक्त आपड़ने पर संचित पूंजी ही काम देती है, उसी तरह हर्ष, शोक, भय, प्रेम इत्यादि भावों को प्रकट करने में जब सब इंद्रियां स्थगित होकर हार मान बैठती हैं, तब श्रांसू ही उन भावों को प्रकट करने में सहायक होते हैं। चिरकाल के वियोग के उपरान्त किसी दिली दोस्त से मुलाकात होती है, तो उस समय हर्ष और प्रमोद के उफान में अंग-अंग दीले पड़ जाते हैं; वाष्य-गद्गद कंठ रुंध जाता है; जिह्ना इतनी शिथिल पड़ जाती है कि उससे मिलने की खशी को प्रकट करने के लिये एक-एक शब्द मनों बोभ-सा मालम पड़ता है। पइले इसके कि शब्दों से वह अपना असीम आनंद प्रकट करे, सहसा आंसू की नदी

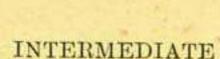


यदि सृष्टिकर्ता अत्यंत शोक में अश्रुपात को प्राक्षतिक न कर देता, तो वज्जपात-सभे दाक्ण दुःख के वेग को कीन संभाल सकता ? इसी भावार्थ को भवभूति ने यो कहा है कि जैसे—बरसात में तालाब जब लबालब भर जाता है, तो बांध तोड़ कर उसका पानी बाहर निकाल देना ही सुगम उपाय बचाव का होता है। इसी तरह अत्यन्त शोक से चोभित तथा व्याकुल मनुष्य का





कोई शुरबीर, जिसको रणचर्चा-मात्र सुन जोश आ जाता है और जो लड़ाई में गोली तथा बाण की वर्षी को फल की वर्षा मानता है, वीरता की उमंग में भरा चुआ युद्ध-यात्रा के लिये प्रस्थान करने को तैयार है। बिदाई के समय विलाप करते हुए अपने कुनवेवालों के आंस् के एक-एक बूंद की क्या क़ीमत है, यह वही जान सकता है। वह शशोपंज में पड़ आगे को पांव रख फिर इटा लेता है। वीर और करुणा ये दो विरोधी रस अपनी-अपनी और से उमड़-उमड़ देर तक उसे किंकर्तव्यतामूढ़ किए रहते हैं। ग्रांख में ग्रांसू उन्हीं अकुटिल सीधे सत्युक्षों के आते हैं, जिनके सचे सरल चित्त में कपट और कुटिलाई ने स्थान नहीं पाया है। निदुर, निर्देयी, मकार की आंखे, जिसके कहर कलेजे ने कभी पिचलना जाना ही नहीं, दुनिया के दुःख पर क्यों पसीजेंगी ? प्रकृति ने चित्त का आंख के साथ कुछ ऐसा सीधा सम्बन्ध रख दिया है कि आंखें चित्त की वृत्तियों को चट पहचान लेती हैं और तत्काल तदाकार अपने को प्रकट करने में देर नहीं करतीं, तो निश्चय हुआ कि जो बेकलेजे हैं, उनकी बैल-सी बड़ी-बड़ी आंखें केवल देखने ही को हैं, चित्त की वृत्तियों

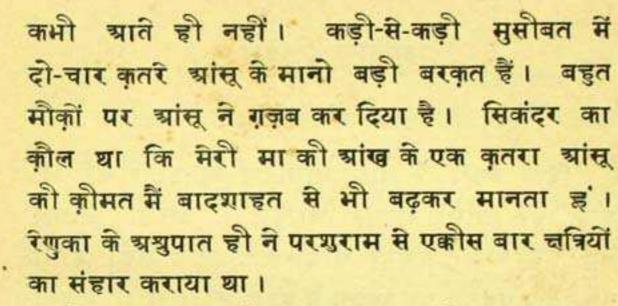


का उन पर कभी असर होता ही नहीं। चित्त के साथ आंख के सीधे सम्बन्ध को विहारी किव ने कई दोहों में प्रकट किया है। यथा—

"कोटि जतन की जै तक, नागरि नेह दुरै न;
कों देत चित चीकनो, नई कखाई नैन॥
दौं निगोड़े नैन ये, गहैं न चेत-अचेत;
हों किस कै रिस की करों, ये निरखत हंसि देत॥"
सतक के लिये लोग हज़ारों-लाखों ख़र्चकर
आलीशान रीज़े, मक़बरे, क़ब्नें संगमरमर या संगमूसा
की बनवा देते हैं; क़ीमती पत्थर, मानिक, ज़मुर्रद से
छों आरास्ता करते हैं; पर वे मक़बरे क्या उसकी
कह को उतनी राहत पहुंचा सकते हैं, जितनी उसके
दोस्त आंसू के क़तरे टपकाकर पहुंचाते हैं?

यांस् यांस् में भी भेद है। कितनों का पनीला कपार होता है, बात कहते री देते हैं। यद्धर उनके मुख से पीछे निकलेगा, यांस्यों की भड़ी पहले ही युक्त हो जायगी। वियों के जो बहुत यांस् निकलते हैं, मानो रोना उनके पास गिरों रहता है, इसका कारण यही है कि वे नाम ही की यबला यीर यधीर हैं। दुःख के वेग में यांस् को रोकनेवाला केवल धीरज है। उसका टोटा यहां हरदम रहता है। तब इनके यांस् का क्या ठिकाना! खल्याली धीरजवालों को यांस्

HINDI SELECTIONS



कितने ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें आंसू नहीं आते। इसलिये जहां पर बड़ी ज़रूरत आंसू गिराने की हो, तो उनके लिये प्याज़ का गहा पास रखना बड़ी सहज तरक़ीब है। प्याज़ ज़रा-सा आंख में छू जाने से आंसू गिरने लगते हैं।

"किसी को बैंगन बावले, किसी को बैंगन पत्य।"

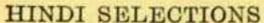
बहुधा आंसू का गिरना भलाई और तारीफ़ में दाख़िल है। हमारे लिये आंसू बड़ी बला है। नज़ले का ज़ोर है, दिन-रात आंखों से आंसू टपकते हैं। ज्यों-ज्यों आंसू गिरते हैं, त्यों-त्यों बीनाई कम होती जाती है। सैकड़ों तदबीरें कर चुके, आंसू का टपकना बन्द न हुआ। का जाने, बंगाल की खाड़ी-वाला समुद्र हमारे ही कपार में आकर भर रहा है? आंख से तो आंसू चला ही करते हैं। आज हमने लेख में भी आंसू ही पर क्लम चला दी। पढ़नेवाले इसे निरी नहसत की अलामत न मान हमें चमा करेंगे।



सुचाल शिचा

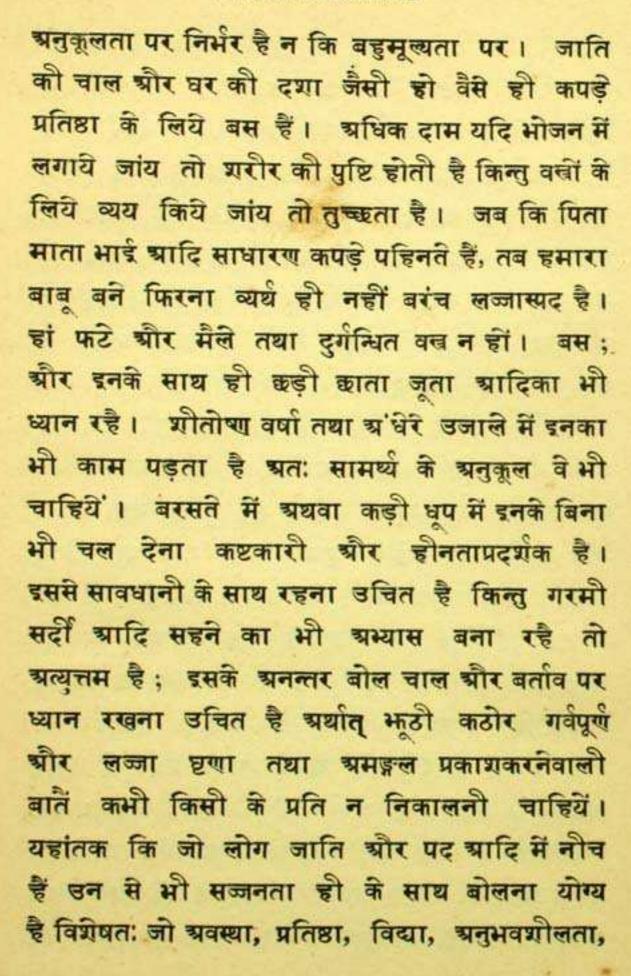
साधारण व्यवहार

नित्य कर्मीं के साथ साधारण व्यवहारीं पर भी बहुत ही ध्यान रखना चाहिये। इनका नियम भक्त होने से भी, यद्यपि साधारणतः कोई बड़ी हानि नहीं देख पड़ती, पर वस्तुतः है बहुत ही बुरा। एक न एक दिन इस रीति की उपेचा के कारण कोई न कोई आत्मिक, शारीरिक, सामाजिक चति ऐसी होती है कि चिरकाल तक चित्त को खेद रहता है। अतः जो लोग अपने जीवन को उत्तम बनाया चाहते हैं उन्हें इस बिषय में सावधान रहना उचित है। यह सावधानता अपने तथा अपने सम्बन्धियों के मन की प्रसन्नता और समय पड़ने पर परस्पर की साहाय्य-प्राप्ति का बड़ा भारी ग्रंग है। साधारण व्यवहार से इमारा अभिप्राय उन कामीं से है जो हमें नित्य अथवा बहुधा दूसरी के साथ करने पड़ते हैं। उनका नियम भी प्रायः सभी पढ़ने लिखनेवाले तथा पढ़े लिखों की सङ्गति में रहनेवाले जानते हैं। पर केवल जानने ही से कुछ नहीं होता। हमारे पाठकों को उनका पूर्ण अभ्यास रखना योग्य है। इसी से इस यहां पर लिखते हैं और श्राशा





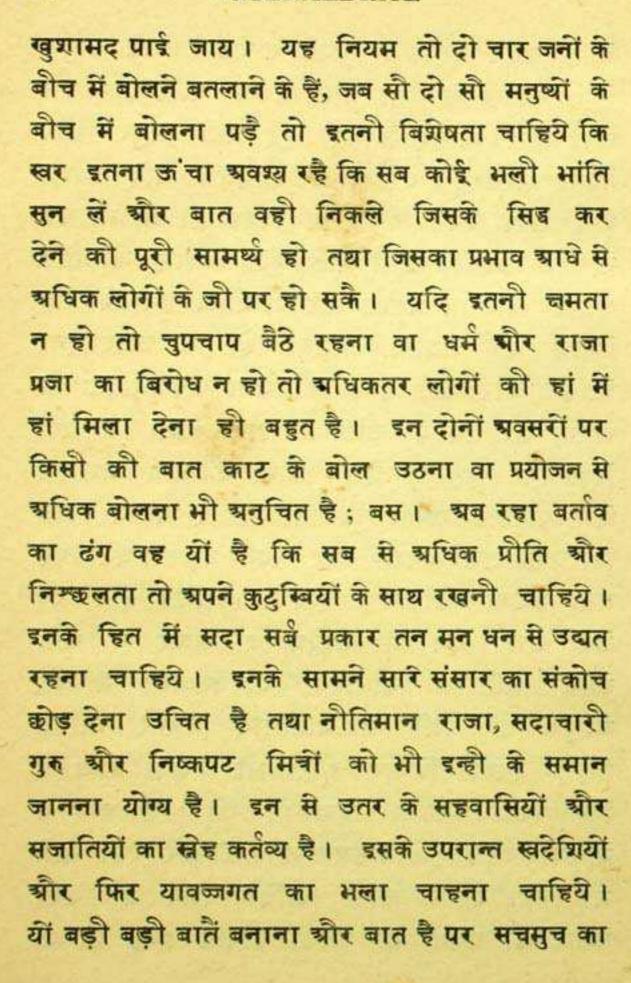
रखते हैं कि वाचकहन्द इसे अपने बर्ताव में लावेंगे और कभी दैवयोग से चूक पड़ जाय तो आगे के लिये अधिक सावधानी रक्वेंगे। वह बातें यह हैं, अर्थात् अपने वेष और वाणी को ऐसा बनाये रहना चाहिये जिससे किसी को अयदा न छत्पन हो जाय; घर के भीतर वा जिन लोगों से सब प्रकारका घराज सम्बन्ध है उनके सामने फटे पुराने वा कुछ मैले कपड़े पहने रहने में हानि नहीं है, पर घी तेल पसीना अथवा बरसाती सील की गन्ध उनमें भी न होनी चाहिये नहीं तो अपना और मिलने-वाले का मस्तिष्क क्षेत्र पावैगा; ऐसे अवसर पर इस्तपादादि का खुला रहना भी दूषित नहीं है पर यदि कहीं पर कोई घुणाकारक घाव वा फोड़ा इत्यादि हो तो आत्मियों के समुख भी किपाय ही रहना चाहिये। हां घर से बाहर थोड़ी दूर भी जाना हो तो सिर पांव पेट पीठ सब खच्छ वस्तों से भाच्छादित रखना उचित है जिसमें ऐसा कहने का अवसर न पड़े कि कपड़े अच्छे नहीं हैं फिर ग्रमुक के यहां क्यों कर जायं ? नहीं, जब वाहर निकले हो तो सब कहीं जानेके योग्य वस चाहियें। यहां यह भी सारण रखना योग्य है कि वसीं की श्रच्छाई केवल खच्छता और निज सामर्थ की





HINDI SELECTIONS

जाति अथच पदवी में अपने से श्रेष्ठ हैं उनके सम्मुख बहुत संभाल के बात चीत करना चाहिये, नस्त्रता स्नेह और आदर से भरी हुई बातें मधुर और गस्भीर खरसे मुख पर लानी चाहियें। यदि उनका कोई वाका अपने विचार के विरुद्ध हो ती भी इठ न करके उनकी श्रेष्ठता रक्खे हुये जिज्ञासू की भांति अपना अभिमत प्रकाश करना योग्य है। वे रोष प्रकाश करें तथापि शिष्टता ही से उत्तर देना चाहिये और कोई हास्य की बात कहके समता का द्योतन करें तथापि उत्तर में हास्य तथा बराबरी दिखलाना अनुचित है। मित्रों के साथ बराबरी श्रीर परिचास करना दूषणीय नहीं है पर वहीं तक कि जहां तक उनकी और अपनी योग्यता बनी रहै तथा उनका कोई सचा दोष न प्रकाशित हो। एवं उन्हें उत्तर देने में सङ्गोच व लज्जा न लगै, इसके अतिरिक्त साधारण परिचयवालीं से भी उपयुक्त ही रीति से वार्तालाप करनी चाहिये किन्तु इतना बिचार और भी रखना योग्य है कि अपनी विदत्ता दिखलाने को ऐसे एव्द न बोलना चाहिय जो वे समभान सकों और ऐसी बातें भी जिह्ना पर न लानी चाहियें जिन से किसी प्रकार की अपनी या उनकी हीनता प्रगट हो वा





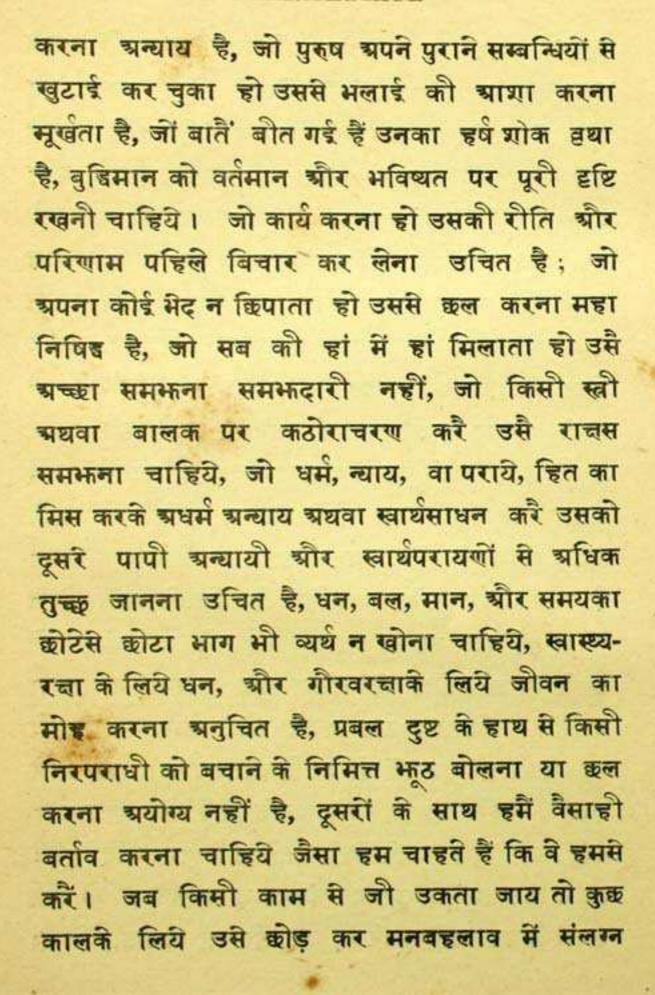
बर्ताव इसी रीति से हो सकता है। अतः अभ्यास से भी यही ढंग अच्छा है। इस पर दृष्टि रक्वे हुये जो कुछ कीजिये इस प्रकार कीजिये। किसी आसीय वा परिचित व्यक्ति पर उस कार्य का भार मत रखिये जो अपने किये हो सकता हो। किसी से इतना हेलमेल न बढ़ाइये जो सदा न निभ सकै। किसी को उस बात का आसरा न दीजिये जो अपनी सामर्थ्य से बाहर हो, किसी से उन बातों के पूछने में इठ न कीजिये जो वह छिपाया चाहता हो, किसी के साथ कोई उपकार कीजिये तो पलटा वा प्रशंसा पाने की सनसा से न कीजिये, यदि किसी को अयोग्य स्थान पर बैठे वा खड़े हुये देखिये तो उस समय मंह फेर लीजिये, किसी में कोई दोष देखिये तो छुणा न कीजिये बरंच प्रीति पूर्वक उसे सुमार्ग पर लाने का यत कीजिये, किसी का तब तक विश्वास न कर लीजिये जब तक दस पांच वेर परीचा न मिल जाय, किसी की निन्दा सुन कर प्रसन्न न हजिये क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं है कि निन्दक तुम्हें छोड़ देंगे; किसी को कोई लोकहितकारी काम करते देखिये तो उसकी याचना के बिना भी यथासाध्य सहायता कीजिये, कोई अपने यहां आवे तो उसे आदर ही से लीजिये चाहै वह शतु ही हो। कोई अपनी ही दुर्बुडि या दुष्क ति के

कारण दुःख में पड़ा हो ती भी उसे उपालका की भांति उपदेश न कीजिये, सामर्थ भर सहानुभूति ही दिखलाइये, कोई अपने साथ दुष्टता करे तो यदि उसके कारण धन और मान पर आंच न आती देख पड़े तो चमा कर दीजिये पर दूसरों के प्रति दुराचरण करते देख कर कभी उपेचा न की जिये। कोई कुछ कहै तो सुन अवश्य लीजिय पर कीजिय वही जो अपनी और चार अनुभवियों की समभ में अच्छा जान पड़े। कोई समभ बूभ कर सदुपदेश न मानै तो उसै शिचा देना व्यर्थ है, कोई किसी बिषय में समाति मांगे बा उहरावै तो बहुत सोंच बिचार के उचित उपाय बतलाइये और बड़ी साबधानी से निर्णय कीजिय, कोई दो चारबार धोखा दे तो फिर उसै मुहँ मत लगाइये चाहै कैसे ही पुष्ट प्रमाणीं के साथ मित्रता दिखलावे, कोई मुहंपर स्पष्ट शब्दों में दोष वर्णन कर दे तो उस पर क्रोध न कौजिये क्यों कि वह यद्यपि अशिष्टता करता है पर किसी समय उससे प्रवचन की सन्धावना नहीं है, कोई रोग बिपत्ति वा उन्माद की दशा में कुवाका कह बैठे तो ध्यान न दीजिये क्यों कि वह अपने आपे में नहीं है, कोई उपहास वा विवाद की रीति से धर्म वा कुल की रीति के विषय में कुछ पूंछै तो कभी न बतलाइये; जिससे भिन्नता हो उसके साथ लेन देन कभी न कीजिये,



HINDI SELECTIONS

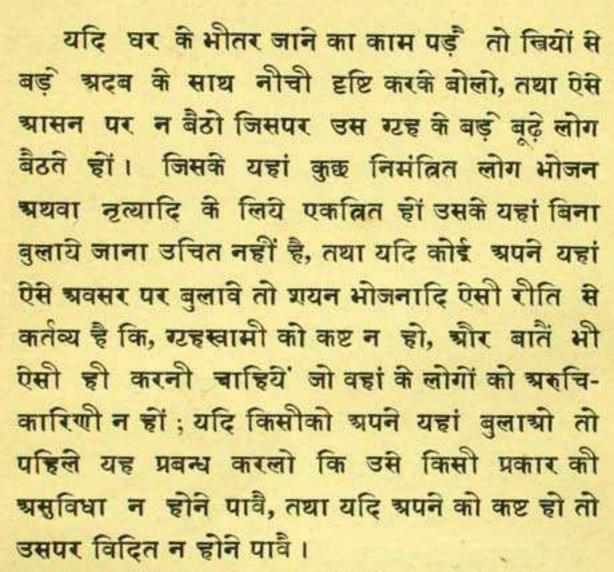
जिसके साथ नया नया परिचय हुआ हो उससे निसंकोच बर्ताव न कीजिये, जिससे किसी प्रकार का काम निकलता हो उसे क्ष्ट करना नीतिविक्ड है, जिसने एक बार भी उपकार किया हो उसका गुण सदा मानना चाहिये बरंच प्रत्युपकार का समय या पड़े तो कभी चूकना उचित नहीं ; जिसका बहुत लोग सम्मान करते हों अथवा जिससे डाह करते हों पर कुछ कर न सकते हों, उसके साथ यत्नपूर्वक जान पहिचान करनी योग्य है, जिसकी अवस्था वा दशा अपने से न्यन हो उसके समुख अपने बराबरवालों से खच्छन्द संभाषण न कीजिये, जिसके पेट में बात न पचती हो उसके आगी ग्रपना वा मिल्लों का कोई भेद न खोलिये; जिसको अपने लाभ के लिये पराई हानि का विचार न रहता हो उससे सदा दूर रहना उचित है, जिसके पास बैठने में लोकनिन्दा वा ख्रामदी कइलाने की शंका हो उसके साथ प्रयोजन से अधिक कुछ सम्बन्ध न रखना चाहिये। जिसका मन बचन और कर्म एक सा हो वह कैसी ही दशा में हो पर है बादरणीय। जो काम ग्राजके करने का है उसे कलके लिये छोड़ देना ठीक नहीं, जो कुछ अपने किये न हो सकी वह यदि दूसरे भी न कर सकैं तो उन पर इंसना न चाहिये। जो दोष इममें है वही यदि दूसरे में भी हो तो उसकी निन्दा





होना योग्य है, निर्धनों श्रीर श्रनपढ़ों को तुच्छ समभाना बड़ी भूल है, उन्हें प्रीतिपूर्वक उनके हित की बातें बतलाते रहना चाहिय, इसमें श्रपना भी बड़ा काम निकलता है। श्रीषधि श्रीर बिद्या कभी किसीसे किपाना योग्य नहीं है; श्रापस वालों से बिगाड़ करना सबसे बड़ी मूर्खता है, जिन कामों को श्रनेक बुहिमानों ने बुरा ठहराया है उनका कर डालना इतना बुरा नहीं है जितना उन्हें चित्त में चिरस्थायी करना; श्रच्छा काम जितना हो सके उतना ही उत्तम है—ऐसी ऐसी बहुत सी बातें हैं जो बिद्या पढ़ने श्रीर सत्संग करने से श्रापही बिदित हो रहेंगी।

इसे हम यहां पर बढ़ाना नहीं चाहते, केवल इतना ही फिर कहैंगे—जान लेने से ठान लेना अत्यावस्थक है, फिर इनका फल आपही थोड़े दिनों में प्रत्यच हो जायगा इससे इन्हें सदा कामों में समरण रखना चाहिये, इसके अतिरिक्त जब किसीके घर पर जाने की आवस्थकता हो तो उसके भोजन, शयन और कार्य संलग्नता का समय बचाके जाओ, और हार के अति समुख खड़े होकर मत पुकारो, एक बार पुकारके कुछ काल ठहर जाओ, इस रीति से दो तीन बार पुकारने पर उत्तर न मिलै तो लीट आना उचित है।



जब दूसरे नगर में जाना हो तो आवश्यकता से कुछ अधिक धन, निर्वाहयोग्य कपड़े, श्रीर वर्तन, तथा एक छुरी, एक छड़ी, थोड़ी सी लिखने की सामग्री, एवं दो एक सुद्रिकाएं (उंगली में) अवश्य साथ लेना चाहिये; श्रीर जिसके यहां ठहरना हो उस दो तीन दिन पहिले से समाचार दे देना चाहिये; रात्रि को छसके यहां जाना ठीक नहीं, दिन को भी स्नान भोजन से निवृत्त हो के जाना उचित है। इस प्रकार का व्यवहार सदैव दृद्ता के साथ श्रंगीकार किये रहने



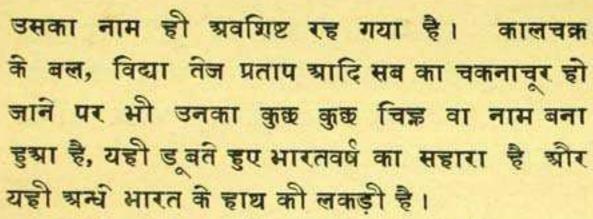
HINDI SELECTIONS

का बिचार रक्लोगे तो देखोगे कि दूसरे लोग तुमसे और तुम दूसरों से कितने सुखी एवं संतुष्ट रहते हो, तथा जीवन के बड़े बड़े अथच कठिन से कठिन कर्तव्यों में कितना सहारा मिलता है।

रामलीला

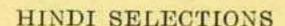
यार्थ वंश के धर्म कर्म श्रीर भिक्त भाव का वह प्रवल प्रवाह, जिसने एक दिन जगत के बड़े बड़े सन्मार्ग विरोधी भूधरों का दर्प दलन कर उन्हें रज में परिणत कर दिया या श्रीर इस परम पित्र वंश का वह विश्व-व्यापक प्रकाश जिसने एक समय जगत में अन्धकार का नाम तक न छोड़ा या,—अब कहां है? इस गृद्ध एवं मर्मास्पर्शी प्रश्न का यही उत्तर मिलता है कि 'वह सब भगवान महाकाल के महापेट में समा गया'। नि:संदेह हम भी उक्त प्रश्न का एक यही उत्तर देते हैं कि 'वह सब भगवान महाकाल के महा पेट में समा गया।'

जो अपनी व्यापकता के कारण प्रसिद्ध या, अब उस प्रवाह का प्रकाश भारतवर्ष में नहीं है, केवल 2—1421 B. T.



जहां महा मही भरी खुढ़क जाते थे और अगाध अतलस्पर्शी जल या, वहां अब पत्थरों में दबी हुई एक कोटी सी किन्तु सुशीतल वारिधारा बह रही है, जिससे भारत के विदग्ध जनों के दग्ध हृदय का यथा कथंचित संताप दूर हो रहा है। जहां के सहा प्रकाश से दिग्दिगंत उद्भासित हो रहे थे, वहां अब एक अन्धकार से विरा हुआ स्नेहणून्य प्रदीप टिमटिमा रहा है जिससे कभी कभी भूभाग प्रकाशित हो रहा है। पाठक! ज़रा विचारकर देखिये ऐसी अवस्था में कहां कब तक शान्ति और प्रकाश की सामग्री स्थिर रहेगी? यह किस से छिपा हुआ है कि भारतवर्ष की सुख-शान्ति श्रीर भारतवर्ष का प्रकाश अब केवल 'राम नाम' पर अटक रहा है। राम नाम ही अब केवल हमारे संतप्त हृदय को शान्तिप्रद है और 'राम नाम' ही हमारे अन्धे घर का दीपक है।

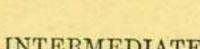
यह सत्य है कि जो प्रवाह यहां तक चीण हो।
गया है कि पर्वतों को उथल पुथल कर देने की जगह



अपने आप प्रति दिन पाषाणों से दब रहा है, और लोग इस बात को भूलते चले जा रहे हैं कि कभी यहां भी एक प्रबल नद प्रवाहित हो रहा था, तो उसकी आशा परित्याग कर देना चाहिए। जो प्रदीप स्नेह से परिपूर्ण नहीं है तथा जिसकी रचा का कोई उपाय नहीं है और प्रतिकूल वायु चल रही है वह कब तक सुरचित रहेगा ? (परमात्मा न करें) वायु के एक ही भोंके में उसका निर्वाण हो सकता है।

किन्तु इमारा वक्तव्य यह है कि वह प्रवाइ भगवती भागीरथी की तरह बढ़ने लगे, तो क्या सामर्थ्य है कि कोई उसे रोक सके? क्योंकि वह प्रवाह कि कि प्रवाह नहीं है, भगवती वसुन्धरा के हृदय का प्रवाह है, जिसे इस स्वाभाविक प्रवाह भी कह सकते हैं।

जिस दीपक को हम निर्वाणप्राय देखते हैं, निःसंदेह
उसकी ग्रोचनीय दशा है और उससे अन्धकार-निर्देत्ति
की ग्राशा करना दुराशा मान है, परंतु यदि हमारी
उसमें ममता हो और वह फिर हमारे खेह से भर
दिया जाय तो स्मरण रहे कि वह प्रदीप वही प्रदीप
है जो पहले समय में हमारे खेह, ममता और भित्त
भाव का प्रदीप था। उसमें ब्रह्मांड को भस्मीभूत कर देने
की ग्रांति है। यह वही ज्योति है जिसका प्रकाश सूर्य
में विद्यमान है एवं जिसका दूसरा नाम अग्निदेव है।

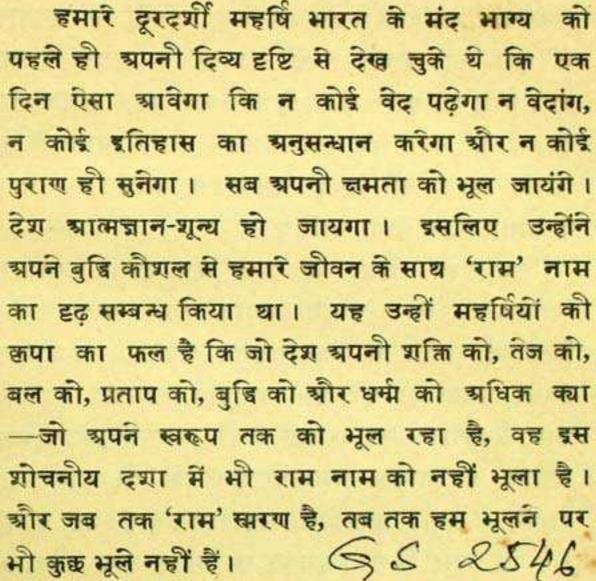


वह प्रदीप भगवान रामचंद्र के पवित्र नाम के अति-रिक्त और कुछ नहीं है। यदापि राम नाम की चुद्र प्रदीप के साथ तुलना करना अनुचित है, परन्तु यह नाम का दोष नहीं है हमारे चुद्र भाग्य की चुद्रता का दोष है कि उनका भिक्तभाव अब हममें ऐसा ही रह गया है।

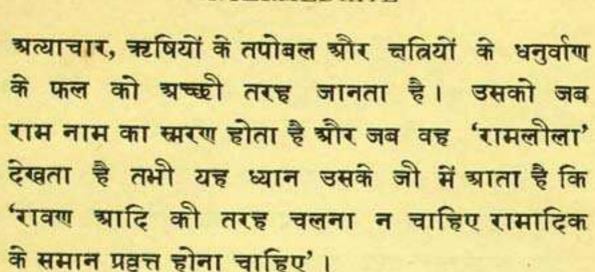
कभी इस लोग भी सुख से दिन बिता रहे थे, कभी इस भी भूमंडल पर विदान और वीर ग्रब्द से पुकारे जाते थे, कभी हमारी कीर्ति भी दिग्दिगंत-व्यापिनी थी, कभी हमारे जयजयकार से भी आकाश गुंजता था और कभी बड़े बड़े सम्बाट हमारे कपा-कटाच की भी प्रत्याशा करते थे-इस बात का स्मरण करना भी अब हमारे लिए अग्रभचिंतक हो रहा है। पर कोई माने या न माने यहां पर खुले शब्दों में यह कहे बिना हमारी आतमा नहीं मानती कि अवध्य हम एक दिन इस सुख के अधिकारी थे। इस लोगों में भी एक दिन खदेश भक्त उत्पन्न होते थे, हममें सीभाव श्रीर सीहार्द का श्रभाव न या, गुरुभिता श्रीर पिल-भिता हमारा नित्य कर्म था, शिष्ट-पालन और दुष्ट-दमन ही हमारा कर्त्तव्य था। अधिक क्या कहें - कभी इस भी ऐसे ये कि जगत का लोभ हमें अपने कर्त्तव्य से नहीं हटा सकता था। पर अब वह बात नहीं है श्रीर न उसका कोई प्रमाण ही है!

1. BCU2163

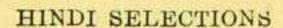


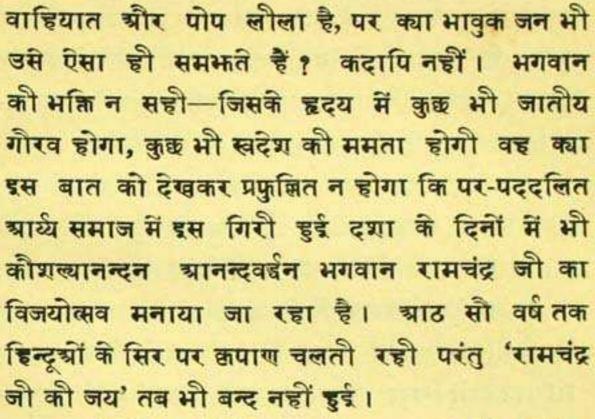


महाराज दश्रध का पुत्रस्नेह, श्रीरामचंद्र जी की पित्रभिक्त, लद्मण श्रीर शतुष्त की श्रात्रभिक्त, भरतजी का स्वार्थत्याग, विश्वष्ठजी का प्रताप, विश्वामित्र का श्रादर, ऋष्यश्रंग का तप, जानकीजी का पातित्रत, इनुमानजी की सेवा, विभीषण को श्ररणागित श्रीर रघुनाथजी का कठोर कर्त्तव्य किसको स्मरण नहीं है? जो श्रपने "रामचंद्र" को जानता है वह श्रयोध्या, मिथिला को कब भूला हुशा है? वह राचसीं के

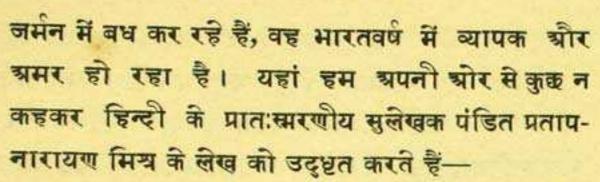


बस इसी शिचा को लच्च कर हमारे समाज में 'रामनाम' का आदर बढ़ा। ऐसा पावन और शिचापद चरित्र न किसी दूसरे अवतार का और न किसी मनुष्य का ही है। भगवान रामचंद्र देव को हम मर्त्यलोक का राजा नहीं समभते, अखिल ब्रह्मांड का नायक समभते हैं। यों तो ग्रादरणीय रघवंश में सभी पुरवक्षीक महाराज हुए, पर हमारे महाप्रभु 'राम' के समान सर्वत रमण्शील अन्य कीन हो सकता है ? मनुष्य कैसा ही पुरुषोत्तम क्यों न हो वह श्रंत को मनुष्य है। इसलिए श्रार्थवंश में राम ही का जयजयकार हुआ और है भीर जब तक एक भी हिन्दू पृथ्वीतल पर रहेगा होता रहेगा। हमारे आलाप में, व्यवहार में, जीवन में, मरण में, सर्वत्र 'राम नाम' का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को दृढ़ रखने के लिए ही प्रतिवर्ष रामलीला होती है। मान लीजिय कि वह सभ्यताभिमानी नविशिचितों के नज़दीक खिलवाड़ है





एक वे विद्वान् हैं जो राम श्रीर रामायण की प्रशंसा करते हैं, रामचित्र को अनुकरणयोग्य समभते हैं एवं रामचंद्र जी को भुक्ति मुक्तिदाता मान रहे हैं, श्रीर एक वे लोग हैं जिनकी युक्तियों का बल केवल एक इसी बात में लग रहा है कि "रामायण में जो चित्र वर्णित हैं वे सचमुच किसी व्यक्ति के नहीं हैं किन्तु केवल किसी घटना श्रीर अवस्थाविश्रेष का रूपक बांध के लिख दिये गये हैं।" निरंकुशता श्रीर ध्रष्टता श्राज कल ऐसी बढ़ी है कि अनर्गलता से ऐसी मिथ्या बातों का प्रचार किया जाता है। इस भांत मत के प्रचार करनेवाले वेबर साहब यदि यहां होते तो हम उन्हें दिखाते कि जिसका वे श्रपनी विषदग्धा लेखनी से

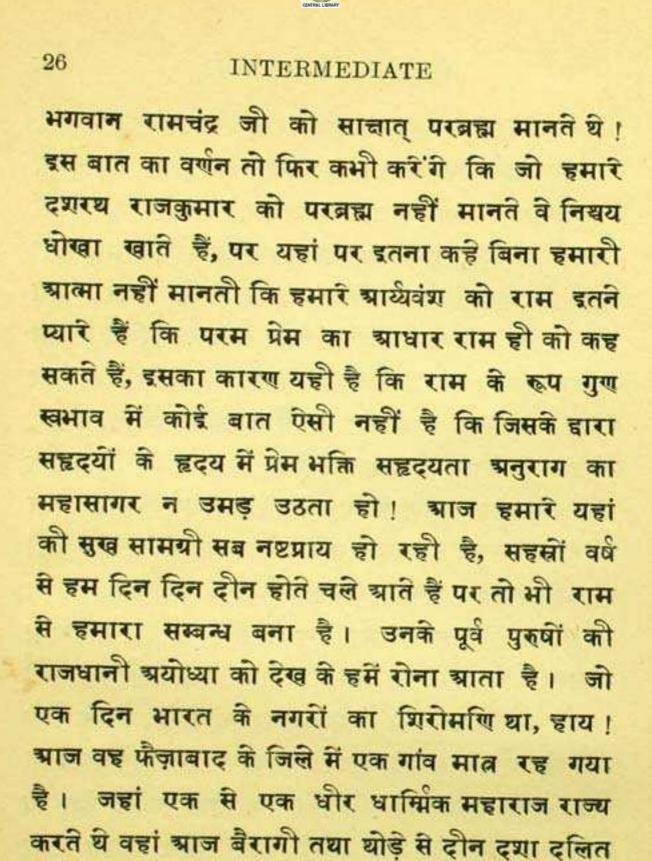


"आहा यह दोनों अत्तर भी हमारे साथ कैसा सार्वभौमिक सम्बन्ध रखते हैं कि जिसका वर्णन करने की सामर्थ्य ही किसी में नहीं है। जो रमण करता हो अथवा जिसमें रमण किया जाय उसे राम कहते हैं ये दोनों अर्थ राम नाम में पाय जाते हैं। हमारे भारतवर्ष में सदा सर्वदा रामजी रमण करते हैं श्रीर भारत राम में रमण करता है। इस बात का प्रमाण कहीं दूंढने नहीं जाना, श्राकाश में रामधनुष (इंद्रधनुष) धरती पर रामगढ़, रामपुर, रामनगर, रामगंज, रामरज, रामगंगा, रामगिरि (दक्षिण में), खाद्य पदार्थीं में रामदाना, रामकीला (सीताफल), राम-तरोई, रामचक्र, चिड़ियों में रामपाखी (बंगाल में मुरगी), कोटे जीवों में रामवरी (मेढकी), व्यंजनों में रामरंगी (एक प्रकार के मंगीड़े) तथा जहांगीर ने मदिरा का भी नाम रामरंगी रखा था 'कि रामरंगिए मा नश्चाए दीगर दारद'; कपड़ों में रामनामी दलादि नाम सुन के कौन न मान लेगा कि जल स्थल, भूमि आकाश, पेड़ पत्ता, कपड़ा लत्ता, खान पान सब में राम ही रम रहे हैं।



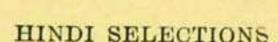
HINDI SELECTIONS

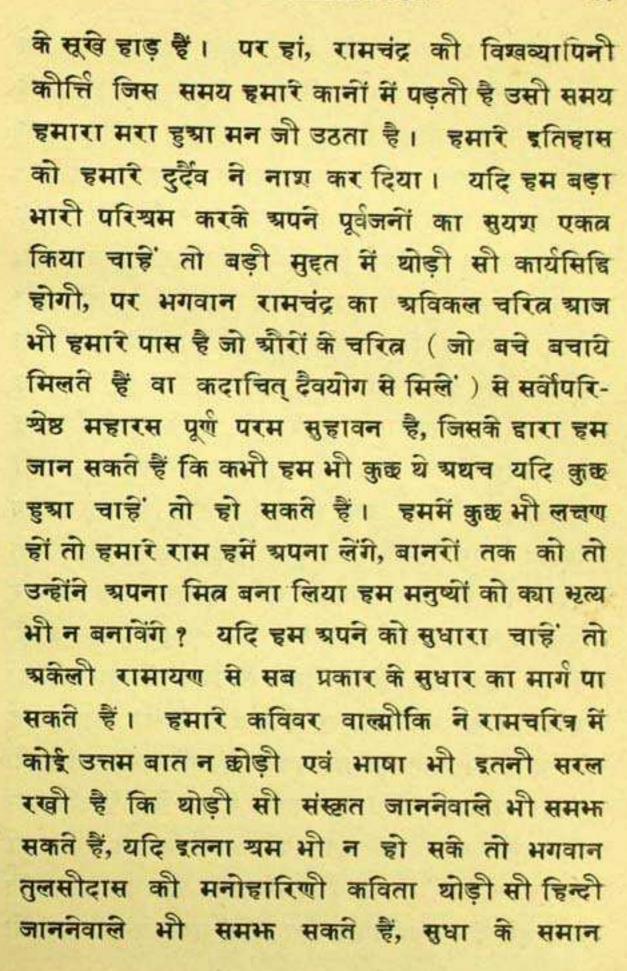
मनुष्यों में रामलाल, रामचरण, रामदयाल, रामदत्त, रामसेवक, रामनाथ, रामनारायण, रामदास, रामदीन, रामप्रसाद, रामगुलाम, रामबक्स, रामनेवाज, खियों में भी रामदेई, रामिकशोरी, रामिपयारी, रामकुमारी दलादि कहां तक कहिए जिधर देखो उधर राम ही राम दिखाई देते हैं, जिधर सुनिए राम ही नाम सुन पड़ता है। व्यवहारों में देखिये लड़का पैदा होने पर रामजना के गीत, जनेज, ब्याइ, मंडन, छेदन में राम ही का चरित्र, आपस के शिष्टाचार में 'राम राम', दु:ख में 'हाय राम', आयर्थ अथवा दया में 'अरे राम'; महा प्रयोजनीय पदार्थी में भी इसी नाम का मेल, लच्मी (रुपया पैसा) का नाम रमा, खी का विशेषण रामा (रामयति), मदिरा का नाम रम (पीते ही नस नस में रम जानेवाली) यही नहीं मरने पर भी 'राम नाम सत्य है', उसके पीछे भी गयाजी में रामशिला पर याद! इस सर्वव्यापकता का क्या कारण है ? यही कि हम अपने देश को ब्रह्ममय समभाते थे। कोई बात कोई काम ऐसा न करते थे जिसमें सर्वव्यापी सव स्थान में रमण करनेवाले को भूल जायं। अथच रामभक्त भी इतने थे कि श्रीमान् कीश्रन्थानन्दवर्धन जानकीजीवन, अखिलार्ध-नरेन्द्र-निषेवित-पाद-पद्म, महाराजाधिराज मायामानुष

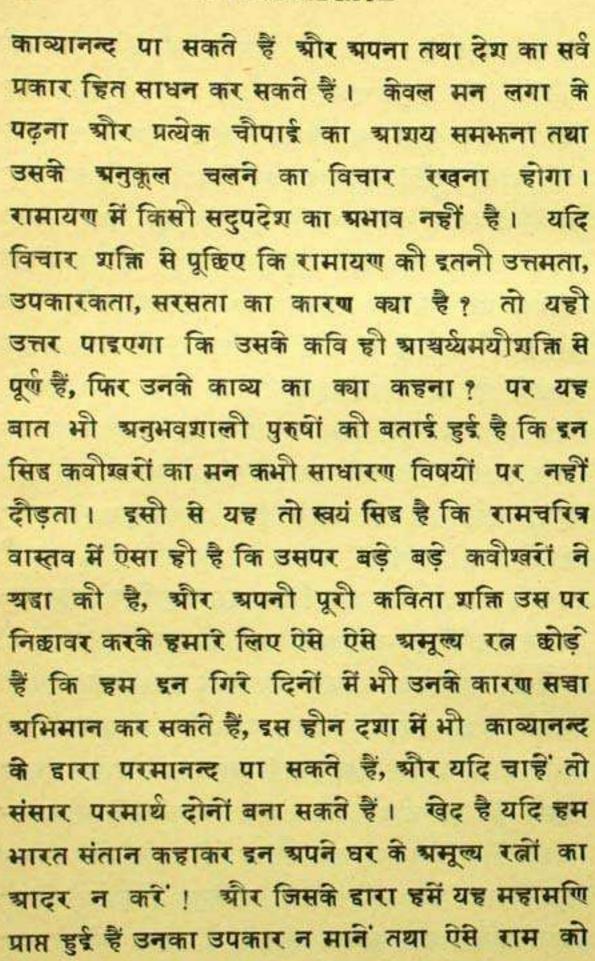


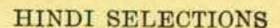
जो लोग प्रतिमापूजन के देवी हैं परमेखर न करे यदि कहीं उनकी चले तो फिर अयोध्या में रही क्या जायगा ? थोड़े से मंदिर ही तो हमारी प्यारी अयोध्या

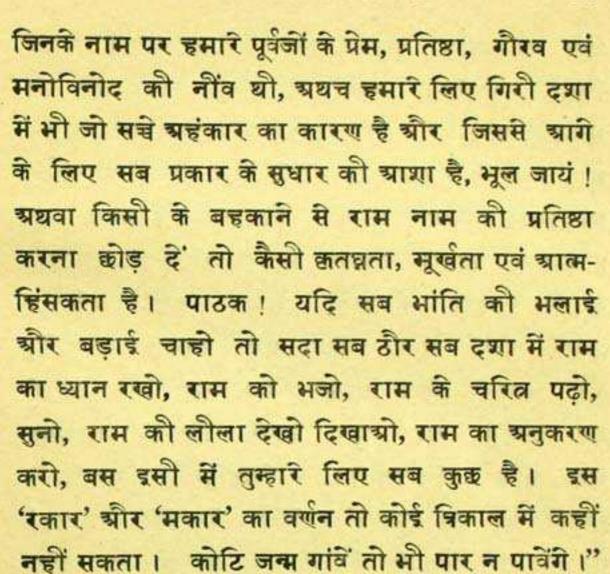
चिन्द्र रह गए हैं।





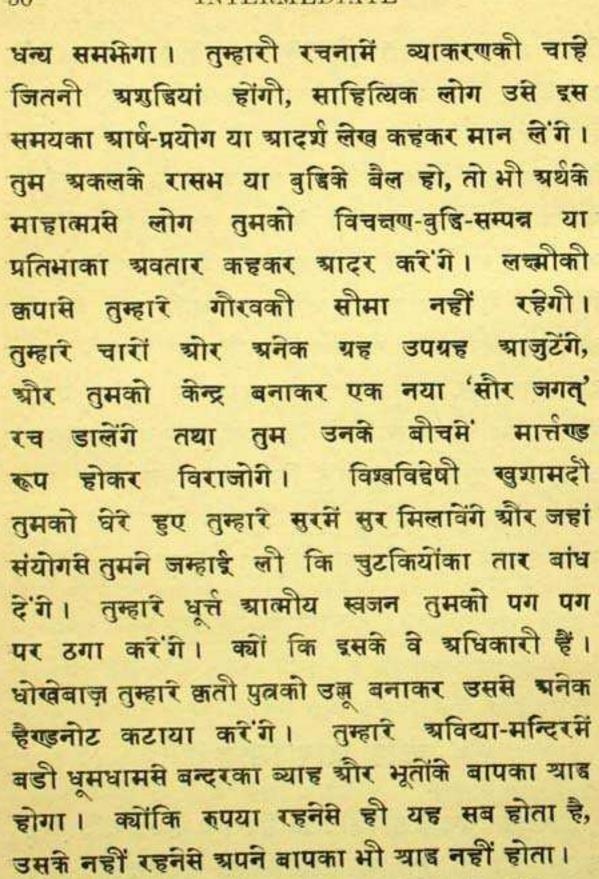






ऋिं और सिंह

अर्थ या धन अलाउदीनका चिराग है। यदि यह हाथमें है, तो तुम जो चाहो सो पा सकते हो। यदि अर्थके अधिपति हो तो बच्चमूर्ख होने पर भी विश्व-विद्यालय तुम्हें हो, एस, की उपाधि देकर अपने तंई

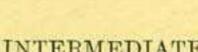


बरहे पर चलनेवाला नट हाथमें बांस लिये हुए बरहेपर दीडनेके समय "हाय पैसा—हाय पैसा" करके



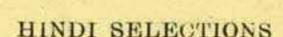
चिन्नाया करता है। दुनियाके सभी आदमी वैसे ही नट हैं। सब अपने अपने रस्से पर—"हाय पैसा— हाय पैसा" करते हुए चले चा रहे हैं। मैं दिव्यदृष्टिसे देखता हं कि खुद एथ्वी भी अपने रास्ते पर "हाय पैसा-हाय पैसा" करती हुई सूर्थकी परिक्रमा कर रही है। अभी ज्योतिर्विद लोग इस सिद्धान्त पर नहीं पहुंच सके हैं। क्योंकि अर्थका खिंचाव ही विख-ब्रह्माण्डका मध्याकर्षण है, उनको यह समर्भनेमें अभी देर है। विज्ञानाचार्थ्य सर जगदीशचन्द्र वसुने साबित किया है कि धातुश्रोंमें प्राण है—वे सब भी जीती हैं। बस उनकी बुडि-ग्वेषणाकी दौड़ यहीं तक है। पर मेरी गवेषणासे यह पका सिदान्त हो चुका है कि तांबा, सोना चांदीमें केवल जीवनी-श्रक्ति ही नहीं, उनमें ऐसी ग्रज्ञत शक्ति है कि जिसके बलसे वे सब विश्व-ब्रह्मारख्यो चरखी पर नचा रहे हैं।

कालमाहात्म्य और दिनोंके फेरसे ऐखर्थ्यशाली भगवानने तो अब स्वर्गसे उतरकर दिद्रके घर शरण लिया है और उनके सिंहासन पर अर्थ जा बैठा है। इसीसे अब सबके मुंहसे अकेले अर्थको ही अपार महिमा सुनी जाती है। अतएव समभना चाहिये कि अर्थ हो इस युगका परब्रह्म है। इस ब्रह्मके बिना विख्यसंसारका अस्तित्व नहीं रह सकता, सब निर्थक



हो जाता है। यही चक्राकार चैतन्यरूप कैशबकामें प्रवेश करके संसारको चलाया करता है। यही ब्रह्म-पदार्थ व्यक्त और अव्यक्तरूपसे सृष्टि स्थिति प्रलयका कारण-स्वरूप है। जगतका श्राधनिक इतिहास सहस-मुख होकर इसीकी महिमा गाता है। साधकींके हितके लिये अर्थनीतिशास्त्रमें इसकी उपासनाकी विधि लिखी गयी है। जगतके सब जीव और सब जातियां ज्ञानयोग, कर्मयोग और भित्रयोग दारा इस ब्रह्मवस्तुकी साधना करके सिडिलाभ करनेकी चेष्टा करते हैं।

यहां कुछ योगशास्त्रकी बात या पड़ी। बच्चोंकी पचली पोथीमें लिखा है-"बिना पूछे दूसरेका माल लेना चोरी कच्चाता है।" लेकिन कच्चर ज़ोरसे दूसरेका धन इड्प लेना क्या कहलाता है, यह उसमें नहीं लिखा। मेरी रायमें यही कर्मायोगका मार्ग है। इसी मार्ग पर चलकर जगतकी प्रधान शक्तियां या जातियां मेग्ज़ीन भीर सीज़-गनकी सहायतासे दूसरींके राज्यको अपना राज्य बनाकर अटूट यश और चरम सिंबि लाभ करती हैं। जिस योगायोगसे परस्वको निजस्व बनाया जा सकता है वही कर्मायोग है। कर्मायोगकी जड़में कुछ ज्ञानयोग रहना भी ज़रूरी है। पराये धनको अपना अर्थ और पराये राज्यको खराज्य समभना, इसी



अभेदज्ञानसे परार्थ पर अधिकार जमता है और इसी ज्ञानयोगसे होते होते कर्मयोगकी सूचना होती है। सीधे टेढ़ेके भेदसे कर्मायोगके कई रास्ते हैं। कर्मी साधकगण अपनी अपनी मेधा और बुडिसे ये सब रास्ते निकालते और उनको साफ कर लेते हैं। कर्मासिडि पर ही इन सब रास्तोंका उत्कर्षापकर्ष स्थिर होता है। जैसे कोई कर्मायोगी रातको सेंध देकर दूसरेके घरमें घुस गया श्रीर माल मारकर बेखटके चलता बना। उसकी देखादेखी एक दूसरा साधक उसी रास्ते पर जाकर पकड़ा गया और श्रीघर भेजा गया। वह एक भादमीके लिये जो कर्मायोग है दूसरेके नसीबमें वही विश्व कर्माभोग है। देशके कर्माचेत्रमें भी देखा जाता है कि एक श्रादमी खदेशी कर्मी समाचारपत्रका सम्पादक या बड़ा वकील अथवा बैरिस्टर होकर लखपती भीर भानरेबल हुआ भीर अच्छी तरह ऋदि सिदि लाभ करके उसने तिजारत ग्रुक कर दी। किन्तु उसकी देखादेखी दूसरा श्रादमी कर्मी या श्रकमी सिडीशनके चार्जमें पड़कर बांधा गया। उसका कापखाना जन्त हुआ और उसका घर खंडहर हो गया - उसपर उरुआ बोलने लगा। इसीको एक ही कामका भिन्न भिन्न फल कहते हैं। इससे यह साबित हुआ कि एक ही रास्ता सबके लिये ठीक नहीं है।

निरामिष वैष्णव मतसे भी अर्थकी साधना हो सकती है। लाला दयालचन्द इसी पय पर चलते हैं। वे परोपकारके लिये गरीब दुखियोंको रूपये पीछे एक आना महिना सद पर रूपया देकर सहायता करते हैं। और बहादुरी यह कि सदके लिये ऋणीको बहुत दुःख नहीं देते। वह अगर बीच बीचमें सूदके साथ मूलधन जोड़कर पूरी जमाका हैंडनोट लिखता हुआ नया कागज़ करता चला जाय तो उसीसे प्रसन्न रहते हैं। वे कहते हैं—

"इस चुद्र रूपयेके लिये किसीको दिक क्यों करना? इां अगर सूदका भाग असलसे चीगुना होकर कम्बल भारी हो जाय तो अदालतमें नालिश करके उस ऋणी वैचारका उद्वार कर देना चाहिये। क्योंकि किसीको सदा ऋणी रखनेसे धनीको पाप लगता है।"

लालाजी भक्त साधक हैं। यदि कोई कर्जदार
आकर पांव पकड़कर रोता है, तो उसके साथ वे भी
रो उठते और कहते हैं—"मैं क्या कर सकता हं।
धन तो मेरा है नहीं, न उसमें कुछ रू-रिश्रायत
करनेका मेरा अधिकार है।" लालाजीकी आंखोंमें
इतना पानी, एक नयी वस्तु है। क्योंकि जिसके धन
होता है उसकी आंखोंमें पानी नहीं रहता। अर्थ
बड़ी गरम चीज है। उसकी गरमीसे श्ररीरका सब रस



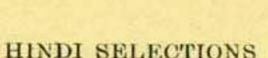
HINDI SELECTIONS

सूख जाता है, हृदय सूखकर पत्थर हो जाता है, श्रोठीं परकी इंसी सुख कर सुखी इंसी बन जाती है, ललाटके चमड़ेके सूख जानेसे उसमें नाराजीकी रेखायें दिखाई देने लगती हैं, त्योरी सदा चढ़ी ही रहती है। मन महा गरम होकर देहको दग्ध करता है, इस कारण मुं इसे जो बातें निकलती हैं, उनसे भी चिनगारियां ही भड़ती हैं। केवल 'सिलवर टानिक' ही से जिन्दगी टिकी रहती है। जिन लोगोंके मनमें यह सवाल उठे कि ऐसी दशामें लालाजीकी आंखोंमें पानी कहांसे त्राता है ? उसका जवाब लालाजीने ही दे दिया है कि अर्थ उनका नहीं है। वे तो कुबरके खजानची भर हैं। मालिकका धन वे छूते नहीं, इसीसे उनको भीतरसे वह गर्मी नहीं व्याप सकती। अर्थ उनका नहीं है, यह बात ज़रूर सान लेने योग्य है। क्योंकि बहुतींको यह बात मालुम है कि लालाजी लोहेकी संद्रकको हैग्डनोट लिखकर तो उससे उधार लेते हैं श्रीर सूदसहित ग्रसलका हिसाब करके फिर उसमें भरपाई करते हैं।

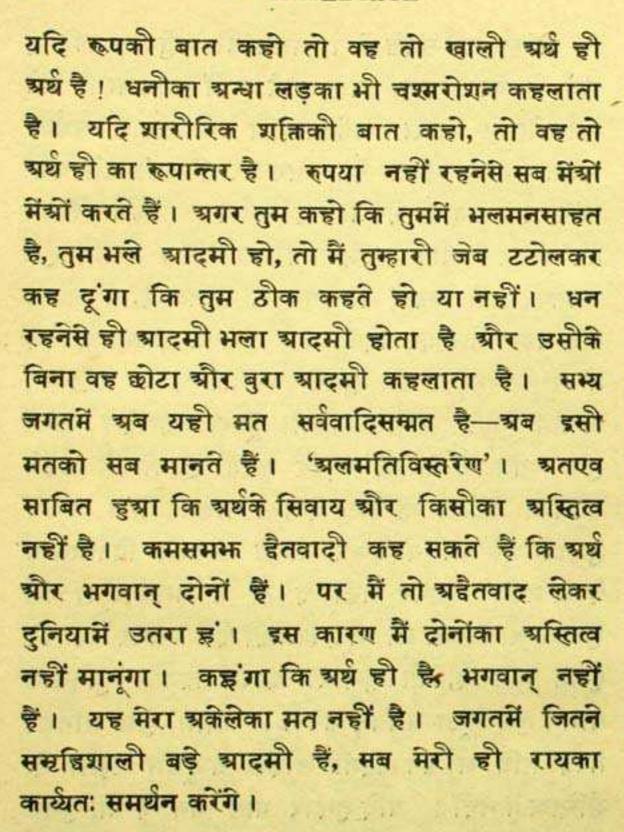
भनुष्य-समाजमें ऐसे भी लोग देखे जाते हैं जो तिहवील तसर्व प्रे करनेमें सिंबहस्त हैं। खुदाके यहांसे जितने मनी आर्डर उनको आते हैं, वह सब खर्च कर डालते हैं। ये लोग एक बार भी नहीं सोचते

कि खुदाके इजलासमें जब पहुंचेंगे और इनपर एम्बेज़लमेन्टका चार्ज आविगा तब बचाजी क्या जवाब देंगे ?

रूपयेकी कदर न करनेवाले एक और दरजेके लोग हैं। धनसे उनका सदाका विरोध है। यहां तक कि न धन उनका मुंह देखता है, न वे धनका मुंह देखते हैं। उनका कहना है कि पेटमें अन पड़नेसे ही नींद ग्राती है। जबतक पेट खाली है, कभी नींद नहीं त्राती। इस कारण जितनी ही अत-चिन्ता बढ़ती है उतनी ही ग्रादमीकी बुद्धि हज़ार ग्रीर चकर खाती है, कमीचेष्टा सैकड़ों मुखसे सैकड़ों श्रोर दौड़ पड़ती है, दीन दिखेंकी और इमदर्दी जाग उठती है और भगवानसे नाता जुड़ जाता है। इस कारण इन लोगोंकी रायसे तो देशमें जितना ही अकाल पड़े उतना ही लोक परलोक सर्वत्र कल्याण होता है। में तो इन नासमभोंको पागलखानेमें भेज देनेकी सलाइ देता हं। ये यदि खुले रहेंगे तो जोशमें आकर बडा गोलमाल करेंगे। इस दलके बारह आदिमयोंने उन्निससी वर्ष पहले जेरूसलेममें ईशूखीष्टके दलमें मिलकर और ज़िइमें पागल होकर एक विश्वव्यापी गड़बड़ खड़ी कर दी थी। इन्हीं श्रभागींने सन् १७८८ ई॰ में फ्रांसटेशका तहोबाला कर दिया था।



लेकिन अर्थ सबके लिये कामनाकी वस्तु है। किन्तु अर्थ है क्या चीज, यह कोई नहीं समभता। मैंने दव-गवेषणा दारा अदैतवादकी सहायतासे अर्थका श्रमल रूप जान लिया है। चराचर विखसंसारमें श्रगर कोई एक पदार्थ है तो वह अर्थ है। अर्थके सिवाय यहां और किसीका अस्तित्व ही नहीं है। अगर तुम भपनेको कती कहते हो-तुम्हारा क्रतित्व है, तो अपना कैश-बक्स खोलकर दिखाओ। अगर उसमें अर्थ है तो मैं समभांगा कि तुममें क्रतित्व है। नहीं तो जगतमें तुम्हारे समान अकती दूसरा नहीं है। अगर तुम अपने खी-प्रेमकी बड़ाई करते हो, तो मैं उसके गइनेकी पेटारी खोलकर देखना चाइता हं। उसमें तुम्हारा अर्थ रूप बदलकर सोनेके खरूपमें विराजमान है या नहीं। अगर नहीं है तो मैं समभ लूंगा कि तुम्हारे ची-प्रेमका भी अस्तित्व नहीं है। अगर कहो कि तुममं बुडि है, तो तुम्हारी खाली तहवील दुनियाके सामने तुन्हें भूठा साबित करेगी। जाति कुल मानकी तरह बुडि भी इन दिनों लोहेके सन्द्रकमें रहती है, मस्तिष्कमं नहीं। यदि तुम्हारे पास धन है तो तुममें मनुष्यत हो सकता है। दरिद्रके मनुष्यत है, यह बात दुनियामें कोई विश्वास नहीं करता। जिसकी कीड़ीकी श्रीकात नहीं उसकी कीन श्रादमी मानेगा?





एक दुराशा

नारङ्गीके रसमें जाफरानी बसन्ती बूटी छानकर शिवशक्ष शर्मा खिटियापर पड़े मीजोंका आनन्द ले रहे थे। ख्याली घोड़ेकी बागें ढीली कर दी थीं। वह मनमानी जकन्दें भर रहा था। हाथ पांवोंको भी खाधीनता दी गयी थी। वह खिटियाके तलअरज़की सीमा उजंबन करके इधर उधर निकल गये थे। कुछ देर इसी प्रकार शर्माजीका शरीर खिटियापर था और खयाल दूसरी दुनियामें।

अचानक एक सुरीली गानेकी आवाजने चौंका दिया। रिसया शिवशक्ष खटियापर उठ बैठे। कान लगाकर सुनने लगे। कानींमें यह मधुर गीत बार बार अमृत ढालने लगा—

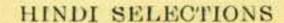
"चलो चलो आज खेलें होरी, कन्हैया घर।"

कमरेसे निकल कर बरामदेमें खड़े हुए। मालूम हुआ कि पड़ोसमें किसी अमीरके यहां गाने की महफिल जमी है। कोई सुरीली लयसे उक्त होली गा रहा है। साथ ही देखा बादल विरे हुए हैं बिजली चमक रही है रिमिभिम भड़ी लगी हुई है। वसन्तमें सावन देख कर अकल ज़रा चक्करमें पड़ी। विचारने लगे कि गानेवालेको मलार गाना चाहिये था



न कि होली। साथ ही खयाल आया कि फागुन सदी है वसन्तर्क विकासका समय है वह होली कों न गावे? इसमें तो गानेवालेकी नहीं विधिकी भूल है जिसने वसन्तर्भें सावन बना दिया है। कहां तो चांदनी किटकी होती निर्माल वायु बहती कोयलकी कूक सुनाई देती। कहां भादींकी सी अंधियारी है वर्षाकी भड़ी लगी हुई है। ओह। कैसा ऋतु-विपर्यय है!

इस विचारको छोड़ कर गीतके अर्थका विचार जीमें याया। होली खिलैया कहते हैं कि चली याज कन्हैयाके घर होली खेलेंगे। कन्हैया कीन ? ब्रजका राजकुमार श्रीर खेलनेवाले कीन ? उनकी प्रजा ग्वालबाल। इस विचारने शिवशमु शर्माको और भी चौंका दिया कि ऐं क्या भारतमें ऐसा समय भी या जब प्रजाने लोग राजाने घर जानर होली खेलते थे और राजा प्रजा मिलकर आनन्द मनाते थे? क्या इसी भारतमें राजा लोग प्रजाके ग्रानन्दको किसी समय अपना ग्रानन्द समभते थे ? अच्छा यदि ग्राज शिवशन् शमी अपने मित्रवर्ग सहित अबीर गुलालकी भोलियां भरे रङ्गको पिचकारियां लिये अपने राजाके घर होली खेलने जाये तो कहां जाये ? राजा दूर सात समुद्र पार है। राजाका केवल नाम सुना है। न राजाको





शिवशमुन देखा न राजाने शिवशमुको। खेर, राजा नहीं तो उसने अपना प्रतिनिधि तो भारतमें भेजा है। क्रणा दारिकाहीमें हैं पर उदवको प्रतिनिधि बनाकर ब्रजवासियोंको सन्तोष देनेके लिये ब्रजमें भेजा है। क्या उस राजप्रतिनिधिके घर जाकर शिवशमु होली नहीं खेल सकता ?

श्रोफ्! यह विचार वैसा ही बेतुका है जैसे श्रभी वर्षामें होली गाई जाती थी! पर इसमें गानेवालेका क्या दोष है ? वह तो समय समभकर ही गा रहा था। यदि वसन्तमें वर्षाकी भड़ी लगे तो गानेवालेको क्या मलार गाना चाहिये? सचमुच बड़ी कठिन समस्या है। क्रणा हैं उद्वव हैं पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटकने पाते। राजा हैं, राजप्रतिनिधि हैं, पर प्रजाकी उनतक रसाई नहीं! सूर्थ है धूप नहीं। चन्द्र है चांदनी नहीं। माद्र लार्ड नगरहीमें हैं पर शिवश्रम् उनके दारतक नहीं फटक सकता है, उनके वर चलकर होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। माइ लार्डके घरतक प्रजाकी बात नहीं पष्टुंच सकती। बातकी हवा नहीं पहुंच सकती। जहांगीरकी भांति उन्होंने अपने शयनागारतक ऐसा कोई घएटा नहीं लगाया जिसकी जन्तीर बाहरसे हिलाकर प्रजा अपनी फरयाद उन्हें सुना सके। न आगेको लगानेकी आशा



है। प्रजाकी बोली वह नहीं समभते, उनकी बोली प्रजा नहीं समभती। प्रजाके मनका भाव वह न समभते हैं न समभना चाहते हैं। उनके मनका भाव न प्रजा समभ सकती है न समभनेका कोई उपाय है। उनका दर्शन दुर्लभ है।

सुनते हैं कि कलकत्तेमें श्रीमान्ने कोना कोना देख डाला। भारतमें क्या भीतर श्रीर क्या सीमाश्रीपर कोई जगह देखे बिना नहीं छोड़ी।

सारे भारतकी बात जाय, इस कलकत्तेहीमें देखनेकी इतनी बातें हैं कि केवल उनको भलीभांति देख लेनेसे भारतवर्षकी बहुतसी बातोंका ज्ञान हो सकता है। यदि किसी दिन शिवशक्षुशकीं के साथ माइलार्ड नगरकी दशा देखने चलते तो वह देखते कि इस महानगरकी लाखीं प्रजा भेड़ीं और स्यरींकी भांति सड़े गंदे भोंपड़ोंमें पड़ी लोटती है। उनके यासपास सड़ी बदबू और मले सड़े पानीके नाले बहते हैं। कीचड़ और कूड़ेके ढेर चारों श्रोर लगे हुए हैं। उनके शरीरोंपर मैले कुचैले फटे चिथड़े लिपटे हुए हैं। उनमेंसे बहुतोंको ग्राजीवन पेटभर ग्रन ग्रीर शरीर ढाकनेको कपड़ा नहीं मिलता। जाड़ोंमें सर्दीसे अकड़ कर रह जाते हैं और गर्मीमें सड़कोंपर घूमते तथा जहां तहां पड़ते फिरते हैं। बरसातमें सड़े सीले



वरों में भोगे पड़े रहते हैं। सारांश यह कि हरेका चरतकी तीव्रतामें सबसे आगे मृत्युके पथका वही अनुगमन करते हैं। मौत ही एक है जो उनकी दशापर दया करके जल्द जल्द उन्हें जीवनकृषी रोगके कष्टमें कुड़ाती है!

इसी जलकत्तेमें इसी इसारतींके नगरमें साइ लार्डकी प्रजामें इजारों यादमी ऐसे हैं जिनको रहनेको सड़ा भोपड़ा भी नहीं है। गलियों और सड़कोंपर घूमते घूमते जहां जगह देखते हैं वहीं पड़ रहते हैं। पहरेवाला आकर डग्डा लगाता है तो सरक कर दूसरी जगह जा पड़ते हैं। बीसार होते हैं तो सड़कों ही पर पड़े पांव पीटकर मर जाते हैं। कभी ग्राग जलाकर खुले मैदानमें पड़े रहते हैं। कभी कभी इलवाइयोंकी भिट्टियोंसे चमट कर रात काट देते हैं। नित्य इनकी दोचार लाग्नें जहां तहांसे पड़ी हुई पुलिस उठाती है। भला माइ लार्डतक उनकी बात कीन पहुंचावे ? दिली दरबारमें भी जहां सारे भारतका वैभव एक च या सैकड़ीं ऐसे लोग दिलीकी सड़कींपर पड़े दिखाई देते थे, परन्तु उनकी और देखनेवाला कोई न या। यदि माइ लार्ड एक बार इन लोगोंको देख पात तो पूछनेको जगह हो जाती कि वह लोग भी ब्रिटिश राज्यके 'सिटिज़न' हैं



वा नहीं ? यदि हैं तो कपापूर्वक पता लगाइय कि उनके रहनेके स्थान कहां हैं और ब्रिटिश राज्यसे उनका क्या नाता है ? क्या कहकर वह अपने राजा और उसके प्रतिनिधिको सम्बोधन करें ? किन शब्दों में ब्रिटिश राज्यको असीस दें ? क्या यों कहें कि जिस ब्रिटिश राज्यको असीस दें ? क्या यों कहें कि जिस ब्रिटिश राज्यमें हम अपनी जक्मभूमिमें एक अंगुल भूमिके अधिकारी नहीं, जिसमें हमारे शरीरको फटे चिथड़े भी नहीं जुड़े और न कभी पापी पेटको पूरा अन्न मिला उस राज्यकी जय हो ! उसका राजप्रतिनिधि हाथियोंका जुलूस निकालकर सबसे बड़े हाथीपर चवंर छत्न लगा कर निकले और खदेशमें जाकर प्रजाके सुखी होनेका, डङ्गा बजावे ?

इस देशमें करोड़ों प्रजा ऐसी है जिसके लोग जब सन्ध्या सबेरे किसी स्थानपर एकत होते हैं तो महाराज विक्रमकी चर्चा करते हैं और उन राजामहाराजोंकी गुणावली वर्णन करते हैं जो प्रजाका दुःख मिटाने और उनके अभावींका पता लगानेके लिये रातींको विश्व बदल कर निकला करते थे। अकबरके प्रजापालनकी और बीरवरके लोकरज्जनको कहानियां कहकर वह जी बहलाते हैं और समभते हैं कि न्याय और सखका समय बीत गया। अब वह राजा संसारमें उत्पन्न नहीं



HINDI SELECTIONS

होते जो प्रजाके सुखदु: खकी बातें उनके घरों में श्वाकर पूक जाते थे। महारानी विक्टोरियाको वह श्रवश्य जानते हैं कि वह महारानी थीं।

दन सब विचारोंने दतनी बात तो शिवशक्षुके जीमें भी पक्षी कर दी कि सब राजा प्रजाके मिलकर होली खिलनेका समय गया। जो बाकी था वह काश्मीरनरेश महाराज रणवीरसिंहके साथ समाप्त हो गया। दस देशमें उस समयके फिर लौटनेकी जलद श्राशा नहीं। दस देशकी प्रजाका श्रव वह भाग्य नहीं है। तो भी दतना संदेश भद्गड़ शिवशक्षु शर्मा अपने प्रभु तक पष्ठंचा देना चाहता है कि श्रापके द्वारपर होली खेलने की श्राशा करनेवाले एक ब्राह्मणको कुछ नहीं तो कभी कभी पागल समभ कर ही स्वरण कर लेना। वह श्रापकी गूंगी प्रजाका एक वकील है जिसके शिचित होकर मुंह खोलनेतक श्राप कुछ करना नहीं चाहते।

कवि और कविता

कविता को सरस, मनोरञ्जक और हृदय-याहिणी बनाने के लिए कवि को किन किन बातों का ख़याल रखना चाहिए इस बात का विचार आज-कल के कितने ही पद्म-रचना-कर्ता बहुत कम करते हैं। उन्होंने किवता लिखना बहुत सहल काम समभ लिया है। वे शायद तुली हुई पंक्तियों ही को किवता समभते हैं। यह भ्रम है। किवता एक चीज़ है, तुली हुई शब्द-स्थापना दूसरी चीज़।

उर्दू का साहित्य समूह हिन्दी से बढ़ा-चढ़ा है। इस बात को क़बूल करना ही चाहिए। हिन्दी के हितेषियों को उचित है कि हिन्दी-साहित्य को उन्नत करके उसकी लाज रकतें। उर्दू में इस समय अनेक विषयों के कितने ही ऐसे ऐसे ग्रंथ विद्यमान हैं जिनका नाम तक हिन्दी में नहीं। उर्दू-लेखकों में ग्रम्स-उल-उल्मा हाली, आज़ाद, ज़काउल्ला, नज़ीर अहमद आदि की बराबरी करने वाला हिन्दी में ग्रायद ही कोई हो। इन साहित्यसेवियों ने उर्दू के ज्ञानागार को खूब सम्रहिग्राली कर दिया है। हिन्दी वालों को चाहिए कि वे इन लोगों को प्रस्तकें पढ़ें और वैसी ही प्रस्तकें हिन्दी में लिखने की कोग्रिश करें। इनमें से ग्राज हमें हाली के विषय में कुछ कहना है।

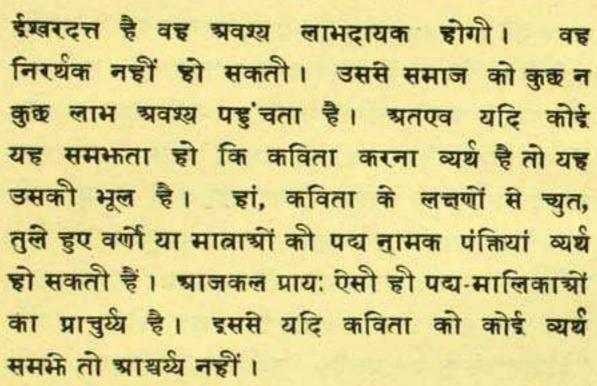
शरस-उल-उल्सा मीलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली उर्टू के बहुत बड़े कवि हैं। आपने उर्टू में नई तरह की कविता की नीव डाली है। आपकी "सुसहस" नाम की कविता गुज़ब की है। जिन्होंने इसे न पढा हो,



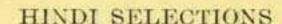
जरूर पढ़ें। श्राप देहनी के पास, पानीपत, के रहनेवाले हैं। देहनी के प्रसिद्ध किव श्रसदुक्षाख़ां (ग़ालिव)
की कपा से श्रापने किवता सीखी। पहले श्राप लाहीर
में सुलाज़िम थे। वहां से देहनी शाय। श्रव श्राप
शायद पानीपत में मकान ही पर रहते हैं। बूढ़े ही
गये हैं। श्रापने कई श्रच्छी-श्रच्छी पुस्तकें लिखीं हैं।
किवता में श्रापका बड़ा नाम है। श्रापने ''मुक़हमा''
नाम का एक लेख लिखा है। यह लेख श्रापके
''दीवान'' के साथ छपा है। इस लेख में श्रापने किव
श्रीर किवता पर श्रपने विचार बड़ी योग्यता से प्रकट
किये हैं। प्राय: उसीके श्राधार पर हम यह लेख
लिखते हैं।

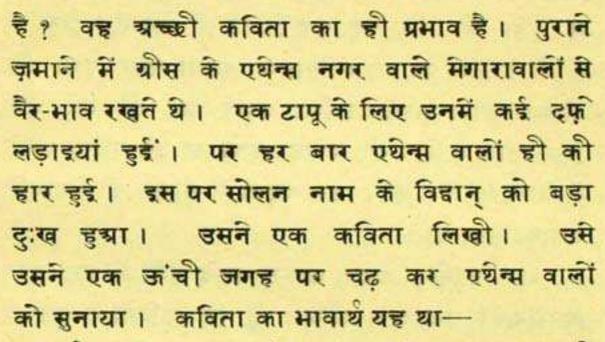
यह बात सिंख समभी गई है कि अच्छी कितता अभ्यास से नहीं आती। जिसमें कितता कर ने का खाभाविक माद्दा होता है वही कितता कर सकता है। देखा गया है कि जिस विषय पर बड़े-बड़े विद्वान् अच्छी कितता नहीं कर सकते उसी पर अपढ़ और कम-उम्ब खड़के कभी-कभी अच्छी कितता लिख लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि किसी-किसी में कितता लिखने की ग्रिक खाभाविक होती है ईखरदत्त होती है। जो चीज़

^{*} खेद है देहाल हो गया, १८२८।

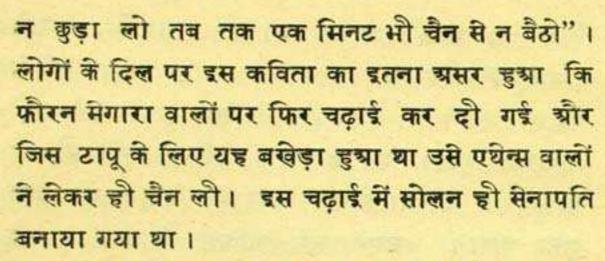


कि विता यदि यथार्थ में किवता है तो सक्थव नहीं कि उसे सुनकर सुनने वाले पर कुछ असर न हो। किवता से दुनिया में आज तक बहुत बड़े-बड़े काम हुए हैं। इस बात के प्रमाण मीजद हैं। अच्छी किवता सुनकर किवता-गत रस के अनुसार दुःख, प्रोक, क्रोध, करुणा और जोग्र आदि भाव पैदा हुए बिना नहीं रहते। जैसा भाव मन में पैदा होता है, कार्थ्य के रूप में फल भी वैसा ही होता है। हम लोगों में, पुराने जमाने में, भाट, चारण आदि अपनी-अपनी किवता ही की बदौलत वीरों में वीरता का सञ्चार कर देते थे। पुराणादि में कारुणिक प्रसंगों का वर्णन सुनने और उत्तर-रामचरित आदि दृश्य-काव्यों का अभिनय देखने से जो अश्रुपात होने लगता है वह क्या





"में एथेना में न पैदा होतातो अच्छा था। मैं किसी और देश में क्यों न पैदा हुआ ? सुक्ते ऐसे देश में पैदा होना या जहां के निवासी मेरे देश-भाइयों से अधिक वीर, अधिक कठोर-हृदय और उनकी विद्या से बिलकुल बेख्बर हों। मैं अपनी वर्तमान अवस्था की अपेचा उस अवस्था में अधिक सन्तुष्ट होता। यदि में किसी ऐसे देश में पैदा होता तो लोग मुक्ते देख कर यह तो न कहते कि यह आदमी उसी एथेना का रहने वाला है जहां वाले मेगारा के निवासियों से लड़ाई में हार गये और लड़ाई के मैदान से भाग निकले। प्यारे देश बन्धु, अपने शतुत्रीं से जल्द इसका बदला लो। अपने इस कलङ्क को फीरन धो डालो। लज्जाजनक पराजय के अपने अपयश को दूर कर दो। जब तक अपने अन्यायी प्रवृत्रीं के हाथ से अपना किना हुआ देश



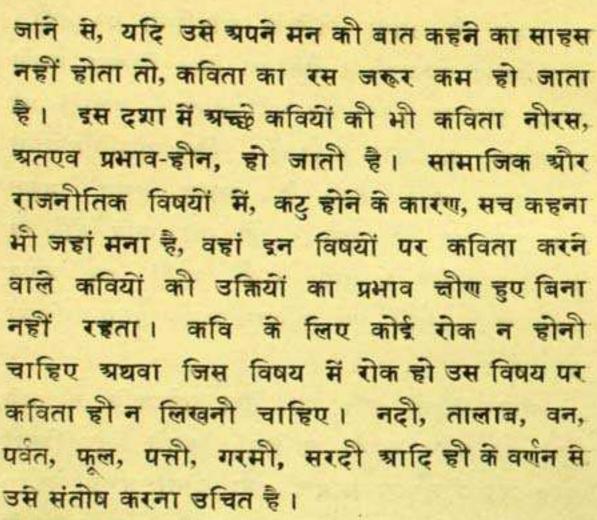
रोम, दक्ष लैंड, अरब, फारस आदि देशों में इस बात के सैकड़ों उदाहरण मीजूद हैं कि किवयों ने असम्भव बातें सम्भव कर दिखाई हैं। जहां पस्तहिमाती का दीरदीरा था वहां जोश पैदा कर दिया है। जहां शान्ति थी वहां ग़दर मचा दिया है। अतएव किवता एक साधारण चीज़ है। परन्तु विरले ही को सत्किव होने का सीभाग्य प्राप्त होता है।

जब तक ज्ञान-इडि नहीं होती—जब तक सभ्यता का जमाना नहीं आता—तभी तक किवता की विशेष उन्नित होती है। क्योंकि सभ्यता और किवता में परस्पर विरोध है। सभ्यता और विद्या की इडि होने से किवता का असर कम हो जाता है। किवता में कुछ न कुछ भूठ का अंश जरूर रहता है। असभ्य अथवा अर्ड-सभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है, शिचित और सभ्य लोगों को बहुत। तुलसीदास की रामायण के खास खास स्थलों का जितना प्रभाव स्वियों



पर पड़ता है उतना पढेलिखे आदिमयों पर नहीं।
पुराने काव्यों को पढ़ने से लोगों का चित्त जितना पहले
आक्षष्ट होता या उतना अब नहीं होता। हजारों वर्ष
से किवता का क्रम जारी है। जिन प्राक्षतिक बातों
का वर्णन किव करते हैं उनका वर्णन बहुत
लुक्क अब तक हो चुका। जो नये किव होते हैं
वे भी उलटफेर से प्रायः उन्हीं बातों का वर्णन
करते हैं। इसीसे अब किवता कम हृदय-ग्राहिणी
होती है।

संसार में जो बात जैसी देख पड़े किव को उसे
वैसी ही वर्णन करना चाहिए। उसके लिए किसी
तरह की रोक या पाबन्दी का होना अच्छा नहीं।
दबाव से किव का जोग्र दब जाता है। इसके सन में
जो भाव ग्राप ही ग्राप पैदा होते हैं उन्हें जब वह निडर
होकर ग्रपनी किवता में प्रकट करता है तभी उसका
ग्रसर लोगों पर पूरा पूरा पड़ता है। बनावट से किवता
विगड़ जाती है। किसी राजा या किसी व्यक्ति-विग्रेष
के गुण दोषों को देख कर किव के सन में जो भाव
उद्भूत हों उन्हें यदि वह बेरोकटोक प्रकट कर दे तो
उसकी किवता हृदयद्रावक हुए बिना न रहे। परन्तु
परतन्त्रता, या पुरस्कार-प्राप्ति या ग्रीर किसी कारण
से, सच बात कहने में किसी तरह की रुकावट पैदा हो

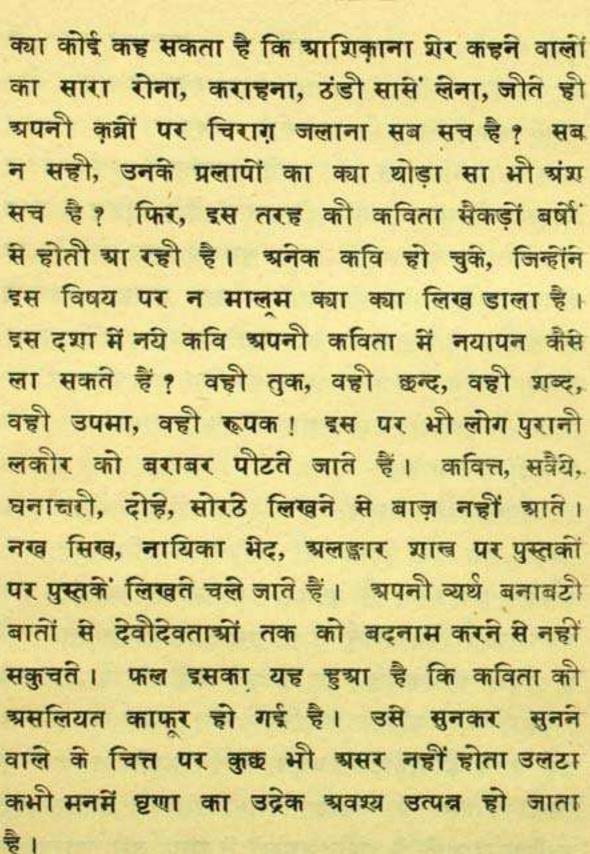


खुशामद के जमाने में किवता की बुरी हालत होती है। जो किव राजों, नव्याबों या बादशाहों के आश्रय में रहते हैं, अथवा उनको खुश करने के दरादे से किवता करते हैं, उनकी खुशामद करनी पड़ती है। वे अपने आश्रय-दाताओं की दतनी प्रशंसा करते हैं, दतनी स्तृति करते हैं, कि उनकी उक्तियां असलियत से बहुत दूर जा पड़ती हैं। दससे किवता को बहुत हानि पहुंचती है। विशेष करके शिचित और सभ्य देशों में किव का काम, प्रभावोत्पादक रीति से, यथार्थ घटनाओं का वर्णन करना है; आकाश्र-कुसुमों के



गुलदस्ते तैयार करना नहीं। अलङ्कार-प्राच के याचार्थ्यों ने यतिप्रयोक्ति एक यलङ्कार जरूर माना है। परन्तु यभावोक्तियां भी क्या कोई यलङ्कार हैं ? किसी किव की बेसिर-पर की बातें सुनकर किस समभदार यादमी को यानन्द प्राप्ति हो सकती है ? जिस समाज के लोग यपनी भूठी प्रयंसा सुनकर प्रसन्न होते हैं वह समाज कभी प्रयंसनीय नहीं समभा जाता। काबुल के यमीर हवीबुजाख़ां ने यपनी किवता-बह निराधार प्रयंसा सुनने से, यभी कुछ हो दिन हुए, इनकार कर दिया। खुशामद-पसन्द यादमी कभी यादर की दृष्टि से नहीं देखे जाते।

कारण-वश अमीरां की भूठी प्रशंसा करने, अथवा किसी एक ही विषय की कविता में किव समुदाय के आमरण लगे रहने से कविता की सीमा कटकंट कर बहुत थोड़ी रह जाती है। इस तरह की कविता उर्दू में बहुत अधिक है। यदि यह कहें कि आशिकाना (शृद्धारिक) कविता के सिवा और तरह की कविता उर्दू में है ही नहीं, तो बहुत बड़ी अत्युक्ति न होगी। किसी दीवान को उठाइए, किसी मसनबी को उठाइए, आशिक्-माश्कों के रङ्गीन रहस्थों से आप उसे आरक्ष में अन्त तक रंगी हुई पाइएगा। इशक भी यदि सचा हो तो कविता में कुछ असिलयत आ सकती है। पर

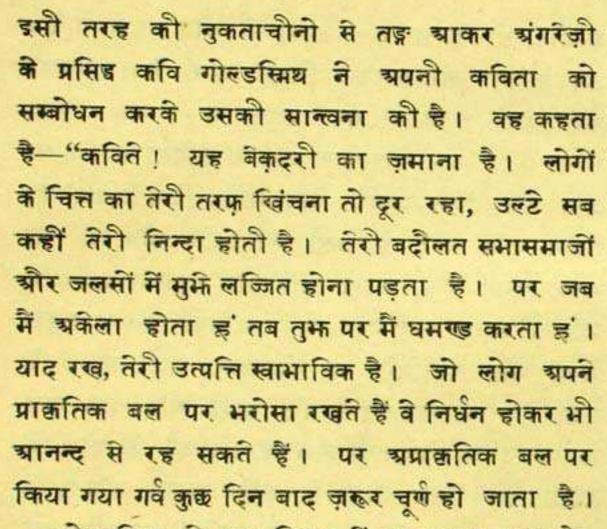


कविता के बिंगड़ने और उसकी सीमा परिमित हो जाने से साहित्य पर भारी आधात होता है। वह



बरबाद हो जाता है। भाषा में दोष आ जाता है। जब कविता की प्रणाली बिगड़ जाती है तब उसका ग्रसर सारे ग्रन्थकारीं पर पड़ता है! यही क्यों, सर्वसाधारण की बोल-चाल तक में कविता के दोष आ जाते हैं। जिन ग्रव्हों, जिन भावों, जिन उक्तियों का प्रयोग कवि करते हैं उन्हीं का प्रयोग और लोग भी करने लगते हैं। भाषा और बोल-चाल के सम्बन्ध में कवि ही प्रमाण माने जाते हैं। कवियों ही के प्रयुक्त शब्दों और सुहाबिरीं को कोशकार अपने कोशीं में रखते हैं। सतलब यह है कि भाषा और बोल-चाल का बनाना या बिगाड़ना प्रायः कवियों हो के हाथ में रहता है। जिस भाषा के कवि अपनी कविता में बुरे शब्द और बुरे भाव भरते रहते हैं उस भाषा की उन्नति तो होती नहीं, उलटी अवनति होती जाती है।

किवता-प्रणाली के बिगड़ जाने पर यदि कोई नये तरह को खाभाविक किवता करने लगता है तो लोग उसकी निन्दा करते हैं। जुक्क नासमक्ष और नादान आदमी कहते हैं, यह बड़ी भद्दी किवता है। जुक्क कहते हैं, कि यह किवता तो "क्रन्दोदिवाकर" में दिये गये लह्मणों से चुत है; अतएव यह निर्दोष नहीं। बात यह है कि जिसे अब तक किवता कहते आये हैं वही उनकी समक्ष में किवता है और सब कोरी कांव कांव



गोल्डिस्मिथ ने इस विषय में बहुत कुछ कहा है; पर हमने उसके कथन का सारांग्र बहुत ही थोड़े ग्रब्दों में दे दिया है। इस से प्रकट है कि नई किवता-प्रणाली पर श्रकुटी टेढ़ी करने वाले किव-प्रकारड़ों के कहने की कुछ भी परवा न करके अपने स्वीक्षत पथ से ज़रा भी इधर-उधर होना उचित नहीं। नई बातों से घबराना और उनके पच्चपातियों की निन्दा करना मनुष्य का स्वभाव सा हो गया है। अतएव नई भाषा और नई किवता पर यदि कोई नुकताचीनी करे तो श्राश्चर्य नहीं।



HINDI SELECTIONS

याजकल लोगों ने कविता और पद्म को एक ही चीज़ समभा रक्वा है। यह भ्रम है। कविता और पद्य में वही भेद है। जो अंगरेज़ी की पोयटरी (poetry) और वर्स (verse) में है। किसी प्रभावोत्पादक और मनोरञ्जक लेख, बात या वक्तता का नाम कविता है; श्रीर नियमानुसार तुली हुई पंक्तियों का नाम पद्य है। जिस पद्य को पढ़ने या सुनने से चित्त पर असर नहीं होता वह कविता नहीं। वह नपी-तुली शब्द-स्थापना सात्र है। गद्य श्रीर पद्य दोनों में कविता हो सकती है। तुकबन्दी और अनुप्रास कविता के लिए अपरिचार्थ नहीं। संस्कृत का प्रायः सारा पद्मसमूह बिना तुकबन्दी का है और संस्कृत से बढ़कर कविता शायद ही किसी और भाषा में हो। अरव में भी सैकड़ीं अच्छे-अच्छे कवि हो गये हैं। वहां भी गुरू-गुरू में तुकबन्दी का बिलकुल ख्याल न या। अङ्गरेज़ी में भी अनुप्रास-हीन बेतुकी कविता होती है। हां, एक बात ज़रूर है कि वज़न ग्रीर काफ़िय से कविता ग्रधिक चित्ताकर्षक हो जाती है। पर कविता के लिए ये बातें ऐसी ही हैं जैसे कि शरीर के लिए वन्नाभरण। यदि कविता का प्रधान धर्मा मनोरञ्जकता और प्रभावोत्पादकता उसमें न हो तो दनका होना निष्फल समभना चाहिए।



पदा के लिए काफ़िये बगैरह की ज़रूरत नहीं। कविता के लिए नहीं। कविता के लिए तो ये बातें एक प्रकार से उल्टे हानिकारक हैं। तुले हुए ग्रव्हों में कविता करने और तुक, अनुप्रास आदि ढूंढ़ने से कवियों के विचार-खातन्त्रा में वड़ी बाधा आती है। पदा के नियम कवि के लिए एक प्रकार की बेड़ियां हैं। उनसे जकड़ जाने से कवियों को अपनी खाभाविक उड़ान में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कवि का काम है कि वह अपने मनोभावों को खाधीनता-पूर्वक प्रकट करे। पर काफ़िया और वज़न उसकी स्वाधीनता में विम्न डालते हैं। वे उसे अपने भावीं को खतन्त्रतापूर्वक नहीं प्रकट होने देते। काफिय और वज़न को पहले ढूंढ़कर कवि को अपने मनोभाव तदनुकूल गढ़ने पड़ते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रधान बात अप्रधानता को प्राप्त हो जाती है और एक बहुत ही गीए बात प्रधानता के श्रासन पर जा बैठती है। इस से कवि अपने भाव स्वतन्वतापूर्वक नहीं प्रकट कर सकता। फल यह होता है कि कवि की कविता का असर कम हो जाता है। कभी-कभी तो वह विस्कुल ही जाता रहता है। अब आप ही कहिए कि जो वज़न और कृफिया कविता के लचण का कोई



ग्रंश नहीं उकें ही प्रधानता देना भारी भूल है या नहीं ?

जो बात एक असाधारण और निराले ढंग से शब्दीं के द्वारा इस तरह प्रकट की जाय कि सुनने वाले पर उसका कुछ न कुछ असर ज़रूर पड़े, उसी का नाम कविता है। ग्राज-कल हिन्दी में जो सज्जन पद्य-रचना करते हैं और उसे कविता समभकर क्याने दौड़ते हैं उनको यह बात ज़रूर याद रखनी चाहिए। इन पदा रचयिताओं में कुछ ऐसे भी हैं जो अपने पद्यों को कालिदास, होमर और बाइरन की कविता से भी बढ़ कर समभते हैं यदि कोई सम्पादक उन्हें प्रकाशित करने से इनकार करता है तो वे अपना अपमान समभते हैं और वेचारे सम्पादक के खिलाफ़ नाटक, प्रहसन श्रीर व्यङ्ग-पूर्ण लेख प्रकाशित करके श्रपने जी की जलन शान्त करते हैं। वे इस बात को बिलकुल ही भूल जाते हैं कि यदि उनकी पद्म-रचना अच्छी हो तो कीन ऐसा सूर्ख होगा जो उसे अपने पत्र या पुस्तक में सहर्ष और सधन्यवाद न प्रकाशित करेगा ?

किव का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का सूभाना है। उसके लिए कल्पना (Imagination) की बड़ी ज़रूरत है। जिस में जितनी ही अधिक यह ग्रांक्ति होगी वह उतनी ही अधिक



अच्छी कविता लिख सकेगा। कविता के लिए उपज चाहिए। नये-नये भावों की उपज जिसके हृदय में नहीं वह कभी अच्छी कविता नहीं लिख सकता। ये बातें प्रतिभा की बदीलत होती हैं। इसोलिए संस्कृतवालीं ने प्रतिभा को प्रधानता दी है। प्रतिभा ईम्बरदत्त होती है। अभ्यास से वह नहीं प्राप्त होती है। इस शक्ति को कवि मां के पेट से लेकर पैदा होता है। इसी की बदीलत वह भूत और भविष्यत् को हस्तामलकवत् देखता है, वर्तमान की तो कोई वात ही नहीं। इसी की क्रपा से वह सांसारिक बातों को एक अजीब निराले ढंग से बयान करता है, जिसे सुनकर सुननेवाले के हृदयोदधि में नाना प्रकार के सूख, दु:ख, आयर्थ आदि विकारीं की लहरें उठने लगती हैं। कवि कभी कभी ऐसी ग्रह्त बातें कह देते हैं कि जो कवि नहीं हैं उनकी पहुंच वहां तक कभी हो ही नहीं सकती।

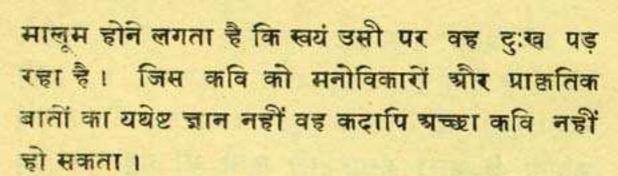
किव का काम है कि वह प्रक्रित-विकास को खूब ध्यान से देखे। प्रक्रित की लीला का कोई और-छोर नहीं। वह अनन्त है। प्रक्रित अज्ञुत अज्ञुत खेल खेला करती है। एक छोटे से फूल-में वह अजीब-अजीब कीशल दिखाती है। वे साधारण आदिमियों के ध्यान में नहीं आते। वे उनको समभ ही नहीं सकते।



पर किव अपनी सूक्त दृष्टि से प्रकृति के की शल अच्छी तरह देख लेता है; उनका वर्णन भी करता है; उनसे नाना प्रकार की शिचा भी यहण करता है; और अपनी किवता के द्वारा संसार को लाभ भी पहुंचाता है। जिस किव में प्राकृतिक दृश्य और प्रकृति के की शल देखने और समभने का जितना ही अधिक ज्ञान होता है वह उतना ही बड़ा किव भी होता है।

HINDI SELECTIONS

प्रक्रति-पर्यालोचना के सिवा कवि को मानव-स्वभाव की यालोचना का भी यभ्यास करना चाहिए। मनुष्य अपने जीवन में अनेक प्रकार के सुख, दु:ख आदि का अनुभव करता है। उसकी दशा कभी एक सी नहीं रहती। अनेक प्रकार की विकारतरंगें उसके मन में उठा ही करते हैं। इन विकारों की जांच, ज्ञान श्रीर अनुभव करना सबका काम नहीं। केवल कवि ही इनके अनुभव करने और कविता दारा औरों को इनका अनुभव कराने में समर्थ होता है। जिसे कभी पुत्र-शोक नहीं हुआ उसे उस शोक का यथार्थ ज्ञान होना सम्भव नहीं। पर यदि वह कवि है तो वह पुत्र-शोकाकुल पिता या माता की आतमा में प्रवेश सा करके उसका अनुभव कर लेता है। उस अनुभव का वह इस तरह वर्णन करता है कि सुननेवाला तन्मय होकर उस दु:ख से अभिभूत हो जाता है। उसे ऐसा



इसी प्रकार कविता को प्रभावीत्पादक बनाने के लिए उचित शब्दस्थापना की भी बड़ी ज़रूरत है। किसी मनो-विकार के दृश्य के वर्णन में ढूंढ़ ढूंढ़ कर ऐसे ग्रव्ह रखने चाहिए जो सुननेवाले की आंखों के सामने वर्ण्य-विषय का चित्र सा खींच दें। मनोभाव चाहे कैसा ही अच्छा क्यों न हो, यदि वह तदनुकूल शब्दों में न प्रकट किया गया तो उसका असर यदि जाता नहीं रहता तो कस ज़रूर हो जाता है। इसीलिए कवि को चुन चुन कर ऐसे शब्द रखने चाहिए, और इस क्राम से रखने चाहिए, जिससे उसके मन का भाव पूरे तीर पर व्यक्त हो जाय। उसमें कसर न पड़े। मनोभाव ग्रव्दों ही के दारा व्यक्त होता है। अतएव युक्तिसङ्गत ग्रव्द-स्थापना के बिना कवि की कविता तादश हृदय-इ।रिणी नहीं हो सकती। जो कवि श्रच्छी शब्द-स्थापना करना नहीं जानता, अथवा यों कहिए कि जिसके पास काफ़ी शब्द-समूह नहीं है, उसे कविता करने का परिश्रम ही न करना चाहिए। जो सुकवि हैं उन्हें एक एक ग्रब्द की योग्यता ज्ञात रहती है। वे



खूब जानते हैं कि किस ग्रब्द में क्या प्रभाव है। ग्रतएव जिस ग्रब्द में उनको भाव प्रकट करने की एक बाल भर भी कमी होती है उसका वे कभी प्रयोग नहीं करते। ग्राजकल के पद्म-रचना-कर्ता महाग्रयों को इस बात का बहुत कम ख़्याल रहता है। इसीस उनको किवता, यदि श्रच्छे भाव से भरी हुई भी हो तो भी, बहुत कम ग्रसर पैदा करती है। जो किव प्रति पंक्ति में, निरर्थक 'सु', 'जु' ग्रीर 'कु' का प्रयोग करता है वह मानों इस बात का खुद हो साटीं फ़िकेट दे रहा है कि मेरे श्रिकत ग्रब्दकोग्र में ग्रब्दों की कमी है। ऐसे किवियों की किवता कदािप सर्व-सम्मत ग्रीर प्रभावोत्पादक नहीं हो सकती।

अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि सिल्टन ने कविता के गुण वर्णन किये हैं। उनकी राय है कि कविता सादी हो, जोश से भरी हुई हो, और असलियत से गिरी हुई न हो।

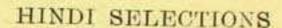
सादगी से यह मतलब नहीं कि सिर्फ ग्रव्द-समूह ही सादा हो, किन्तु विचार-परम्परा भी सादी हो। भाव और विचार ऐसे सूच्य और छिपे हुए न हीं कि उनका मतलब समभ में न आवे, या देर से समभ में आवे। यदि कविता में कोई ध्वनि हो तो इतनी दूर की न हो जो उसे समभने में गहरे विचार की ज़रूरत हो।



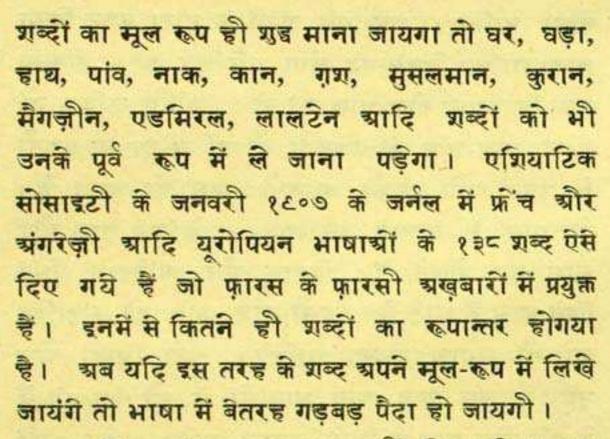
कविता पढ़ने या सुनने वाले को ऐसी साफ़-सुथरी सड़क मिलनी चाहिए जिस पर कंकड़, पत्थर, टीले, ख़न्दक़, कांटे और भाड़ियों का नाम न हो। वह खूब साफ़ श्रीर हमवार हो, जिससे उस पर चलने वाला श्राराम से चला जाय। जिस तरह सड़क ज़रा भी जंची-नीची होने से बाइसिकल (पैरगाड़ी) के सवार को दचके लगते हैं उसी तरह कविता की सड़क यदि योड़ी भी समतल न हुई तो पढ़ने वाले के हृदय पर धका लगे बिना नहीं रहता। कविता-रूपी सड़क के दूधर-उधर स्वच्छ पानी के नदी-नाले बहते हों ; दोनों तरफ़ फलों-फूलों से लदे हुए पेड़ हों ; जगह जगह पर विश्वाम करने योग्य स्थान बने हों; प्राक्तिक दृश्यों की नई-नई भांकियां आंखों को लुभाती हों। दुनियां में आजतक जितने अच्छे-अच्छे कवि हुए हैं उनकी कविता ऐसी ही देखी गई है। अटपटे भाव और अटपटे शब्द प्रयोग करने वाले कवियों की कभी कृद्र नहीं हुई। यदि कभी किसी की कुछ हुई भी है तो थोड़े ही दिनों तक। ऐसे कवि विस्मृति के अन्धकार में ऐसे किए गये हैं कि इस समय उनका कोई नाम तक नहीं जानता। एक मात्र ग्रब्द-भङ्गार ही जिन कवियों की करामात है उन्हें चाहिए कि वे एकदम ही बोलना बन्द कर दें।

भाव चाहे कैसा ही ऊंचा क्यों न हो, पेचीदा न

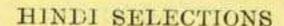
65

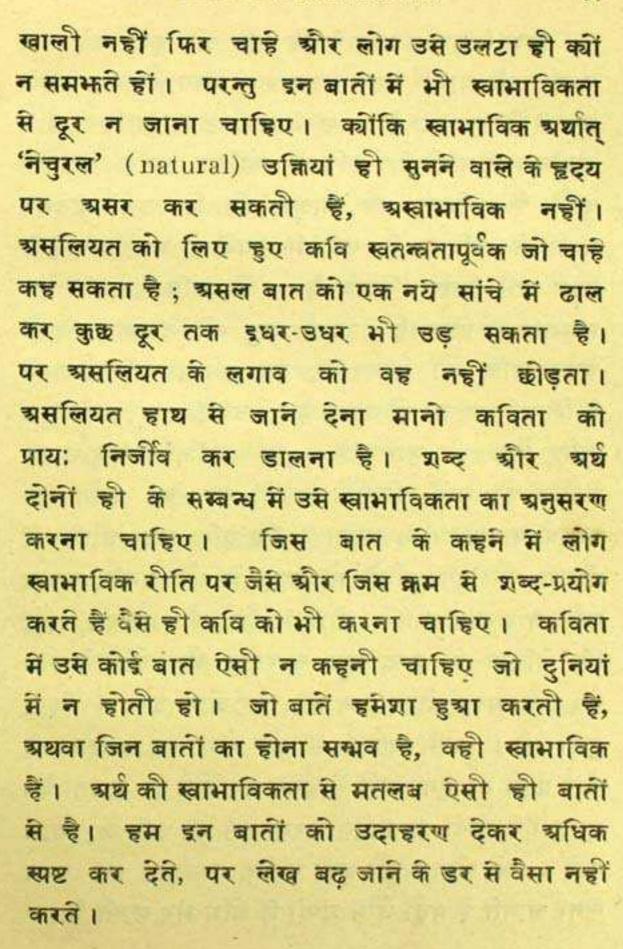


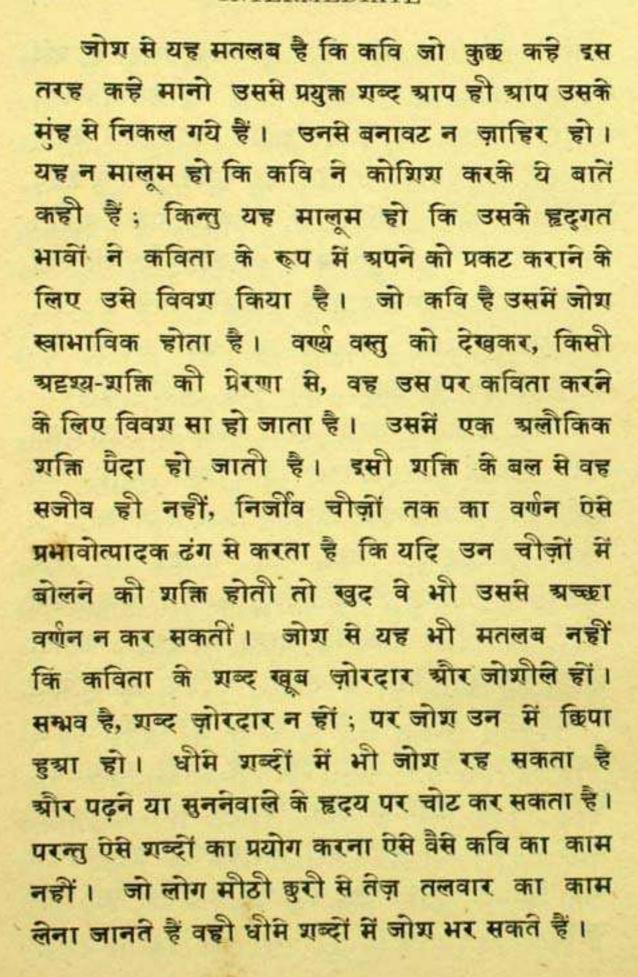
होना चाहिए। वह ऐसे ग्रब्दों के दारा प्रकट किया जाना चाहिए जिनसे सब लोग परिचित हों। मतलब यह कि भाषा बोल-चाल की हो। क्यों कि कविता की भाषा बोल-चाल से जितनी ही अधिक दूर जा पड़ती है उतनी ही उसकी सादगी कम हो जाती है। बोलचाल से मतलब उस भाषा से है जिसे खास और याम सब बोलते हैं; विदान् श्रीर श्रविदान् दोनों जिसे काम में लाते हैं। इसी तरह कवि को मुहाविरे का भी ख्याल रखना चाहिए। जो हिन्दी और उदू में कुछ ग्रव्द अन्य भाषाओं के भी आ गये हैं वे यदि बोल-चाल के हैं तो उनका प्रयोग सदोष नहीं माना जा सकता। उन्हें त्याच्य नहीं समभना चाहिए। कोई-कोई ऐसे प्रव्हों को उनके मूल-रूप में लिखना ही सही समभति हैं। पर यह उनकी भूल है। जब अन्य भाषा का कोई शब्द किसी और भाषा में त्राजाता है तब वह उसी भाषा का हो जाता है। अतएव उसे उसकी सूल भाषा के रूप में लिखने जाना भाषाविज्ञान के नियमों के ख़िलाफ़ है। खुद 'मुहावरह' शब्द ही को देखिए। जब उसे अनेक लोग हिन्दी में 'मुहाविरा' लिखने और बोलने लगे तब उसका ग्रसली रूप जाता रहा। वह हिन्दी का शब्द होगया। यदि अन्य भाषात्रीं के बहु-प्रयुक्त 5—1421 B.T.

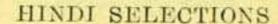


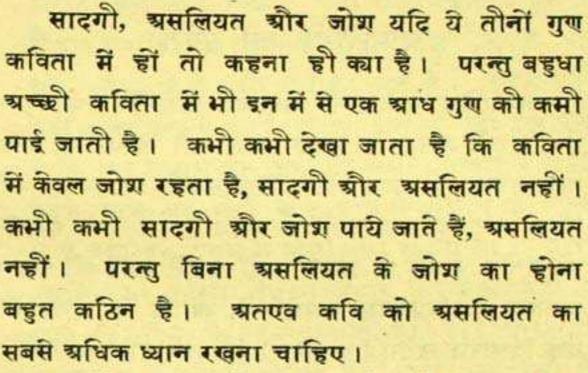
प्रकार का इतिहास समभा जाय और हर बात में सचाई का ख्याल रक्का जाय। यह नहीं कि सचाई की कसीटी पर कसने पर यदि कुछ भी कसर मालूम हो तो किवता का किवतापन जाता रहे। असलियत से सिर्फ इतना ही मतलब है कि किवता बेबुनियाद न हो उसमें जो उक्ति हो वह मानवी मनोविकारों और प्राक्तिक नियमों के आधार पर कही गई हो। खाभाविकता से उसका लगाव न छूटा हो। किव यदि अपनी या और किसी की तारीफ़ करने लगे और यदि वह उसे सचमुच हो सच समभी, अर्थात् यदि उसकी भावना वैसी हो हो, तो वह भी असलियत से



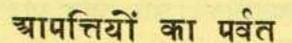








अच्छी किवता की सबसे बड़ी परीचा यह है कि उसे सुनते ही लोग बोल उठें कि सच कहा। वहीं किव सचे किव हैं जिनकी किवता सुनकर लोगों के मुंह से सहसा यह उक्ति निकलती है। ऐसे किव धन्य हैं; और जिस देश में ऐसे किव पैदा होते हैं वह देश भी धन्य है। ऐसे ही किवियों की किवता चिरकाल तक जीवित रहती है।



जगत्प्रसिंख तत्त्वज्ञानी महात्मा सीक्रेटीज का मत या कि यदि संसार के मनुष्य मात्र की आपत्तियां एक ठीर एकत्र की जायं और फिर सबको बराबर बराबर हिस्सा बांट दिया जाय तो इस प्रबंध से भी उन मनुष्यों को संतोष नहीं हो सकता जो पहले अपने को अत्यंत अभागा वा विपद्यस्त समभते थे, क्योंकि वे शीव ही यह विचारने लगेंगे कि हमारी पूर्व दशा ही अच्छी थी। इसका कारण यह है कि जो दशा अच्छी वा बुरी विधना की ओर से इमें मिली है वह या तो (१) इमारी सहन-शक्ति के योग्य होती है, या (२) उसमें रहने से इस उसको सइन करने में अभ्यस्त हो जाते हैं, और इस कारण दोनों अवस्थाओं में से कोई भी हमें नहीं खलती। महाकवि होरेस भी इस विषय में सीक्रेटीज से सहमत थे। इन्होंने यहां तक लिखा कि जिन कठिनाइयों वा यातनाओं में हम पिसते रहते हैं वे उन आपत्तियों की अपेचा बहुत ही न्यून हैं जो हमको अपनी दशा दूसरे से परिवर्तन करने में मिल सकती हैं।

मैं अपनी आरामकुर्सी पर बैठा उक्त दो कथनों पर विचार कर रहा था और अपनी मानसिक तरंगों में निमग्न था, कि सुक्ते भपकी सी आ गई और मैं तुरंत



खरीटे लेने लग गया। सोते सोते देखता क्या हं कि मैं एक रमणीक मैदान में जा पहुंचा हं जिसके चारों श्रोर ज'चे ज'चे पर्वत श्रेणीबड खड़े हैं। इन पर्वतों ने हरी वनस्पतियों से अपने प्रत्येक अंग को ऐसा ढक रखा है कि क्या मजाल जो कहीं भी खुला दिखाई दे जाय। इनके ढाल पर कोटे कोटे वचों के बीच में कहीं कहीं कोई बड़ा वृत्त देखने में बहुत भला लगता था। यदापि प्रक्रति-रूपी माली ने इस मैदान में एक भी बड़ा हच रहने नहीं दिया है, पर मैदान की हरी हरी घास वायु के हिलोरों में लहलहाती हुई कैसी प्यारी लग रही है! मैं इन्हीं मानसिक भावों की तरंगीं में अपने आपको भूल प्रकृति की अनुपम शोभा देख रहा था कि सहसा मुक्त कुछ शब्द सुनाई पड़े। ध्यान देकर सुनने से जान पड़ा कि जैसे कहीं ढिंढोरा पिटता हो। पास के एक मनुष्य से पृक्षने पर मालूम हुआ कि भगवान् चतुरानन ने आजा दी है कि मनुष्य मात्र आकर अपनी अपनी आपत्तियां इस स्थान में फेंक जायं। इस कार्य के लिये यह मैदान नियत किया गया है। यह सुनकर मैं भी, इस कीतुकमय लीला को देखने के लिये, एक कोने में खड़ा हो गया। सुभी यह देखकर एक प्रकार की प्रसन्ता होती थी कि सारे मनुष्य क्रमणः या याकर अपनी अपनी विपत्ति को गठरी मैदान में फेंक रहे हैं। यह



ढेर थोड़ी ही देर में इतना बड़ा हो गया कि आकाश को कृता दिखाई पड़ने लगा।

इस भीड़भाड़ में एक दुबली पतली चंचला खी बड़ा उत्साह दिखा रही थी। ठीला ठाला वख पहने, हाथ में स्थागनीफाइ'ग ग्लास लिए वह इधर उधर घूमती दिखाई दे रही थी। उसके वख में भूत प्रेत के मन:-कल्पित चित्र बेलब्टों में कड़े थे।

जब उसका वस वायु में इधर उधर उड़ता तब बहुत सी विचित्र ढंग की हास्यजनक एवं भयानक कल्पित मूर्तियां उसमें दिखाई पड़तीं। उसकी चेष्टा से उन्माद तथा विह्वलता के कुछ चिक्क भलक रहे थे। लोग उसे भावना कहकर पुकारते थे। मैंने देखा कि वह चंचला प्रत्येक मनुष्य को अपने साथ ढेर के पास ले जाती, बड़ी उदारता से उनकी गठरी कंधे पर उठवा देती और अंत में उसके फेंकने में भी पूरी सहायता देती है। मेरा हृदय यह दृख्य देखकर कि सभी मनुष्य अपने विपदुभार के नीचे दब रहे हैं भर आया। आपत्तियों का यह पवत देखकर मेरा चित्त और भी चलायमान हो रहा था।

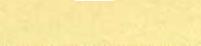
इस स्ती के अतिरिक्त और भी कई मनुष्य मुर्भ इस भीड़ में विचित्र दिख़ाई पड़े। एक को देखा कि वह चीथड़ों की गठरी अपने लबादे के भीतर बड़ी सावधानी से किपाए हुए आया है। जब उसे फेंकने लगा तब मैंने



देखा कि वह अपने दारिद्रा को फेंक रहा है। एक दूसरे को देखा कि बड़े पश्चात्ताप के साथ अपनी गठरी फेंककर चलता हुआ। मैंने उसके जाने पर उसकी गठरी खोलकर देखी तो मालूम हुआ कि दुष्ट अपनी अर्डागिनी को फेंक गया है जिससे उसको सख की अपेचा अति दुःख प्राप्त होता था। इसके अनंतर दिखाई दिया कि बहुतरे प्रेमीजन अपनी अपनी गुप्त गठरी लिए आ रहे हैं।

पर सबसे आश्चर्यजनक बात यह थो कि यद्यपि ये लोग अपनी अपनी गठिरयां फेंकने के हित लाए थे, और उनके दीर्घ नि: खास से जान पड़ता था कि उनका हृदय इस बोभ के नीचे दबकर चूर चूर हुआ जाता है, पर उस देर के निकट पहुंचने पर उनसे फेंकते नहीं बनता।

ये लोग कुछ काल तक खड़े न जाने क्या सोचते रहे। उनकी चेष्टा से अब ऐसा जान पड़ने लगा कि उनके चित्त में मानों बड़ा संकल्प-विकल्प हो रहा है। फिर शीन्न हो उनका मुख प्रफुन्न दिखाई पड़ने लगा और वे अपनी अपनी गठरी ज्यों की त्यों लिए वहां से चलते दिखाई दिए। मैं समभ गया। इन लोगों ने तर्क-वितर्भ के पश्चात् यही निश्चय किया कि अपनी अपनी बला अपने पास हो रखना भलमनसाहत है। इसी से



ये सब अपनी गठरियां अपने घर लिए जा रहे हैं। मैंने देखा कि बहुत सी मनचली बूढ़ी स्त्रियां, जिनके मन की अभी सुख-संभोग से लिप्त नहीं हुई थी और जो चाहती थीं कि इस सदा नवयीवना ही बनी रहें, अपनी अर्दियां फेंकने के लिये या रही हैं। बहुतेरी यलपवयस्का क्रोकड़ियां अपना काला वर्ण फेंक रही हैं और यह चाहती हैं कि मेरा रंग गोरा हो जाय। किसी ने अपनी बड़ी नाक, किसी ने नाटा कद और किसी ने अपनी बड़ी पेटी फेंक दी है और यह प्रार्थी हुई हैं कि मेरी तोंद की परिधि कुछ कम हो जाय या यदि रहे भी तो कुछ उंचाई अधिक मिल जाय। किसी ने अपना कुबड़ापन प्रमन्तापूर्वक देर में फेंक दिया है। इसके पश्चात् रोगियों का दल आया जिसने अपना अपना रोग अलग कर दिया। पर सुक्षे सबसे आयर्यजनक यह जान पड़ा कि मैंने इन सब मनुष्यों में किसी को भी अब तक ऐसा नहीं देखा जो अपने दोषों वा अपनी मूर्खता से अलग होने आया हो। मैंने पहले सोचा या कि मनुष्य मात्र इस समय अवसर पा अपना अपना मनो-विकार फेंक जायंगे।

अब मैंने देखा कि कोई कोई मनुष्य पत्र के बंडल बगल में दबाए बड़ी व्ययता से फेंकने को दौड़े आ रहे हैं। क्यों भाई! यह पत्रीं का बंडल कैसा? मालम



हुआ कि यह दफा १२४ ए० है, जिसने इन महाश्यों को चिंताकुल कर रखा है, एवं इनके व्यापार में बाधा डाल रखी है। इसके अनंतर एक मृखे को देखा कि वह अपने अपराधों को बंडल में बांधकर फेंकने ले आया है, किंतु अपराधों को फेंकने के बदले अपनी चेतनाश्रक्ति को फेंके देता है। एक दूसरे महापुरुष अविद्या के स्थान में नस्त्रता को पटककर भागे जाते हैं।

जब इस प्रकार मनुष्य मात्र अपने अवगुणों की गठिरयां फेंक चुके, तब वह चंचला युवती फिर दिखाई पड़ी, पर इस बार वह मेरी श्रोर श्रा रही है। यह देख मेरे जी में अनेक प्रकार के विचार उठने लगे। पर उसकी मदमाती चाल कुछ ऐसी भली मालूम हुई कि में एकटक उसी ओर देखता रहा। उसके अंग अंग में ऐसी चंचलता भरी थी कि चलने में एक एक अंग फड़कता था। मैं यह देख ही रहा था कि वह आ पहुंची और जैसे कोई किसी को दर्पण दिखावे, उसने अपने ब्रह्मिक यंत्र को मेरे समाख किया। मैं अपने चेहरे को उसमें देखकर चौंक पड़ा। उसकी अपरिमित चौड़ाई पर मुक्ते बड़ी ग्लानि चुई और उसको उपमुख के समान उतारकर मैंने भी फेंक दिया। संयोग से जो मनुष्य मेरी बगल में खड़ा या उसने अभी कुछ देर पहले



अपने बेढब लंबे चेहरे को अलग कर दिया था। मैंने सोचा कि मुक्के अपने लिये दूसरा चेहरा कहीं दूर खोजने नहीं जाना पड़ेगा और उसने भी यही सोचा कि उसे भी पास ही अपने योग्य सुडील चेहरा मिल जायगा। मनुष्य मात्र अपनी आपत्तियां फेंक चुके थे। इस कारण अब उन सबको अधिकार था कि, अपने लिये, जो चाहें ढेर में से ले लें।

वास्तव में सुक्षे यह देख बड़ी प्रसन्नता होती थी कि संसार के सब मनुष्यों ने अपनी अपनी विपद फेंक दी है। उनकी आकृति से संतोष लिचत हो रहा था। अपने कार्य से छुटी पा सभी इधर उधर टहल रहे थे। पर अब सुक्षे यह देख आश्चर्य हो रहा था कि बहुतों ने जिसे आपित्त समभक्तर अलग कर दिया था उसी के लिये बहुतेरे मनुष्य टूट रहे थे, एवं मन हो मन यह कहते थे कि ऐसे खर्गीय पदार्थ को जिसने फेंक दिया है वह अवस्थ कोई सूर्ख होगा। अब भावना देवी फिर चंचल हुई और इधर उधर दीड़ धूप करने लगीं। सबको फिर बहुकाने लगीं कि तू असुक पदार्थ ले, असुक वस्तु न ले।

इस समय सारी भीड़ में जो कोलाइल मच रहा था उसका वर्णन नहीं हो सकता। मनुष्य मात्र में एक प्रकार की खलबली फैल रही थी। क्या बालक, क्या



वृद्ध, सभी अपने अपने मनोवांकित पदार्थ के ढूंढ़ निकालने में दत्तचित्त हो रहे थे।

मैंने एक वृद्ध को, जिसे अपने एक उत्तराधिकारी की बड़ी चाह थी, देखा कि एक बालक को उठा रहा है। इस बालक को उसका पिता उससे दुखी होकर फेंक गया था। मैंने देखा कि इस दुष्ट पुत्र ने कुछ देर बाद उस विद का नाकों में दम कर दिया। वह वैचारा अंत में फिर यही विचारने लगा कि मेरा पूर्व क्रोध ही सुक्षे सिल जाय। संयोग से इस बालक के पिता से उसकी भेंट हो गई। इस वृद्ध ने उससे सविनय कहा कि महाश्य! याप यपना पुत्र ले लीजिए और मेरा क्रोध सुभी लीटा दीजिए। पर अब ऐसा करने में वह समर्थन था। एक जहाजी नीकर ने अपनी बेड़ी फेंक दी थी और बदले में वात रोग की गठरी उठा ली थी। पर इससे उसका खरूप ऐसा विचित्र हो गया या कि देखते नहीं बनता या। इसी प्रकार सभी ने कुछ न कुछ हेरा-फेरी की। किसी ने अपने दारिद्रा के पलटे में कोई रोग पसंद किया, किसी ने चुधा देकर अजीर्ण उठा खिया। बहुतेरी ने अपनी पीड़ा के बदले कोई चिंता ले ली। पर सबसे अधिक खियां ही इस हिरा-फेरी में दिखाई देती थीं। इने अपने नाक, कान वा चेहरे मोहरे के चुनने में बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती थी। कोई अपने मुख पर के



तिल से लंबे लंबे किया बदल रही है, किसी ने पतली कमर के बदले चीड़ा सीना लेने की इच्छा प्रकट की है। जो हो, पर ये अबलाएं अबला होने के कारण वा अपनी तीच्णता के कारण अपनी नवीन दशा को शीन्न ही समभ जायंगी एवं अपनी पूर्व दशा को प्राप्त करने और नवीन के त्यागने में सबसे पहले तत्पर हो जायंगी।

मुक्ती सबसी अधिक दया उस कुबड़े पर आती है जिसने अपना कुबड़ापन बदलकर पैर का लंगड़ापन पसंद किया था।

यब मैं यपना इत्तांत सुनाता हं। मैं पहले कह चुका हं कि मेरे बगलवाले मनुष्य ने भेरा छोटा मुख यपने लिये चुन रखा था। उसने यवसर पाते ही मेरा चेहरा उठा लिया और प्रसन्तापूर्वक अपने चेहरे पर लगा लिया। मेरा गोल चेहरा लगाते ही वह ऐसा कुरूप तथा हास्यजनक दिखाई पड़ने लगा कि मैं हंसी न रोक सका। वह भी मेरी हंसी ताड़ गया और अपने किए पर अपने मन में पछताने लगा। अब मेरे मन में भी यह विचार उठा कि कहीं मैं भी वैसा ही बेढंगा न दिखाई पड़ता होजं। नवीन चेहरा पाकर मैंने अपना माथा खुरचने के लिये हाथ बढ़ाया तो माथे का स्थान भूल गया। हाथ होठीं तक पहुंचकर एक गया। नाक के स्थान का भी ठीक ठीक अनुभव न था। इसी से



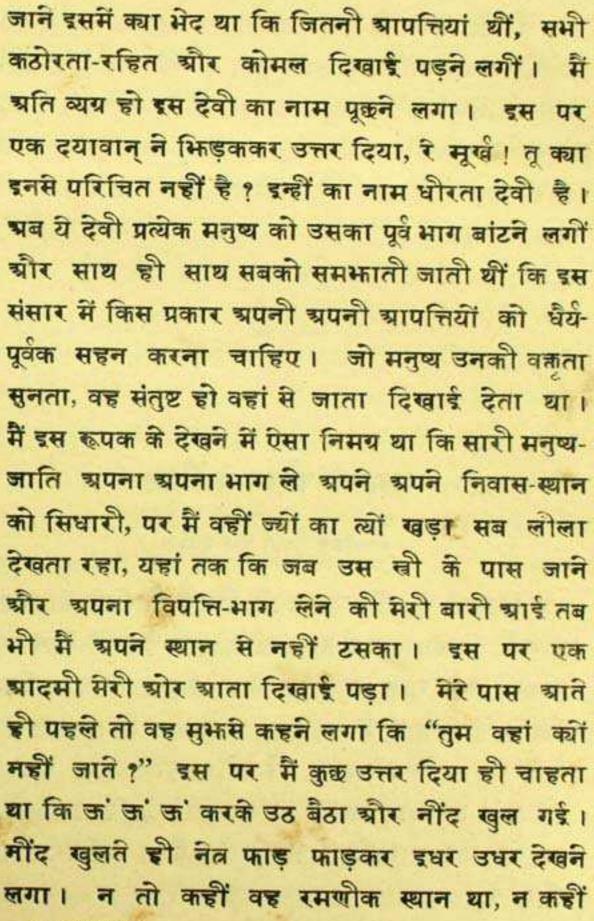
HINDI SELECTIONS

उंगलियों की कई बार ऐसी ठोकर लगी कि नेशों में जल भर आया। भेरे पास ही दो मनुष्य ऐसी बेढब स्रतवाले खड़े थे जिन्हें देख देख मैं मन ही मन हंस रहा था।

वह सारा ढेर इस प्रकार मनुष्यों ने आपस में बांट लिया पर वास्तविक संतोष को वे तिस पर भी न प्राप्त कर सके। जो बुडिमान् ये उन्हें अपनी मूर्खता का बोध पहले होने लगा। सारे मैदान में पहले से अधिक विलाप और भनभनाइट का शब्द सुनाई देने लगा। जिधर दृष्टि पड़ती थी उसी और लोग बिलख रहे थे श्रीर ब्रह्मा की दुहाई दे रहेथे। जब ब्रह्मा ने देखा कि अब बड़ा हाहाकार मच गया है और यदि शीव दनका उदार न किया गया तो और भी हाहाकार मच जायगा, तब उन्होंने फिर याजा दी कि मनुष्य सात्र फिर अपनी अपनी आपत्तियां फेंक दें, उनको उनकी पुरानी ग्रापत्ति दे दी जायगी। यह ग्राज्ञा सुन सबके जी में जी आया। सभी लोग जो उपस्थित घे सुग्ध हो गए, एवं जयध्वनि करने लगे। सबने पुनः अपनी अपनी गठरी फेंक दी। इस बार एक विशेषता देखने में आई। वह यह थी कि ब्रह्मा ने उस चंचला खी को याजा दी कि वह तत्वण वहां से चली जाय। यह आज्ञा पात ही भावना देवी वहां से चल दी। उसका वहां से जाना



HINDI SELECTIONS





वह ली थी, केवल मैं अपनी शय्या पर पड़ा था। मैं इस विचित्र स्वप्न पर विचार करने लगा। अ'त में मैंने यही सारांश निकाला कि वस्तुत: इस संसार में मनुष्य के लिये धैर्थ्यपूर्वक अपनी आपत्तियों का सहन करना और कभी किसी दूसरे की दशा को ईर्ष्या की दृष्टि से न देखना ही सुख का मूल है।

समाज और साहित्य

सामाजिक स्थिति और साहित्य

सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिये जो भाव-सामग्री निकालकर समाज को सौंपता है उसी के संचित भांडार का नाम साहित्य है। मनुष्य की सामाजिक स्थिति के विकास में साहित्य का प्रधान योग रहता है। यदि संसार के इतिहास की छोर हम ध्यान देते हैं तो हमें यह भली भांति विदित होता है कि साहित्य ने मनुष्यों की सामाजिक स्थिति में कैसा परिवर्तन कर दिया है।



HINDI SELECTIONS

साहित्य और समाज

पाश्चात्य देशों में एक समय धर्म-संबंधी शक्ति पोप के हाथ में आ गई थी। साध्यमिक काल में इस शक्ति का बड़ा दुरुपयोग होने लगा। अतएव जब पुनरुत्यान ने वर्त्तमान काल का स्वपात किया और युरोपीय मस्तिष्क स्वतंत्रता देवी की आराधना में रत हुआ तब पइला काम जो उसने किया वह धर्म के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करना था। इसका परिणाम यह हुआ कि युरोपीय कार्यचेत्र से धर्म का प्रभाव इटा और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की लालसा बढ़ी। यह कीन नहीं जानता कि फ्रांस की राज्यक्रांति का स्वपात खूसो चौर वालटेयर के लेखों ने किया और इटली के पुनक्त्यान का बीज मेजिनी के लेखीं ने बीया। भारतवर्ष में भी साहित्य का प्रभाव इसकी अवस्था पर कम नहीं पड़ा। यहां की प्राक्तिक अवस्था के कारण सांसारिक चिन्ता ने लोगों को अधिक न ग्रसा। उनका विशेष ध्यान धर्म की ग्रोर रहा। वृद्धि हुई, नए विचारीं, नई संस्थाओं की सृष्टि हुई। बौडधर्म और आर्थ-समाज का प्राबल्य और प्रचार ऐसी ही स्थिति के बीच हुआ। इस्लाम और हिंदू धर्म जब परस्पर पड़ोसी हुए तब दोनों में से कूप-मंडूकता का भाव निकालने के लिये कबीर नानक आदि का प्रादुर्भाव

हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि मानव जीवन की सामाजिक गति में साहित्य का स्थान बड़े गीरव का है।

साहित्य की उपयोगिता

यव यह प्रश्न छठता है कि जिस साहित्य के प्रभाव से संसार में इतने उलट-फेर हुए हैं, जिसने युरोप के गौरव को बढ़ाया जो मनुष्य-समाज का हितविधायक मित्र है वह क्या हमें राष्ट्रनिर्माण में सहायता नहीं दे सकता? क्या हमारे देश की उन्नित करने में हमारा पय-प्रदर्शक नहीं हो सकता? हो सबश्य सकता है यदि हम लोग जीवन के व्यवहार में उसे अपने साथ साथ लेते चलें, उसे पीछे न क्टूने दें। यदि हमारे जीवन का प्रवाह दूसरी श्रोर को है, तब तो हमारा उसका प्रकृति-संयोग हो हो नहीं सकता।

श्रव तक जो वह हमारा सहायक नहीं हो सका है, इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो इस विस्तृत देश की स्थिति एकांत रही है श्रीर दूसरे इसके प्राक्तिक विभव का वारापार नहीं है। इन्ही कारणी से इस में संघश्रक्ति का संचार जैसा चाहिए वैसा नहीं हो सका है श्रीर यह श्रव तक श्रालसी श्रीर सखलोलुप बना हुआ है। परंतु श्रव इन श्रवस्थाश्रों में परिवर्तन हो चल



है। इसके विस्तार की दुर्गमता श्रीर स्थित की एकांतता को श्राधुनिक वैद्यानिक श्राविष्कारों ने एक प्रकार से निर्मूल कर दिया है श्रीर प्राक्तिक वैभव का लाभालाभ बहुत कुछ तीव्र जीवन-संशाम की सामर्थ पर निर्भर है। यह जीवन-संशाम दो भिन्न सभ्यताश्री के संघर्षण से श्रीर भी तीव्र श्रीर दु:खमय प्रतीत होने लगा है। इस भवस्था के अनुकूल हो जब साहित्य उत्पन्न होकर समाज के मस्तिष्क को प्रोत्साहित श्रीर प्रतिक्रियमाण करेगा तभी वास्तविक उन्नति के लच्चण देख पड़ेंगे श्रीर उसका कल्याणकारी फल देश को श्राधुनिक काल का गौरव प्रदान करेगा।

साहित्य की कसीटी

अब विचारणीय यह है कि वह साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए जिससे कथित उद्देश्य की सिंडि हो सके? मेरे विचार के अनुसार इस समय हमें विशेषकर ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो मनोवेगों का परिष्कार करनेवाला, संजीवनी शक्ति का संचार करनेवाला, चरित्र को सुन्दर सांचे में ढालनेवाला, तथा बुंडि को तीव्रता प्रदान करनेवाला हो। साथ ही इस बात को भी आवश्यकता है कि यह साहित्य परिमार्जित, सरस और ओजस्विनी भाषा में तैयार किया जाय। इसको सब लोग स्वीकार करेंगे कि ऐसे साहित्य का इसारी हिंदी भाषा में अभी तक बड़ा अभाव है पर अभ लच्चण चारों और देखने में आ रहे हैं, और यह दढ़ आशा होती है कि थोड़े ही दिनों में उसका उदय दिखाई पड़ेगा जिससे जन-समुदाय की आंकें खुलेंगी और भारतीय जीवन का प्रत्येक विभाग ज्ञान की ज्योति में जगमगा उठेगा।

हिंदी और राष्ट्रीय साहित्य

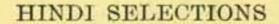
पर क्या यह प्रश्न नहीं किया जा सकता कि इस बात की क्या आवश्यकता है कि ऐसे साहित्य के उत्पादन का उद्योग हिंदी ही में किया जाय ? क्या अन्य भारतीय देश-भाषाओं में इसका स्त्रपात नहीं हो चुका है और क्या उनसे हमारा काम न चलेगा ? मेरा टढ़ विश्वास है कि समस्त भारतीय भाषाओं में हिंदी ही ऐसी है जो मात्रभूमि की सेवा के लिये सर्वया उपयुक्त है और जिससे सबसे अधिक लाभ की आशा की जा सकती है। गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाओं का आधुनिक साहित्य हमारी हिंदी के वर्त्तमान साहित्य से कई अंशों में भरा पूरा है, पर उनके प्राचीन साहित्य की तुलना हिंदी के प्राने साहित्य-भांडार से नहीं हो सकती, इस कारण उन्हे परंपरा की प्राचीनता का



गौरव प्राप्त नहीं है। जैसे किसी जाति के अभ्युत्थान में उसके प्राचीन गीरवान्वित इतिहास का प्रभाव अतुलनीय है वैसे ही भाषात्रीं को समता प्रदान करने में उसकी प्राचीन परंपरा का बल भी श्रत्यंत प्रयोजनीय है। किसी लेखक ने बहुत ठीक कहा है कि इतिहास का मूल्य खतंत्रता से भी बढ़कर है। खतंत्रता खोकर भी हमें इतिहास की रचा करनी चाहिए, क्योंकि इतिहास के दारा हम फिर खतंत्रता पा सकते हैं। पर स्वतंवता के दारा खोए हुए इतिहास को हम फिर नहीं प्राप्त कर सकते। जिन जातियों का प्राचीन इतिहास नहीं है, जिन्हे अपनी प्राचीनता और पूर्व गीरव का अभिमान नहीं है वे या तो शीव ही निर्मल हो जायंगी अथवा अपनी जातीयता के सारे लचण खो बैठेंगी। पर जिनका इतिहास वर्तमान है, जिनको अपने पूर्वजों का गौरव है, जो अपनी जननी जन्मभूमि के नाम पर आंसू बहाती हैं वे पददलित होकर भी जीवित रह सकती हैं और फिर कभी अनुकूल अवसर पाकर अपना सिर जंचा कर सकती हैं। ठीक यही अवस्था भाषाओं के प्राचीन भांडार की है।

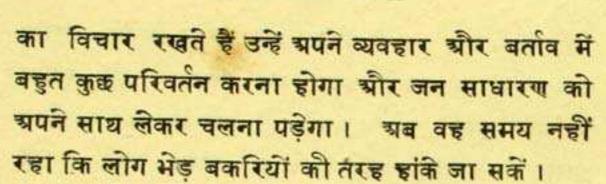
दूसरा गुण जो हिंदी में और भाषाओं की अपेचा अधिक पाया जाता है वह यह है कि इसका विस्तार किसी प्रांत वा स्थान की सीमा के भीतर बद्द नहीं है।





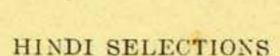


विदानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और जिनके कारण सारा संसार इसके ग्रहण का पचपाती हो सकता है और दूसरी ओर अपने ही देश में उसके समुचित प्रचार में बाधाएं देखते हैं तो न आयर्थ करते बनता है श्रीर न दुःख। इन बाधाश्रीं के कई कारण हैं, जैसे इसारी राजनैतिक स्थिति, अनिभन्नता, और दुरायह— इनका निवारण एक दिन में नहीं हो सकता। पर इसमें संदेह नहीं है कि ज्यों ज्यों इसके गुणों का ज्ञान लोगों को होता जायगा, वे अपने हानि लाभ को समभने लगेंगे, त्यों त्यों ये विम्न-बाधाएं कम होती जायंगी। फिर भी यह समभ लेना अत्यंत आवश्यक है कि ये विघ्न-बाधाएं साधारण नहीं हैं और इनके दूर करने में अनवरत परिश्रम की आवश्यकता है। इस संबंध में में एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। जो लोग इसके गुणों को जानते और इसके प्रचार की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं वे भी जब "अ'त: शाक्ता बहि: ग्रैवा:"के सिद्धांत पर चलने लगते हैं तब यही कहना पड़ता है कि हम लोगों में अभी चरित्र का बड़ा अभाव है। इन लोगों में कपट व्यवहार का श्राधिका देखकर कभी कभी निराशा का श्रंधकार हृदय पर का जाता है। पर निश्चय जानिए कि अब सार्वजनिक जीवन सुगम नहीं रह गया है। जो लोग सार्वजनिक कामों में अयसर होने

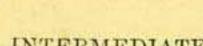


अब मैं थोड़ी देर के लिये आपका ध्यान हिंदी के गद्य श्रीर पद्य की श्रोर दिलाना चाहता है। यदापि भाषा की इन दोनों अंगों की पुष्टि का प्रयत्न हो रहा है पर दोनों की गति समान रूप से व्यवस्थित नहीं दिखाई देती। गद्य का रूप अब एक प्रकार से स्थिर हो चुका है, उसमें जो कुछ व्यतिक्रम या व्याचात दिखाई पड जाता है वह अधिकांश अवस्थाओं में सतभेद के कारण नहीं बल्कि अनभिज्ञता के कारण होता है। ये व्याघात या व्यतिक्रम प्रांतिक ग्रव्हों के प्रयोग, व्याकरण के नियमों के उन्नं वन आदि के रूप में ही अधिकतर दिखाई पड़ते हैं। इनके लिये कोई मत-संबंधी विवाद नहीं उठ सकता। इनके निवारण के लिये केवल समालोचकों की तत्परता और सहयोगिता की आवश्यकता है। इस कार्य में केवल व्यक्तिगत कारणों से समालीचकीं को दो पचीं में नहीं बांटना चाहिए।

गद्य के विषय में इतना कह चुकने पर उसके आदर्श पर थोड़ा विचार कर लेना भी आवश्यक जान पड़ता है। इसमें तो कोई मत-भेद नहीं कि जो बोली हिंदी गद्य के



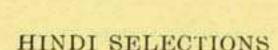
लिये यहण की गई है वह दिली और मेरठ प्रांत की है। अतः शब्दों के रूप, लिंग आदि का बहुत कुछ नियय तो वहां के शिष्ट प्रयोग दारा ही हो सकता है। जैसे पूरव में दही और हाथी को खीलिंग बोलते हैं पर पश्चिम में विशेष कर युक्त प्रांत में ये दोनों शब्द पुलिङ्ग स्वीकार करते हैं: यह इसलिये नहीं कि वे संस्कृत के अनुसार पुलिङ वा क्लीव होंगे बल्कि इसलिये कि वे पुलिङ रूप में ही उक्त प्रांत में व्यवहृत हैं। एक पंडितजी ने अपनी एक पुस्तक में पूरबी और पश्चिमी हिंदी का विलचण संयोग किया है। उनका एक ग्रब्द है सूतते हैं। स्तव क्रिया पूरव की है। उसमें उक्त पंडितजी ने प्रत्यय लगावर उसे "सूतरी हैं" बनाया। उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि जिस स्थान में चाते हैं जाते हैं चादि बोले जाते हैं वहां "सोते हैं" बोला जाता है "सूतते हैं" नहीं। उन्होंने "ने" विभक्ति पर भी अपनी बड़ी अक्चि दिखाई है, यह नहीं समभा कि वह किस प्रकार किया के कदंत-मूलक रूप के कारण संस्कृत की खतीया से खड़ी बोली में आई है। कुछ लोग, विशेषतः बिहार के लोग, क्रियात्रों के रूपों से लिंग-भेद उठाने की चर्चा भी कभी कभी कर बैठते हैं। पर वे यदि घोड़ी देर के लिये हिंदी भाषा की विकास-प्रणाली पर ध्यान देंगे तो उन्हे विदित होगा कि हिंदी क्रियाचीं के रूप संस्कृत के संज्ञा



कदंत रूपों के सांचे में ढले हैं। जैसे 'करता है' रूप संज्ञा शब्द 'कर्ता' से बना है। इसी से खीलिंग से वह संस्कृत "कर्जी" के अनुसार 'करती है' हो जाता है।

जैसा कि कहा जा चुका है, यद्यपि हमारे गद्य की भाषा मेरठ और दिक्की प्रांत की है पर साहित्य की भाषा हो जाने के कारण उसका विस्तार और प्रांतों में भी हो गया है। अतः वह उन प्रांतों के शब्दों का भी, अभाव-पृत्ति के निमित्त, अपने में समाविश करेगी। यदि उसके जन्म-स्थान में किसी वस्तु का भाव व्यंजित करने के लिये कोई शब्द नहीं है तो वह दूसरे प्रांत से, जहां उसका समाज या साहित्य में प्रविश है, शब्द ले सकती है। पर यह बात ध्यान रखने की है कि वह केवल अन्य स्थानों के शब्द मात्र अपने में मिला सकती है, प्रत्यय आदि नहीं यहण कर सकती।

श्रव पद्म की शैली पर भी कुछ ध्यान देना चाहिए।
भाषा का उद्देश्य यह है कि एक का भाव दूसरा ग्रहण
कर श्रीर साहित्य का उद्देश्य यह है कि एक का भाव
दूसरा ग्रहण करके श्रपने श्रंतः करण में भावों की श्रनेकरूपता का विकास करे। ये भाव साधारण भी होते
हैं श्रीर जटिल भी। श्रतः जो लेख साधारण भावों को
प्रकट करता हो वह साधारण ही कहलाविगा, चाहे
उसमें सारे संस्कृत कोषों को ढूंढ़ ढूंढ़कर शब्द रखे गए



हों श्रीर चार चार श्रंगुल के समास बिछाए गए हों।
पर जो लेख ऐसे जटिल भावों को प्रकट करेंगे जो
श्रपरिचित होने के कारण श्रंत:करण में जल्दी न धंसंगे
वे उच्च कहलावेंगे, चाहे उनमें बोलचाल के साधारण शब्द
ही क्यों न भरे हों। ऐसे ही लेखीं से उच्च साहित्य को
स्टिष्ट होगी। जो जनता के बीच नए नए भावों का
विकास करने में समर्थ हो, जो उसके जीवन-क्रम को
उलटने पलटने की चमता रखता हो वही सचा साहित्य
है। श्रतः लेखकों को श्रब इस युग में बाण श्रीर दड़ी
होने की श्राकांचा उतनी न करनी चाहिए जितनी
बाल्गीिक श्रीर ब्यास होने की, वर्क, कारलाइल श्रीर
रिक्तन होने की।

किता का प्रवाह याजकल दो मुख्य धारायों में विभक्त हो गया है। खड़ी बोली की कितता का आरंभ योड़े ही दिनों से हुआ है। यतः अभी उसमें उतनी प्रिक्त और सरसता नहीं आई है, पर याणा है कि उचित पय के अवलंबन द्वारा वह धीरे धीरे या जायगी। खड़ी बोली में जो अधिकांग्र कितताएं और पुस्तकों लिखी जाती हैं वे इस बात का ध्यान रखकर नहीं लिखी जातीं कि कितता की भाषा और गय की भाषा में भेद होता है। कितता की गब्दावली कुछ विश्रेष ढंग की होती है, उसके वाक्यों का रूप रंग कुछ



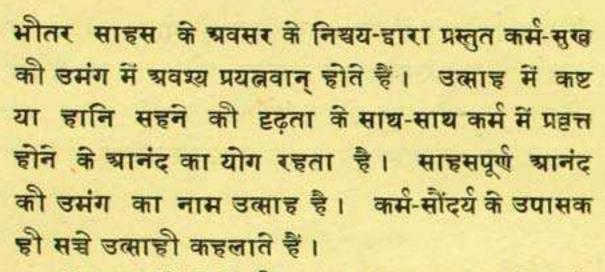


HINDI SELECTIONS

वे एक ही चरण में एक स्थान पर खड़ी बोली की क्रिया रखते हैं, दूसरे स्थान पर ब्रजभाषा की। आशा है कि ये सब दोष शीव्र दूर हो जायंगे और हमारे काव्य का प्रवाह एक सुव्यवस्थित मार्ग का अनुसरण करेगा।

उत्साह

दुःख के वर्ग में जो स्थान भय का है, श्रानंद-वर्ग में वही स्थान उत्साह का है। भय में हम प्रस्तुत कठिन स्थिति के निश्चय से विशेष रूप में दुखी श्रीर कभी-कभी उस स्थिति से श्रपने को दूर रखने के लिए प्रयत्नवान् भी होते हैं। उत्साह में हम श्रानेवाली कठिन स्थित के



जिन कर्मी में किसी प्रकार का कष्ट या हानि सहने का साइस अपेचित होता है उन सबके प्रति उल्लं ठापूर्ण श्रानंद उत्साह के श्रंतर्गत लिया जाता है। कष्ट या शानि के भेद के अनुसार उत्साह के भी भेद हो जाते हैं। साहित्य-मीमांसकों ने इसी दृष्टि से युद्ध-वीर, दान-वीर, दया-वीर इत्यादि भेद किए हैं। इनमें सबसे प्राचीन श्रीर प्रधान युद्धवीरता है, जिसमें श्राघात, पीड़ा क्या मृत्य तक की परवा नहीं रहती। इस प्रकार की वीरता का प्रयोजन अत्यंत प्राचीन काल से पड़ता चला श्रा रहा है, जिसमें साहस श्रीर प्रयत्न दोनों चरम उत्कर्ष पर पहुंचते हैं। केवल कष्ट या पीड़ा सहन करने के साइस में ही उत्साह का खरूप स्फ्रित नहीं होता। उसके साथ ग्रानंदपूर्ण प्रयत या उसकी उत्कंठा का योग चाहिए। बिना बेहोश हुए भारी फोड़ा चिराने को तैयार होना साहस कहा जायगा, पर उत्साह नहीं। इसी प्रकार चुपचाप बिना हाथ पैर हिलाए



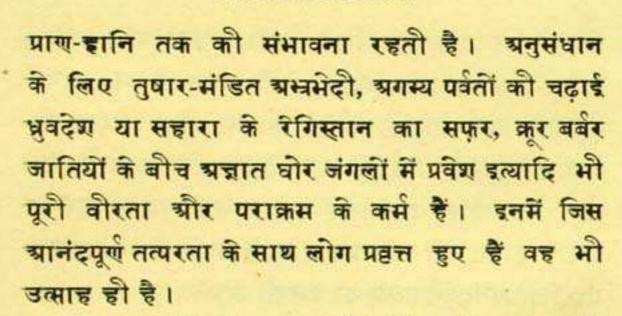
HINDI SELECTIONS

घोर प्रहार सहने के लिए तैयार रहना साहस श्रीर कठिन-से-कठिन प्रहार सहकर भी जगह से न हटना धीरता कही जायगी। ऐसे साहस श्रीर धीरता को उत्साह के श्रंतर्गत तभी ले सकते हैं जब कि साहसी या धीर उस काम को श्रानंद के साथ करता चला जायगा जिसके कारण उसे इतने प्रहार सहने पड़ते हैं। सारांश यह कि श्रानंदपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कंठा में ही उत्साह का दर्शन होता है; केवल कष्ट सहने के निश्चेष्ट साहस में नहीं। धित श्रीर साहस दोनों का उत्साह के बीच संचरण होता है।

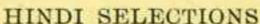
दान-वीर में अर्थ-त्याग का साइस अर्थात् उसके कारण होनेवाले कष्ट या कठिनता को सहने की ज्ञमता अंतर्हित रहती है। दानवीरता तभी कही जायगी जब दान के कारण दानी को अपने जीवन-निर्वाह में किसी प्रकार का कष्ट या कठिनता दिखाई देगी। इस कष्ट या कठिनता की मात्रा या संभावना जितनी ही अधिक होगी, दानवीरता उतनी ही जंची समभी जायगी। पर इस अर्थ-त्याग के साहस के साथ ही जब तक पूर्ण तत्परता और आनंद के चिक्न न दिखाई पड़ेंगे तब तक उत्साह का खरूप न खड़ा होगा।

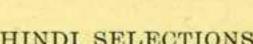
युष के अतिरिक्त संसार में और भी ऐसे विकट काम होते हैं जिनमें घोर शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है और

7-1421 B.T.



मनुष्य शारीरिक कष्ट से ही पीछे हटनेवाला प्राणी नहीं है। मानसिक क्षेत्र की संभावना से भी बहुत से कर्मीं की श्रोर प्रवृत्त होने का साइस उसे नहीं होता। जिन बातों से समाज के बीच उपहास, निंदा, अपमान इत्यादि का भय रहता है उन्हें ग्रच्छी और कल्याण-कारिगी समभते हुए भी बहुत-से लोग उनसे दूर रहते हैं। प्रत्यच हानि देखते हुए भी कुछ प्रयाश्रीं का अनुसरण बड़े-बड़े समभदार तक इसी लिए करते चलते हैं कि उनके त्याग से वे बुरे कहे जायंगे, लोगों में उनका वैसा श्रादर-समान न रह जायगा। उनके लिए मानग्लानि का कष्ट सब शारीरिक लेशों से बढ़कर होता है। जो लोग मान-अपमान का कुछ भी ध्यान न करके, निंदा-स्तुति की कुछ भी परवा न करके किसी प्रचलित प्रथा के विक्ड पूर्ण तत्परता श्रीर प्रसन्नता के साथ कार्य करते जाते हैं वे एक श्रोर





तो उत्साही और वीर कहलाते हैं, दूसरी और भारी बेह्या।

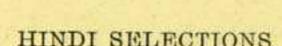
किसी श्रभ परिणाम पर दृष्टि रखकर निंदा-स्तुति, मान-भपमान आदि की कुछ परवा न करके प्रचलित प्रयाओं का उज्ञंघन करनेवाले वीर या उत्साही कहलाते हैं, यह देखकर बहुत-से लोग केवल इस विरुद्द के लोभ में ही अपनी उक्कल कूद दिखाया करते हैं। वे केवल उत्साही या साइसी कहे जाने के लिए ही चली आती चुई प्रयाश्रों को तोड़ने की धूम मचाया करते हैं। ग्रुभ या अग्रभ परिणाम से उनसे कोई मतलब नहीं; उसकी श्रोर उनका ध्यान लेश मात्र नहीं रहता। जिस पच के बीच की सुख्याति का वे श्रधिक महत्त्व समभते हैं उसकी वाइवाही से उत्पन यानंद की चाह में वे दूसरे पच के बीच की निंदा या अपमान की कुछ परवा नहीं करते। ऐसे श्रोक्टे लोगों के साइस या उत्साइ की अपेचा उन लोगों का उत्साह या साइस-भाव की दृष्टि से-कहीं अधिक मूल्यवान् है जो किसी प्राचीन प्रथा की - चाहे वह वास्तव में हानिकारिणी ही हो-उपयोगिता का सचा विम्बास रखते हुए प्रथा तोड़नेवालों की निंदा, उपहास, अपमान आदि सहा करते हैं।

समाज-सुधार के वर्तमान यांदोलनों के बीच जिस प्रकार सची अनुभूति से प्रेरित उचाशय और गंभीर



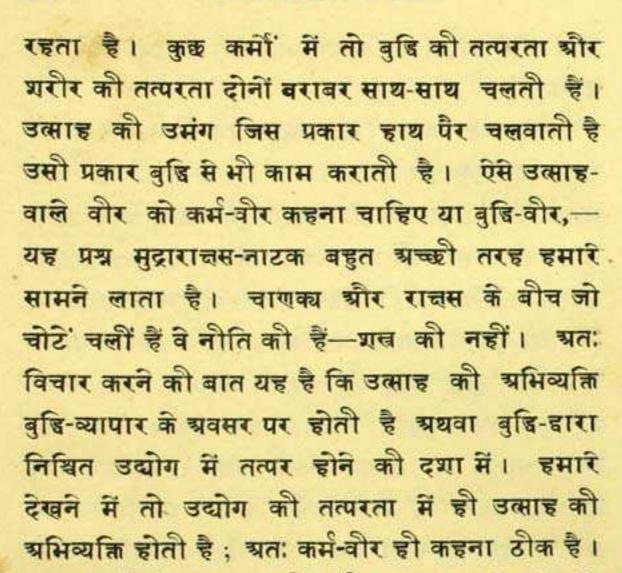
पुरुष पाए जाते हैं उसी प्रकार तुच्छ मनोहित्तियों-दारा प्रेरित साइसी और दयावान् भी बहुत मिलते हैं। मैंने कई छिछोरों और लंपटों को विधवाओं की दशा पर दया दिखाते हुए उनके पापाचार के बड़े लंबे-चीड़े दास्तान हर दम सुनतेसुनाते पाया है। ऐसे लोग वास्तव में काम-कथा के रूप में ऐसे हत्तांतों का तन्मयता के साथ कथन और अवण करते हैं। इस ढांचे के लोगों से सुधार के कार्य में कुछ सहायता पहुंचने के स्थान पर बाधा पहुंचने ही की संभावना रहती है। 'सुधार' के नाम पर साहित्य के चित्र में भी ऐसे लोग गंदगी फैलाते पाए जाते हैं।

उत्साह की गिनती अच्छे गुणों में होती है। किसी भाव के अच्छे या बुरे होने का निश्चय अधिकतर उसकी प्रवृत्ति के ग्रुभ या अग्रुभ परिणाम के विचार से होता है। वही उत्साह जो कर्तव्य कर्मी के प्रति इतना सुंदर दिखाई पड़ता है, अकर्तव्य कर्मी की ग्रोर होने पर वैसा आध्य नहीं प्रतीत होता। आक्रास्ता, पर-रचा, देश-रचा ग्रादि के निमित्त साहस की जो उमंग देखी जाती है उसके सींदर्थ को पर-पोड़न डकेती ग्रादि कर्मी का साहस कभी नहीं पहुंच सकता। यह बात होते हुए भी विग्रुद उत्साह या साहस की प्रगंसा संसार में थोड़ी बहुत होती ही है। ग्रत्थाचारियों या डाकुग्नों के



शीर्य श्रीर साइस की कथाएं भी लोग तारीफ करते हुए सुनते हैं।

भव तक उत्साह का प्रधान रूप ही हमारे सामने रहा, जिसमें साइस का पूरा योग रहता है। पर कर्म मात्र के संपादन में जो तत्परतापूर्ण श्रानंद देखा जाता है वह भी उत्साह ही कहा जाता है। सब कामीं में साहस अपेचित नहीं होता; पर थोड़े-बहुत आराम, विश्राम, सुभौते इत्यादि का त्याग सबमें करना पड़ता है; और कुछ नहीं तो उठकर बैठना, खड़ा होना या दस पांच क़दम चलना ही पड़ता है। जब तक आनंद का लगाव किसी क्रिया, व्यापार या उसकी भावना के साथ नहीं दिखाई पड़ता तब तक उसे 'उत्साइ' की संज्ञा प्राप्त नहीं होती। यदि किसी प्रिय मित्र के आने का समाचार पाकर हम चुपचाप ज्यों-के-त्यों ग्रानंदित होकर बैठे रह जायं या थोड़ा हंस भी दें तो यह हमारा उत्साह नहीं कहा जायगा। इमारा उत्साह तभी कहा जायगा जब हम अपने मित्र का ग्रागमन सुनते ही उठ खड़े होंगे, उससे मिलने के लिए दीड पड़ेंगे और उसके ठहरने आदि के प्रबंध में प्रसन्न-सुख इधर-उधर माते-जाते दिखाई देंगे। प्रयत भीर कर्म-संकल्प उत्साह नामक श्रानंद के नित्य लच्चण हैं। प्रत्येक कर्म में योड़ा या बहुत बुहि का योग भी

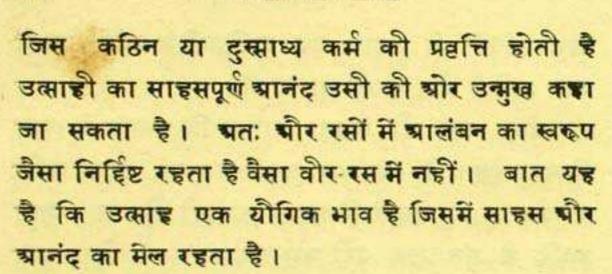


बुद्धि-वीर के दृष्टांत कभी-कभी हमारे पुराने ढंग के शाखार्थी में देखने को मिल जाते हैं। जिस समय किसी भारी शाखार्थी पंडित से भिड़ने के लिए कोई विद्यार्थी श्रानंद के साथ सभा में श्राग श्राता है उस समय उसके बुद्धि-साइस की प्रशंसा श्रवश्य होती है। वह जीते या हारे, बुद्ध-वीर समभा ही जाता है। इस ज़माने में वीरता का प्रसंग उठाकर वाग्वीर का उत्नेख यदि न हो तो बात श्रधूरी ही समभी जायगी। ये वाग्वीर श्राज-कल बड़ी-बड़ी सभाशों के मंचों पर से



लेकर चियों के उठाए हुए पारिवारिक प्रपंचों तक में पाए जाते हैं श्रीर काफ़ी तादाद में।

योड़ा यह भी देखना चाहिए कि उत्साह में ध्यान किसपर रहता है-कर्म पर, उसके फल पर अथवा व्यक्ति या वस्तु पर। इमारे विचार में उत्साही वीर का ध्यान श्रादि से अंत तक पूरी कर्म-शृंखला पर से होता हुआ उसकी सफलता-रूपी समाप्ति तक फैला रहता है। इसी ध्यान से जो आनंद की तरंगे उठती हैं वे ही सारे प्रयत्न को आनंदमय कर देती हैं। युड-वीर में विजेतव्य जो आलंबन कहा गया है उसका अभिप्राय यही है कि विजेतव्य कर्म-प्रेरक के रूप में वीर के ध्यान में स्थित रहता है। वह कर्म के खरूप का भी निर्धारण करता है। पर आनंद और साइस के मिश्रित भाव का सीधा लगाव उसके साथ नहीं रहता। सच पृक्तिए तो वीर के उत्साह का विषय विजय-विधायक कर्म या युड ही रहता है। दान-वीर, दया-वीर और धर्म-वीर पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दान दया-वग, या कीर्त्ति-लोभ-वग दिया जाता है। यदि खडा-वश दान दिया जा रहा है तो दान-पात वास्तव में यहा का श्रीर यदि दया-वश दिया जा रहा है तो पीड़ित यथार्थ में दया का विषय या आलंबन ठइरता है। अतः उस अडा या दया की प्रेरणा से



जिस व्यक्ति या वस्तु पर प्रभाव डालने के लिए वीरता दिखाई जाती है उसकी ग्रोर उन्मुख कर्म होता है भीर कर्म की ग्रोर उन्मुख उत्साह नामक भाव होता है। सारांग्र यह कि किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ उत्साह का सीधा लगाव नहीं होता। समुद्र लांघने के लिए जिस उत्साह के साथ हनूमान् उठे हैं उसका कारण समुद्र नहीं,—समुद्र लांघने का विकट कर्म है। कर्म-भावना ही उत्साह उत्यन्न करती है,—वस्तु या व्यक्ति की भावना नहीं।

किसी कर्म के संबंध में जहां आनंदपूर्ण तत्परता दिखाई पड़ी कि हम उसे उत्साह कह देते हैं। कर्म के अनुष्ठान में जो आनंद होता है उसका विधान तीन रूपों में दिखाई पड़ता है—

- १। कर्म-भावना से उत्पन्न,
- २। फल-भावना से उत्पन्न, श्रीर
- ३। आगंतुक, अर्थात् विषयांतर से प्राप्त।



HINDI SELECTIONS

इनमें कर्म-भावना-प्रस्त भानंद को ही सच्चे वीरों का भानंद समभना चाहिए, जिसमें साइस का योग प्रायः बहुत अधिक रहा करता है। सचा वीर जिस समय मैदान में उतरता है उसी समय उसमें उतना भानंद भरा रहता है जितना श्रीरों को विजय या सफलता प्राप्त करने पर होता है। उसके सामने कर्म श्रीर फल के बीच या तो कोई अंतर होता ही नहीं या बहुत सिमटा हुआ होता है। इसी से कर्म की श्रीर वह उसी भींक से लपकता है जिस भींक से साधारण लोग फल की श्रीर लपका करते हैं। इसी कर्म-प्रवर्तक आनंद की मात्रा के हिसाब से श्रीर्य श्रीर साहस का स्मुरण होता है।

पाल की भावना से उत्पन्न आनंद भी साधक कभीं की ओर हर्ष और तत्परता के साथ प्रवृत्त करता है। पर पाल का लोभ जहां प्रधान रहता है वहां कर्म-विषयक आनंद उसी पाल की भावना की तीव्रता और मंदता पर अवलंबित रहता है। उद्योग के प्रवाह के बीच जब-जब पाल की भावना मंद पड़ती है—उसकी आशा कुछ धंधली पड़ जाती है,—तब-तब आनंद की उमंग गिर जाती है और उसी के साथ उद्योग में भी शिथलता आ जाती है। पर कर्म-भावना-प्रधान उत्साह बराबर एकरस रहता है। प्रात्म उत्साही अस्पाल



होने पर खिन श्रीर दुखी होता है; पर कर्मासक उत्साही केवल कर्मानुष्ठान के पूर्व की श्रवस्था में हो जाता है। श्रतः हम कह सकते हैं कि कर्म-भावना-प्रधान उत्साह ही सचा उत्साह है। फल-भावना-प्रधान उत्साह तो लोभ ही का एक प्रच्छन रूप है।

उत्साइ वास्तव में कर्म और फल की मिली-जुली अनुभूति है जिसकी प्रेरणा से तत्परता आती है। यदि फल दूर ही पर दिखाई पड़े, उसकी भावना के साथ ही उसका लेश मात्र भी कर्म या प्रयत्न के साथ-साथ लगाव न मालूम हो तो हमारे हाथ-पांव कभी न उठें और उस फल के साथ इसारा संयोग ही न हो। इससे कर्म-मृंखला की पहली कड़ी पकड़ते ही फल के मानंद की भी कुछ अनुभूति होने लगती है। यदि हमें यह नियय हो जाय कि अमुक स्थान पर जाने से हमें किसी प्रिय व्यक्ति का दर्शन होगा तो उस निश्चय के प्रभाव से हमारी याता भी अत्यंत प्रिय हो जायगी। इस चल पड़ेंगे और हमारे अंगों की प्रत्येक गति में प्रपुक्तता दिखाई देगी। यही प्रमुखता कठिन-से-कठिन कर्मीं के साधन में भी देखी जाती है। वे कर्म भी प्रिय हो जाते हैं श्रीर श्रच्छे लगने लगते हैं। जब तक फल तक पहुं चानेवाला कर्म-पथ अच्छा न लगेगा तब तक केवल फल का अच्छा लगना कुछ नहीं। फल की इच्छा मात्र



हृदय में रखकर जो प्रयत्न किया जायगा वह अभावमय श्रीर श्रानंद-शून्य होने के कारण निर्जीव-सा होगा।

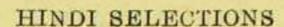
कर्म-क्चि-शून्य प्रयत्न में कभी-कभी इतनी उतावली श्रीर श्राकुलता होती है कि मनुष्य साधना के उत्तरोत्तर क्रम का निर्वाह न कर सकने के कारण बीच ही में चुक जाता है। सान लीजिए कि एक जंचे पर्वत के शिखर पर बिचरते हुए किसी व्यक्ति को नीचे बहुत दूर तक गई हुई सीढ़ियां दिखाई दीं और यह मालूम हुआ कि नीचे उतरने पर सोने का ढेर मिलेगा। यदि उसमें इतनी सजीवता है कि उक्त सूचना के साथ ही वह उस स्वर्ण-राशि के साथ एक प्रकार के मानसिक संयोग का अनुभव करने लगा तथा उसका चित्त प्रफुल और अंग सचेष्ट हो गए तो उसे एक-एक सीढ़ी खर्णमयी दिखाई देगी, एक-एक सीढ़ी उतरने में उसे आनंद मिलता जायगा, एक-एक चण उसे सुख से बीतता हुआ जान पड़ेगा और वह प्रसन्नता के साथ उस खर्ण-राशि तक पहुंचेगा। इस प्रकार उसके प्रयत्न-काल को भी फल-प्राप्ति-काल के अंतर्गत ही समभाना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि उसका हृदय दुर्वल होगा और उसमें इच्छा मात्र ही उत्पन्न होकर रह जायगी, तो अभाव के बोध के कारण उसके चित्त में यही होगा कि कैसे भट से नीचे पहुंच जायं। उसे एक-एक सीढ़ी उतरना बुरा मालूम

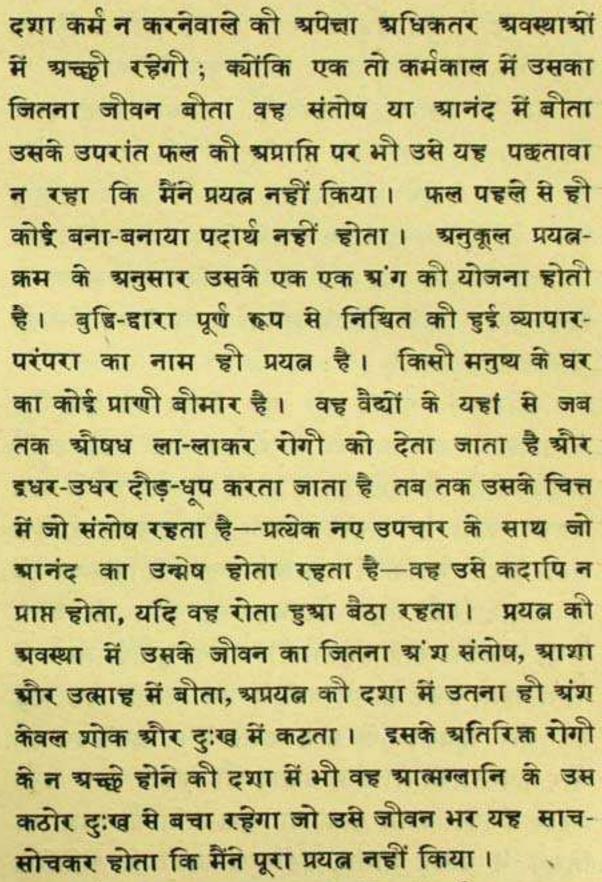


होगा और श्रायर्थ नहीं कि वह या तो शारकर बैठ जाय या लड़खड़ाकर मंह के बल गिर पड़े।

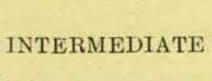
फल की विशेष श्रासित से कर्म के लाघव की वासना उत्पन्न होती है, चित्त में यही पाता है कि कर्म बहुत कम या बहुत सरल करना पड़े श्रीर फल बहुत-सा मिल जाय। श्रीकृष्ण ने कर्म-मार्ग से फलासित की प्रवलता हटाने का बहुत ही स्पष्ट उपदेश दिया; पर उनके समभाने पर भी भारतवासी इस वासना से यस्त होकर कर्म से तो उदासीन हो बैठे और फल के इतने पीके पड़े कि गरमी में ब्राह्मण को एक पेठा देकर पुत्र की श्राशा करने लगे; चार श्राने रोज़ का श्रनुष्ठान कराके व्यापार में लाभ, शतु पर विजय, रोग से मुक्ति, धन धान्य की हिंद तथा और भी न जाने क्या क्या चाहने लगे। श्रासित प्रस्तुत या उपस्थित वस्तु में ही ठीक कही जा सकती है। कर्म सामने उपस्थित रहता है, इससे त्रासित उसी में चाहिए; फल दूर रहता है, इससे उसकी ग्रोर कर्म का लच्च ही काफ़ी है। जिस ग्रानंद से कर्म की उत्तेजना होती है और जो भानंद कर्म करते समय तक बराबर चला चलता है उसी का नाम उसाह है।

कर्म के मार्ग पर आनंद-पूर्वक चलता हुआ उत्साही मनुष्य यदि अ'तिम फल तक न भी पहुंचे तो भी उसकी



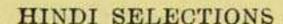


कर्म में भानंद अनुभव करनेवालों ही का नाम



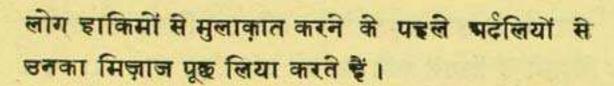
कर्मण्य है। धर्म श्रीर उदारता के उच कर्मी के विधान में ही एक ऐसा दिव्य श्रानंद भरा रहता है कि कर्ता को वे कर्म ही फल-खरूप लगते हैं। श्रत्याचार का दमन श्रीर क्षेश्र का श्रमन करते हुए चित्त में जो उज्जास श्रीर तृष्टि होती है वही लोकोपकारी कर्म-वीर का सचा सुख है। उसके लिए सुख तब तक के लिए रुका नहीं रहता जब तक कि फल प्राप्त न हो जाय; बिक्क उसी समय से श्रोड़ा-श्रोड़ा करके मिलने लगता है जब से वह कर्म की श्रोर हाथ बढ़ाता है।

तभी-कभी धानंद का मूल विषय तो कुछ धीर रहता है, पर उस धानंद के कारण एक ऐसी स्मूर्त्त उत्पन्न होती है जो बहुत-से कामों की धोर हर्ष के साथ ध्रयसर करती है। इसी प्रसन्नता धीर तत्परता को देख लोग कहते हैं कि वे काम बड़े उत्साह से किए जा रहे हैं। यदि किसी मनुष्य को बहुत-सा लाभ हो जाता है या उसकी कोई बड़ी भारी कामना पूर्ण हो जाती है तो जो काम उसके सामने धाते हैं उन सबको वह बड़े हर्ष धीर तत्परता के साथ करता है। उसके इस हर्ष धीर तत्परता को भी लोग उत्साह ही कहते हैं। इसी प्रकार किसी उत्तम फल या सुख-प्राप्ति की धाया या निश्चय से उत्पन्न धानंद, फलोन्मुख प्रयत्नों के धितरिक्त धीर दूसरे व्यापारों के साथ संलग्न होकर, उत्साह के



रूप में दिखाई पड़ता है। यदि इम किसी ऐसे उद्योग में लगे हैं जिससे आगे चलकर हमें बहुत लाभ या सुख की आशा है तो इम उस उद्योग को तो उत्साह के साथ करते ही हैं, अन्य कार्यों में भी प्रायः अपना उत्साह दिखा देते हैं।

यह बात उत्साह ही में नहीं, प्रन्य मनोविकारों में भी बराबर पाई जाती है। यदि इस किसी बात पर अ़ुड बैठे हैं श्रीर इसी बीच में कोई दूसरा श्राकर हमसे कोई बात सीधी तरह भी पूछता है तो भी इस उसपर भंभला उठते हैं। इस भंभलाइट का न तो कोई निर्दिष्ट कारण होता है, न उद्देश्य। यह केवल क्रोध की स्थित के व्याघात को रोकने की क्रिया है, क्रोध की रचा का प्रयत है। इस भंभलाइट दारा इस यह प्रकट करते हैं कि इस क्रोध में हैं और क्रोध ही में रहना चाइते हैं। क्रोध को बनाए रखने के लिए हम उन बातों से भी क्रोध ही संचित करते हैं जिनसे दूसरी अवस्था में इस विपरीत भाव प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार यदि हमारा चित्त किसी विषय में उत्साहित रहता है तो इम अन्य विषयों में भी अपना उत्साह दिखा देते हैं। यदि हमारा मन बढ़ा हुआ रहता है तो हम बहुत से काम प्रसन्ता-पूर्वक करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी बात का विचार करके सलामसाधक



राजा भोज का सपना

वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा
महाराज भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा
श्रीर कीर्त्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बढ़े बढ़े
महिपाल उसका नाम सुनते ही कांप उठते श्रीर
बढ़े बढ़े भूपित उसके पांव पर श्रपना सिर नवाते।
सेना उसकी समुद्र की तरंगीं का नमूना श्रीर खजाना
उसका सोने चांदी श्रीर रत्नीं की खान से भी दूना।
उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया
श्रीर उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई
उसके राज्य भर में भूखा न सोता श्रीर न कोई
उघाड़ा रहने पाता। जो सन्तू मांगने श्राता उसे
मोतीचूर मिलता श्रीर जो गजी चाहता उसे मकमल



दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अग्रर्फियां बांटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता। एक एक स्रोक के लिये ब्राह्मणों को लाख लाख रूपया उठा देता और सवा लच ब्राह्मणों को षट्रस भोजन कराके तब आप खाने बैठता। तीर्थयात्रा, स्नान, दान और व्रत उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चांद्रायण किए ये और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान उाले थे।

एक दिन शरद ऋतु में संध्या के समय संदर फुलवाड़ी के बीच खच्छ पानी के कुंड के तीर, जिसमें जुमुद और कमलों के बीच जल-पन्नी कलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिए के सहारे खस्य चित्त बैठा हुआ वह महलों की-सुनहरी कलसियां लगी हुई संगमर्भर की गुमजियों के पीछे से उदय होता हुआ पूर्णिमा का चंद्रमा देख रहा या और निर्जन एकांत होने के कारण मन ही मन में सोचता या कि "अहो! मैंने अपने कुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सूर्थ्य से इन कमलों का विकास होता है। क्या सनुष्य और क्या जीव-जंतु सैंने अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गंवाया श्रीर व्रत उपवास करते करते फूल से ग्ररीर को कांटा बनाया। जितना मैंने दान किया उतना तो कभी किसी के

ध्यान में भी न आया होगा। जो मैं ही नहीं तो फिर और कीन हो सकता है? मुक्के अपने ईखर पर दावा है, वह अवश्य मुक्के अच्छी गति देगा। ऐसा कब हो सकता है कि मुक्के कुक्क दोष सगी?"

इसी असे में चोबदार ने पुकारा-"चौधरी इंद्रत्त निगाइ रूबरू!" श्रीसहाराज सलामत भोज ने श्रांख उठाई, दीवान ने साष्टांग दंडवत की, फिर सम्मख जा हाय जोड़ यों निवेदन किया-"पृथ्वीनाय, सड़क पर वे कुएं जिनके वास्ते ग्रापने हुका दिया या बनकर तैयार हो गए हैं और श्राम के बाग भी सब जगह लग गए। जो पानी पीता है आपको असीस देता है और जो उन पेड़ों की काया में विश्वाम करता आपकी बढ़ती दीलत मनाता है।" राजा अति प्रसन हुआ और बोला कि "सुन मेरी अमलदारी भर में जहां जहां सड़कें हैं कोस कोस पर कुएं खोदवा के सदावत बैठा दे और दुतरफा पेड़ भी जल्द लगवा दे।" इसी असें में दानाध्यल ने आकर आशीर्वाद दिया और निवेदन किया—"धर्मावतार! वह जो पांच हजार ब्राह्माण हर साल जाड़े में रजाई पाते हैं सो डेवढ़ी पर हाजिर हैं।" राजा ने कहा—"अब पांच के बदले पचास इजार को मिला करे श्रीर रजाई की जगह शाल दुशाले दिए जावें।" दानाध्यस दुशालों के लाने

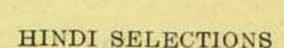


वास्ते तोशिखाने में गया। इमारत के दरोगा ने आकर मुजरा किया और खबर दी कि "महाराज! उस बड़े मंदिर की जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुका हुआ है आज नींव खुद गई, पत्थर गढ़े जाते हैं और जुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं।" महाराज ने तिउरियां बदलकर उस दारोगा की खूब खुड़का "अरे मूर्ख, वहां पत्थर और लोहे का क्या काम है? बिलकुल मंदिर संगममंर और संगम्मूसा से बनाया जावे और लोहे के बदले उसमें सब जगह सोना काम में आवे जिसमें भगवान् भी उसे देखकर प्रसन्न हो जावें और मेरा नाम इस संसार में अतुल कीर्त्ति पावे।"

यह सुनकर सारा दरबार पुकार उठा कि "धन्य महाराज! क्यों न हो? जब ऐसे हो तब तो ऐसे हो। आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया, मानों धर्म का उदार करने को इस जगत् में अवतार लिया। आज आपसे बढ़कर और दूसरा कीन ईखर का प्यारा है, हमने तो पहले हो से आपको साचात् धर्मराज विचारा है।" व्यासजी ने कथा आरंभ की, भजन-कीर्तन होने लगा। चांद सिर पर चढ़ आया। घड़ियाली ने निवेदन किया कि "महाराज! आधी रात के निकट है।" राजा की आंखों में नींद आ

रही थी; व्यास कथा कहते थे पर राजा को जंघ भाती थी। वह उठकर रनवास में गया।

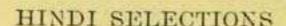
जड़ांज पलंग और फूलें। की सेज पर सोया। रानियां पैर दावने लगीं। राजा की आंख कप गई तो स्वप्न में क्या देखता है कि वह बड़ा संगमर्भर का मंदिर बनकर बिलकुल तैयार हो गया, जहां कहीं उस पर नकाशी का काम किया है वहां उसने बारीकी और सफाई में हाथीदांत को भी मात कर दिया है, जहां कहीं पचीकारी का हुनर दिखलाया है वहां जवाहिरों को पत्थरों में जड़कर तसवीर का नमूना बना दिया है। कहीं लालों के गुलालों पर नीलम की बुलबुलें बैठी हैं और ओस की जगह हीरों के लोलक लटकाए हैं, कहीं पुखराजीं की डंडियी से पन्ने के पत्ते निकालकर मोतियों के भुट्टे लगाए हैं। सोने की चोबों पर शामियाने और उनके नीचे बिक्कीर के हीजों में गुलाब और केवड़े के फुहारे कूट रहे हैं। मनीं धूप जल रहा है, सैकड़ीं कपूर के दीपक बल रहे हैं। राजा देखते ही मारे घमंड के फूलकर मशक बन गया। कभी नीचे कभी ऊपर, कभी दाइने कभी बाएं निगाइ करता और मन में सोचता कि अब इतने पर भी सुक्षे क्या कोई खर्ग में घुसने से रोकेगा या पवित्र पुर्णात्मा न कहेगा? सुभी अपने

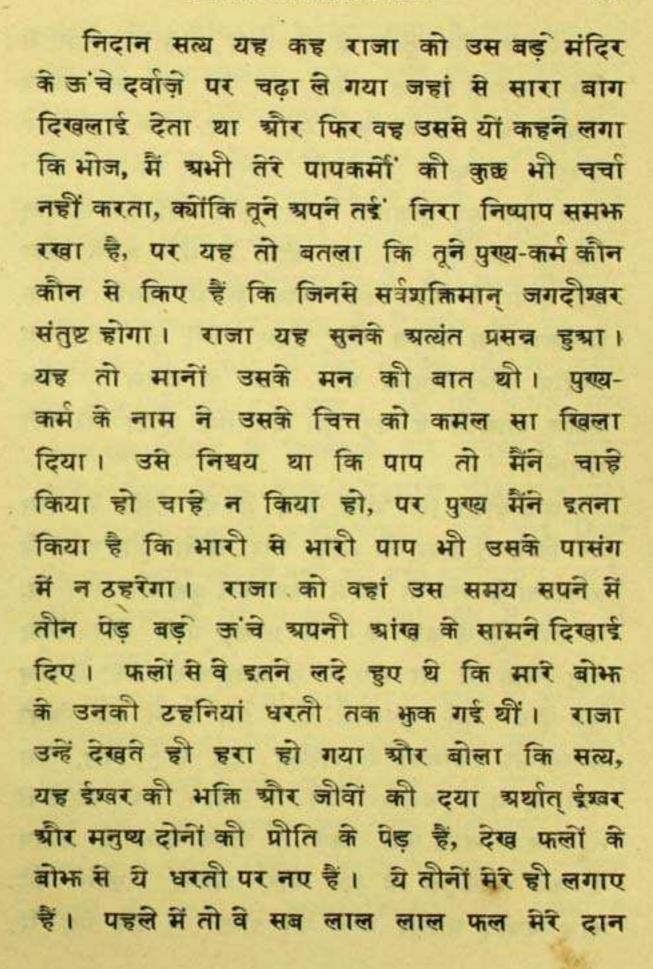


कर्मां का भरोसा है; दूसरे किसी से क्या काम पड़ेगा।

इसी अर्से में वह राजा उस सपने के मंदिर में खड़ा खड़ा क्या देखता है कि एक ज्योति सी उसके सामने श्रासमान से उतरी चली श्राती है। उसका प्रकाश तो इजारीं सूर्थ से भी अधिक है, परंतु जैसे सूर्य को बादल घेर लेता है उस प्रकार उसने मुंह पर घूंघट सा डाल लिया है, नहीं तो राजा की आंखें कब उस पर ठहर सकती थीं; इस घूंघट पर भी वे मारे चकाचौंध के भपकी चली जाती थीं। राजा उसे देखते हो कांप उठा और लड़खड़ाती सी जबान से बोला कि हे महाराज! श्राप कीन हैं श्रीर मेरे पास किस प्रयोजन से आए हैं ? उस पुरुष ने बादल को गरज के समान गंभीर उत्तर दिया कि मैं सत्य हं, ष'धों की ग्रांखें खोलता हं, मैं उनके ग्राग से धोखे की टही इटाता हं, मैं स्गढणा के भटके हुओं का भ्यम मिटाता हं ग्रीर सपने के भूले हुयां को नींद से जगाता इं। हे भोज! अगर कुछ हिमात रखता है तो बा इसारे साथ बा बीर इसारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मंदिरों का भेद ले, इस समय इस तरे ही मन को जांच रहे हैं। राजा के जी पर एक अजब दहशत सी छा गई। नीची निगाइ करके

वह गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला, भोज! तू डरता है, तुभी अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है ? भोज ने कहा-नहीं, इस बात से तो नहीं डरता क्योंकि जिसने अपने तई नहीं जाना उसने फिर क्या जाना ? सिवाय इसके में तो आप चाइता हं कि कोई मेरे मन की याह लेवे और अच्छी तरह से जांचे। मारे ब्रत और उपवासीं के मैंने अपना फूल सा शरीर कांटा बनाया, ब्राह्मणों को दान दिचणा देते देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रखा, कोई नदी या तालाब नहाने से न कोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिसकी निगाइ में मैं पवित्र पुर्खात्मा न ठहरूं। सत्य बोला, "ठीक, पर भोज, यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है ? क्या हवा में बिना धूप तसरेणु कभी दिखलाई देते हैं ? पर सूर्थ्य की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं ? क्या कपड़े से काने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं ? पर जब खुर्दबीन शीशे को लगाकर देखों तो एक एक बूंद में इजारों ही जीव स्भने लग जाते हैं। जो तू उस बात के जानने से जिसे अवध्य जानना चाहिए डरता नहीं तो या मेरे साथ या, मैं तेरी यांखें खोलूंगा।"

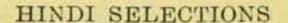


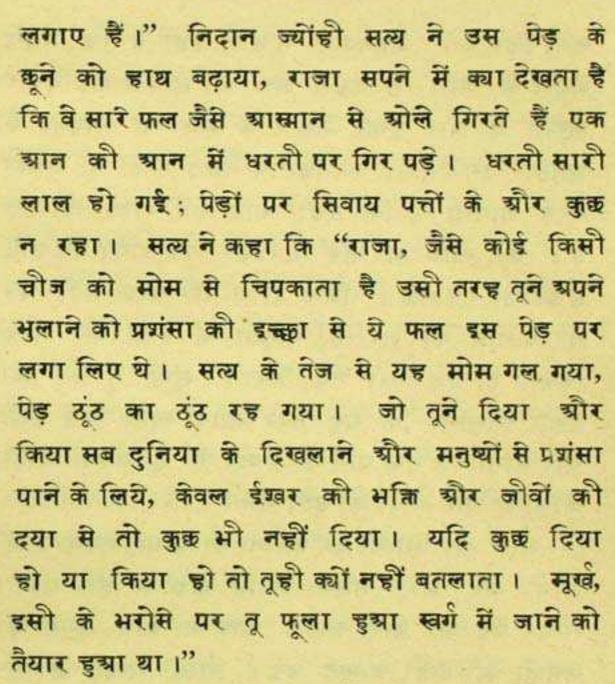




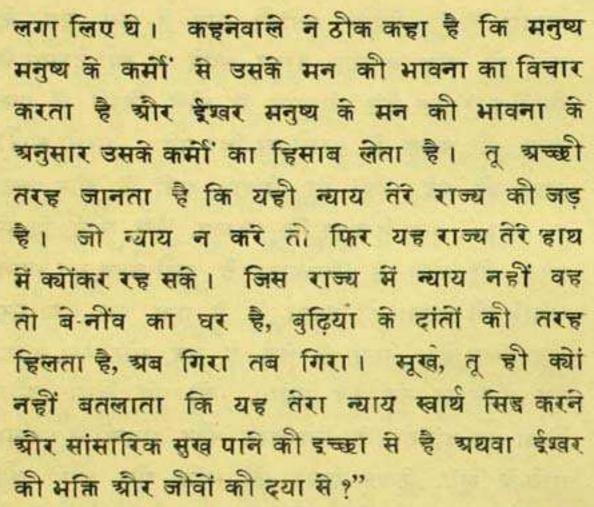
से लगे हैं और दूसरे में वे पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में ये सब सफेद फल मेरे तप का प्रभाव दिखाते हैं। मानों उस समय यह ध्वनि चारों और से राजा के कानों में चली आती थी कि धन्य हो! आज तुम सा पुख्यात्मा दूसरा कोई नहीं, तुम साचात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी इससे अधिक मिलेगा, तुम मनुष्य और ईक्षर दोनों की आंखों में निर्दीष और निष्पाप हो। सूर्थ्य के मंडल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छीटा भी नहीं लगाते।

सत्य बोला कि "भोज, जब मैं इन पेड़ों के पास या जिन्हें तू ईखर की भिक्त और जीवों की दया के बतलाता है तब तो इनमें फल-फूल कुछ भी नहीं थे, ये निरे ठूंठ से खड़े थे। ये लाल, पीले और सफेद फल कहां से आ गए? ये सचमुच उन पेड़ों में फल लगे हैं या तुभी फुसलाने और वश करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिये हैं? चल, उन पेड़ों के पास चलकर देखें तो सहो। मेरी समभ में तो ये लाल लाल फल जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है यश और कीर्त्ति फैलाने की चाह अर्थात् प्रशंसा पाने की इच्छा ने इस पेड़ में





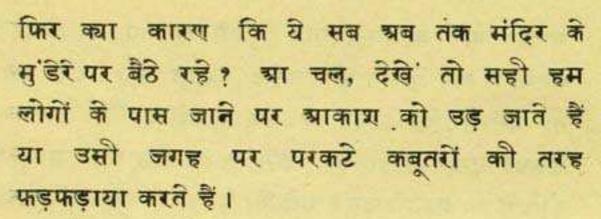
भोज ने एक ठंढी सांस ली। उसने तो श्रीरों को भूला समभा या पर वह सबसे अधिक भूला हुआ निकला। सत्य ने उस पेड़ की तरफ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते हुए पीले पीले फलों से लदा हुआ या। सत्य बोला, "राजा ये फल तूने अपने भुलाने को, स्वर्ग की स्वार्थसिंडि करने की इच्छा से



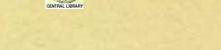
भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, उसने आंखें नीची कर लीं, उससे जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की बारी आई। सत्य का हाथ लगते हो उसकी भी वही हालत हुई। राजा अत्यंत लज्जित हुआ। सत्य ने कहा कि "मूर्ख! ये तेरे तप के फल कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहंकार ने लगा रखा था। वह कीन सा व्रत व तीर्थयात्रा है जो तूने निरहंकार केवल ईश्वर की भित्त और जीवों की दया से की हो? तूने यह तप केवल इसी वास्ते किया कि जिसमें तू अपने तई' औरों से



अच्छा और बढ़कर विचारे। ऐसे ही तप पर गोबर-गर्नस, तू स्वर्ग मिलने की उम्रोद रखता है ? पर यह तो बतला कि मंदिर के उन मुंडेरों पर वे जानवर से क्या दिखलाई देते हैं; कैसे सुंदर और प्यारे माल्म होते हैं। पर तो उनके पन्ने के हैं और गर्दन फिरोजे की, दुम में सारे किसा के जवाहिरात जड़ दिए हैं।" राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरफुरी ली, मानीं बुक्तते हुए दीये की तरह वह जगमगा उठा। जल्दी से उसने जवाब दिया कि "हे सत्य, यह जो कुछ तू मंदिर की मुंडिरों पर देखता है मेरे संध्यावंदन का प्रभाव है। मैंने जो रातों जाग जागकर और माथा रगड़ते रगड़ते इस मंदिर की देहली को विसकर ईखर की स्तृति वंदना और विनती प्रार्थना की है वे ही अब चिड़ियों की तरह पंख फैलाकर आकाश की जाती हैं, मानीं ईखर के सामने पहुंचकर अब सुभी स्वर्गका राजा बनाती हैं।" सत्य ने कहा कि राजा, दीनबंधु करुणासागर श्रीजगन्नाध जगदीश्वर अपने भन्तीं की विनती सदा सुनता रहता है और जो सनुष्य शुब्रहृद्य और निष्कपट होकर नम्त्रता और अबा के साथ अपने दुष्कर्मीं का पश्चात्ताप अथवा उनके चमा होने का दुक भी निवेदन करता है वह उसका निवेदन उसी दम सूर्थ्य चांद को बेधकर पार हो जाता है,



भोज डरा लेकिन उसने सत्य का साथ न कोड़ा। जब वह मुंडिरे पर पहुंचा तो क्या देखता है कि वे सारे जानवर जो दूर से ऐसे सुंदर दिखलाई देते थे मरे हुए पड़े हैं; पंख नुचे खुचे श्रीर बहुतेरे बिलकुल सड़े हुए, यहां तक कि मारे बदबू के राजा का सिर भिना उठा। दो एक ने, जिनमें कुछ दम बाकी था, जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे की तरह भारी हो गया और उसने उन्हें उसी ठीर दबारखा। वे तड़फा जरूर किए, पर उड़ जरा भी न सके। सत्य बोला "भोज, वस यही तेरे पुख्यकर्म हैं, इसी स्तुति वंदना और विनती प्रार्थना के भरोसे पर तू स्वर्ग में जाया चाहता है। सूरत तो इनकी बहुत अच्छी है पर जान बिलकुल नहीं। तूने जो कुछ किया केवल लोगों के दिखलाने को, जी से कुछ भी नहीं। जो तूएक बार भी जी से पुकारा होता कि 'दीनबंधु दीनानाथ दीनहितकारी! मुभ पापी महा अपराधी डबते हुए को बचा और क्षपादृष्टि कर' तो वह



तरी पुकार तीर की तरह तारों से पार पहुंची होती।"
राजा ने सिर नीचा कर लिया, उससे उत्तर कुछ न
बन आया। सत्य ने कहा कि "भोज! अब आ, फिर
इस मंदिर के अंदर चलें और वहां तर मन के मंदिर
को जांचें। यद्यपि मनुष्य के मन के मंदिर में ऐसे
ऐसे अंधेर तहखाने और तलघर पड़े हुए हैं कि उनकी
सिवाय सर्वदर्शी घट घट अंतर्यामी सकल जगत्स्वामी
के और कोई भी नहीं देख अथवा जांच सकता, तो
भी तरा परिश्रम व्यर्थ न जायगा।"

राजा सत्य के पीछे खिंचा खिंचा फिर मंदिर के अंदर घुसा, पर अब तो उसका हाल ही कुछ से कुछ हो गया। सचमुच सपने का खेल सा दिखलाई दिया। चांदी की सारी चमक जाती रही, सोने की विलकुल दमक उड़ गई, सोने में लोहे की तरह मोर्चा लगा हुआ, जहां जहां से मुलम्मा उड़ गया था भीतर का ई'ट-पत्थर कैसा बुरा दिखलाई देता था। जवाहिशें की जगह केवल काले काले दाग रह गए थे, और संगमर्भर की चट्टानों में हाथ हाथ भर गहरे गढ़े पड़ गए थे। राजा यह देखकर भीचका सा रह गया, श्रीसान जाते रहे, हक्कावका बन गया। उसने धीमी आवाज से पूछा कि ये टिड्डीदल की तरह इतने दाग इस मंदिर में कहां से आए? जिधर मैं निगाह



उठाता इं सिवाय काले काले दागों के और कुछ भी नहीं दिखलाई देता। ऐसा तो छीपी छींट भी नहीं क्रापेगा और न शीतला से बिगड़ा किसी का चेहरा ही देख पड़ेगा। सत्य बोला कि "राजा ये दाग जो तुभी इस मंदिर में दिखलाई देते हैं दुर्वचन हैं जो दिन-रात तेरे मुख से निकला किए हैं। याद तो कर, तूने क्रोध में आकर कैसी कड़ी कड़ी बातें लोगों को सुनाई हैं। क्या खेल में और क्या अपना अथवा दूसरे का चित्त प्रसन्न करने को, क्या रूपया बचाने अथवा अधिक लाभ पाने को और दूसरे का देश अपने हाथ में लाने अथवा किसी बराबरवाले से अपना मतलब निकालने और दुश्मनों को नीचा दिखलाने को तैने कितना भूठ बोला है। अपने ऐव क्रिपाने और दूसरे की आंखों में अच्छा मालूम होने अथवा भूठो तारीफ पाने के लिये तैने कैसी कैसी शिखियां हांकी हैं और अपने को औरों से अच्छा और श्रीरों को श्रपने से बुरा दिखलाने को कहां तक बातें बनाई हैं सो क्या अब कुछ भी याद न रहा, बिलकुल एकबारगी भूल गया ? पर वहां तो वे तेरे मुंह से निकलते ही बही में दर्ज हुई। तू इन दागों के गिनने में असमर्थ है पर उस घट-घट-निवासी अनंत-अविनाशी को एक एक बात जो तेरे मुंह से निकली



है याद है और याद रहेगी। उसके निकट भूत और भविष्य वर्तमान सा है।"

भोज ने सिर न उठाया पर उसी दबी जवान से इतना मुंह से और निकाला कि दाग तो दाग यर ये हाय हाय भर के गढ़े क्योंकर पड़ गए, सोने चांदी में मोर्चा लगकर ये ईंट पत्थर कहां से दिखलाई देने लगे? सत्य ने कहा कि "राजा क्या तूने कभी किसी को कोई लगती हुई बात नहीं कही अथवा बोली ठोली नहीं मारी? अरे नादान, यह बोली ठोली तो गोली से अधिक काम कर जाती है, तू तो इन गढ़ों हो को देखकर रोता है पर तेरे ताने तो बहुतों की क्रातियों से पार हो गए। जब अहंकार का मोर्चा लगा तो फिर यह देखलावे का मुलमा कब तक उहर सकता है! खार्थ और अश्रहा का ई'ट-यत्थर प्रकट हो गया।" राजा को इस अर्स में चिमगादड़ों ने बहुत तंग कर रखा था। मारे बू के सिर फटा जाता था। भुनगों और पतंगों से सारा मकान भर गया था, बीच बीच में पंखवाले सांप श्रीर बिच्छू भी दिखलाई देते थे। राजा घबराकर चिला उठा कि यह मैं किस आफत में पड़ा, इन कमबख्तों को यहां किसने आने दिया ? सत्य बोला "राजा सिवाय तेरे इनको यहां और कौन आने देगा ?

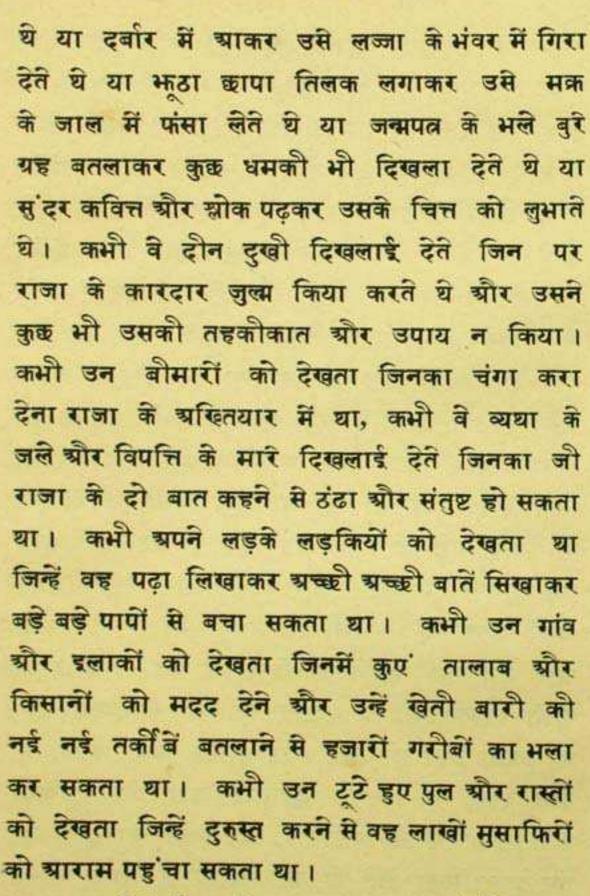


तू ही तो इन सबको लाया। ये सब तेरे मन की बुरी वासनाएं हैं। तूने समभा या कि जैसे समुद्र में लहरें उठा और मिटा करती हैं उसी तरह मनुष्य के मन में भी संकल्प की मीजें उठकर मिट जाती हैं। पर रे सूढ़! याद रख, कि आदमी के चित्त में ऐसा सोच-विचार कोई नहीं आता जो जगकर्ता प्राणदाता परमेखर के सामने प्रत्यच नहीं हो जाता। ये चिमगादड़ और भुनगे और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़े जो तुक्त दिखलाई देते हैं वे सब काम, क्रोध, लोभ, मोइ, मत्सर, अभिमान, मद, ईर्ष्या के संकल्प-विकल्प हैं जो दिनरात तेरे श्रंत:करण में उठा किए श्रीर इन्हों चिमगादड़ श्रीर भुनगों श्रीर सांप बिच्छू ग्रीर कीड़े मकोड़ीं की तरह तेरे हृदय के ग्राकाश में उड़ते रहे। क्या कभी तेरे जी में किसी राजा की श्रोर से कुछ देव नहीं रहा या उसके मुल्क माल पर लोभ नहीं आया या अपनी बड़ाई का अभिमान नहीं हुआ या दूसरे की सुंदर की देखकर उस पर दिल न चला ?"

राजा ने एक बड़ी लंबी ठंडी सांस ली और अव्यंत निराश होके यह बात कही कि इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो कह सके कि मेरा हृदय ग्रुड और मन में कुछ भी पाप नहीं। इस



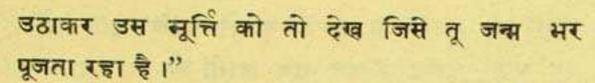
संसार में निष्पाप रहना बड़ा ही कठिन है। जो पुण्य करना चाहते हैं उनमें भी पाप निकल आता है। इस संसार में पाप से रहित कोई भी नहीं, ईखर के सामने पवित्र पुर्खात्मा कोई भी नहीं। सारा मंदिर वरन् सारी धरती, श्राकाश गूंज उठा "कोई भी नहीं, कोई भी नहीं।" सत्य ने जो ग्रांख उठाकर उस संदिर की एक दीवार की चोर देखा तो उसी दम संगममर से अर्थनावन गया। उसने राजा से कहा कि अब दुक इस आईने का भी तमाशा देख और जो कर्त्तव्य कर्मी के न करने से तुक्ते पाप लगे हैं उनका भी हिसाब ले। राजा उस आईने में क्या देखता है कि जिस प्रकार बरसात की बढ़ी हुई किसी नदी में जल के प्रवाह बहे जाते हैं उसी प्रकार अनगिनत स्रतें एक ग्रोर से निकलती और दूसरी ग्रोर ग्रलोप होती चली जाती हैं। कभी तो राजा को वे सब भूखे श्रीर नंगे इस शाईने में दिखलाई देते जिन्हें राजा खाने पहनने को दे सकता या पर न देकर दान का रूपया उन्हों इहे कहे मोटे मुसंड खाते पौतों को देता रहा, जो उसकी खुशामद करते थे या किसी की सिफारिश ले आते थे या उसके कारदारों को घूंस देकर मिला लेते थे या सवारी के समय मांगते मांगते और शोर गुल मचाते मचाते उसे तंग कर डालते



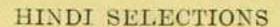
राजा से अधिक देखा न जा सका, थोड़ी देर में



घबराकर हाथों से उसने अपनी आंखें ढांप ली। वह अपने घमंड में उन सब कामों को तो सदा याद रखता या और उनकी चर्चा किया करता जिन्हें वह अपनी समभ में पुख्य के निमित्त किए हुए समभता या, पर उसने उन कर्तव्य कामीं का कभी टुक सोच न किया जिन्हें अपनी उन्मत्तता से अचेत होकर छोड़ दिया था। सत्य बोला "राजा अभी से क्यों घबरा गया ? या दधर या, इस दूसरे याईने में तुक्षे यब उन पापों को दिखलाता हं जो तूने अपनी उमर में किए हैं।" राजा ने हाथ जोड़ा और पुकारा कि ''वस महाराज, बस कीजिए, जो कुछ देखा उसी में मैं तो मिट्टी हो गया, कुछ भी बाकी न रहा, अब आगे समा कीजिए। पर यह बतलाइए कि आपने यहां आकर मेरे शर्वत में क्यों जहर घोला श्रीर पकी पकाई खीर में सांप का विष उगला श्रीर मेरे यानंद को इस मंदिर में याकर नाश में मिलाया जिसे मैंने सर्वशक्तिमान् भगवान् के अर्पण किया है ? चाहे जैसा यह बुरा और अशुद क्यों न हो पर मैंने तो उसी के निमित्त बनाया है।" सत्य ने कहा "ठीक, पर यह तो बतला कि भगवान् इस मंदिर में बैठा है ? यदि तून भगवान् को इस मंदिर में बिठाया होता तो फिर वह अग्रुड क्यों रहता! जरा आंख



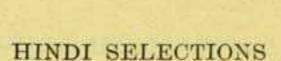
राजा ने जो आंख उठाई तो क्या देखता है कि वहां उस बड़ी ज'ची वेदी पर उसी की सूर्ति पत्थर की गढ़ी हुई रखी है और अभिमान की पगड़ी बांधे हुए है। सत्य ने कहा कि 'मूर्व, तूने जो काम किए केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिये। इसी प्रतिष्ठा के प्राप्त होने की तेरी भावना रही है और इसी प्रतिष्ठा के लिये तूने अपनी आप पूजा की। रे मूर्ड, सकल जगत्स्वामी घट-घट-श्रंतर्यामी, क्या ऐसे मनरूपी मंदिरों में भी अपना सिंहासन बिछने देता है, जो अभिमान और प्रतिष्ठा-प्राप्ति की इच्छा इत्यादि से भरा है? यह तो उसकी बिजली पड़ने के योग्य है।" सत्य का इतना कहना था कि सारी पृथिवी एकबारगी कांप उठी, मानीं उसी दम टुकड़ा टुकड़ा हुआ चाहती थी, आकाश में ऐसा ग्रब्द हुआ कि जैसे प्रलयकाल का मेध गरजा। मंदिर की दीवारें चारों ग्रोर से ग्रड़ग्रड़ाकर गिर पड़ीं, मानीं उस पापी राजा को दबा ही लेना चाहती थीं। उस ग्रहंकार की मूर्त्ति पर एक ऐसी बिजली गिरी कि वह धरती पर श्रींधे मुंह आ पड़ी। 'वाहि माम्, वाहि माम्, मैं डूबा,' कहके भोज जो



चित्राया तो आंख उसकी खुल गई और सपना सपना हो गया।

इस अर्स में रात बीतकर आसमान के किनारी पर लाली दीड़ आई थी, चिड़ियां चहचहा रही थीं, एक ग्रोर से शीतल मंद सुगंध पवन चली ग्राती थी, दूसरी योर से बीन शीर सदंग की ध्वनि। बंदीजन राजा का यश गाने लगे, हर्कारे हर तरफ काम को दौड़े, कमल खिले, कुमुद कुम्हलाए। राजा पलंग से उठा पर जी भारी, माथा थामे हुए, न हवा अच्छी लगती थी, न गाने बजाने की कुछ सुध-बुध थी। उठते ही पहले उसने यह हुका दिया कि ''इस नगर में जो अच्छे से अच्छे पंडित हों जल्द उनको मेरे पास लाओ। सैंने एक सपना देखा है कि जिसके श्रागे अब यह सारा खटराग सपना मालूम होता है। उस सपने के सारण ही से मेरे रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।" राजा के मुख से हुका निकलने की देर थी, चोबदारों ने तीन पंडितों को जो उस समय वसिष्ठ, याज्ञवल्का और बहस्पति के समान प्रख्यात थे, बात की बात में राजा के सामने ला खड़ा किया। राजा का मुंह पीला पड़ गया था, माथे पर पसीना हो आया था। उसने पूछा कि "वह कीन सा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य ईखर के कोप से कुटकारा पावे ?" उनमें से एक बड़े बूढ़े पंडित ने आशीर्वाद देकर निवेदन किया कि "धर्मराज धर्मावतार, यह भय तो आपके शत्ओं को होना चाहिए। आपसे पवित्र पुर्यातमा के जी में ऐसा संदेइ क्यों उत्पन्न हुआ ? आप अपने पुर्ख के प्रभाव का जामा पहन के वेखटके परमेखर के सामने जाइए, न तो वह कहीं से फटा कटा है और न किसी जगह से मैला कुचैला है।" राजा क्रोध करके बोला कि "बस अपनी वाणी को अधिक परिश्रम न दीजिए और इसी दम अपने घर की राइ लीजिए। क्यों ग्राप फिर उस पर्दे की डाला चाहते हैं जो सत्य ने मेरे सामने से हटाया है? वृद्धि की आंखों को बंद किया चाइते हैं जिन्हें सत्य ने खोला है ? उस पवित्र परमात्मा के सामने अन्याय कभी नहीं उहर सकता। मेरे पुख्य का जामा उसके आगी निरा चौथड़ा है। यदि वह मेरे कामों पर निगाइ करेगा तो नाग हो जाऊंगा, मेरा कहीं पता भी न लगेगा।"

दतने में दूसरा पंडित बोल उठा कि "महाराज परब्रह्म परमात्मा जो आनंदस्वरूप है उसकी दया के सागर का कब किसी ने वारापार पाया है, वह क्या हमारे दन कोटे कोटे कामों पर निगाह किया करता है, वह कपा-दृष्टि से सारा बेड़ा पार लगा देता है।"



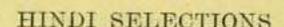
राजा ने अखिं दिखलाके कहा कि "महाराज! आप भो अपने घर को सिधारिए। आपने ईखर को ऐसा अन्यायी ठहरा दिया है कि वह किसी पापी को सजा नहीं देता, सब धान बाईस पसेरी तोलता है, मानों हरबोंगपुर का राज करता है। इसी संसार में क्यों नहीं देख लेते जो आम बोता है वह आम खाता है और जो बबूल लगाता है वह कांटे चुनता है। क्या उस लोक में जो जैसा करेगा सर्वदर्शी घट-घट-अंतर्यामी से उसका बदला वैसा ही न पावेगा? सारी सृष्टि पुकार कहती है, और हमारा अंतःकरण भी इस बात की गवाही देता है कि ईखर अन्याय कभी नहीं करेगा; जो जैसा करेगा वैसा ही उससे उसका बदला पावेगा।"

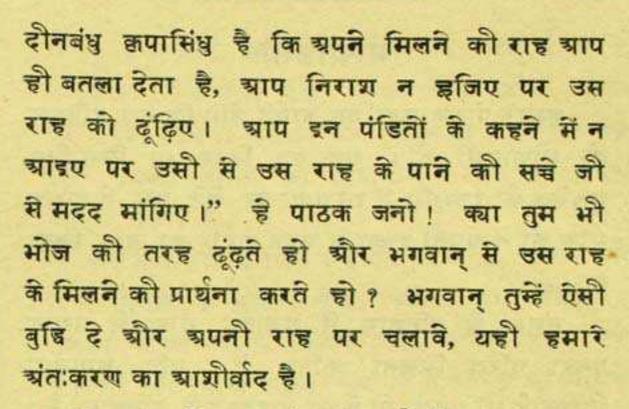
तब तीसरा पंडित आगे बढ़ा और उसने यों जवान खोलो कि "महाराज! परमेखर के यहां हम लोगों को वैसा हो बदला मिलेगा कि जैसा हम लोग काम करते हैं। इसमें कुछ भी मंदेह नहीं, आप बहुत यथार्थ फर्माते हैं। परमेखर अन्याय कभी नहीं करेगा, पर वे इतने प्रायिश्वत और होम और यज्ञ और जप, तप, तीर्थयात्रा किस लिये बनाए गए हैं? वे इसी लिये हैं कि जिसमें परमेखर हम लोगों का अपराध हमा करें और वैकंठ में अपने पास रहने की ठीर



देवे।" राजा ने कहा "देवताजी, कल तक तो मैं यापकी सब बात मान सकता या लेकिन यब तो मुक्त इन कामों में भी ऐसा कोई दिखलाई नहीं देता जिसके करने से यह पापी मनुष्य पवित्र पुर्यातमा हो जावे। वह कौन सा जप, तप, तीर्घयाता, होस, यज्ञ और प्रायिश्वत्त है जिसके करने से हृदय गुड हो श्रीर श्रीभमान न श्रा जावे ? श्रादमी को पुसला लेना तो सहज है पर उस घट घट के ग्रंतर्यामी को क्योंकर फुसलावे! जब मनुष्य का मन ही पाप से भरा हुआ है तो फिर उससे पुख्य कम कोई कहां से बन आवे। पहले आप उस खप्न को सुनिए जो मैंने रात को देखा है तब फिर पीछे वह उपाय बतलाइए जिससे पापी मनुष्य ईखर के कोप से कुटकारा पाता है।"

निदान राजा ने जो कुछ खप्न रात में देखा था, सब ज्यों का त्यों उस पंडित को कह सुनाया। पंडित जो तो सुनते ही अवाक् हो गए, उन्होंने सिर भुका लिया। राजा ने निराध होकर चाहा कि तुषानल में जल मरे पर एक परदेशी आदमी सा, जो उन पंडितों के साथ बिना बुलाए घुस आया था, सोचता विचारता उठकर खड़ा हुआ और धीर से यों निवेदन करने लगा—"महाराज, हम लोगों का कर्ता ऐसा





जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।



भीष्माष्टमी#

हमारे पाठक कदाचित् जानते होंगे कि गत रिववार को भीषाष्टमी थी। यह वह दिवस था जिस दिन कुरुचेत्र की रणभूमि में शरशय्या पर लेटे हुये पितामह भीषा जी ने अपनी इच्छा से अपने शरीर का त्याग किया था।

संसार के इतिहास में महात्मा भीषा के समान दूसरा चरित्र मिलना कठिन है। यदि समानता दिखलाई भी पड़ेगी तो केवल भारतवर्ष के इतिहास में। घोर संयाम और भी स्थानों में इये हैं। यूरूप में यूनान देश और ट्राय देश के रहनेवालों की लड़ाई प्रसिद्ध है। परन्तु भारतवर्ष के वीरों और यूनान और ट्राय के वीरों में बड़ा ही अन्तर है। ऐकिलीज़, हेकटर, यूलिसीज़, एजक्स और ऐगेमेमनान अवश्य बड़े वीर और पराक्रमी थे, प्ररन्तु उनकी तुलना भीषा, द्रोणाचार्य, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के साथ करना इतिहास के मर्मी को एकबारगी भूलना है। भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता और यूनान की प्राचीन सभ्यता दोनों में बहुत ही बड़ा भेद था। वहीं भेद भारतवर्ष के वीरों श्रीर यूनान के वीरों के कर्मी में है।

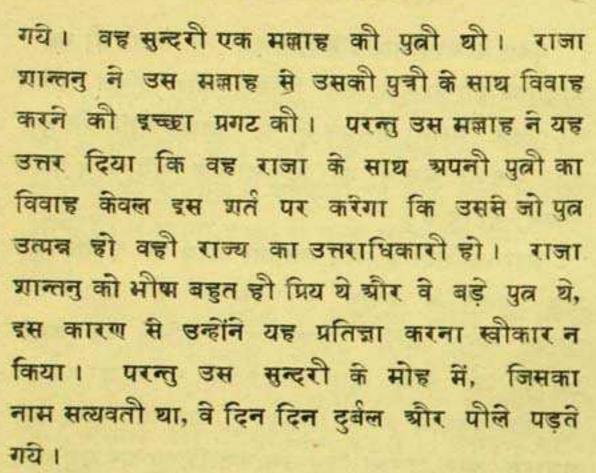
^{*} माघ ग्रल १२ सं° १८६४ के 'अध्यदय' पत से उडत।



यूक्प के आधिनिक इतिहास की तो चर्चा ही क्य आधिनिक इतिहास में उस विचित्र और पवित्र चित्र का चित्र मिलना असंभव ही है, जिसकी कीर्ति की कुछ कटा उसकी संतान को दिखलाने के लिये आज हमने लेखनी उठाई है।

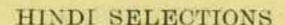
भारतवासियों के लिये महात्मा भीषा के चरित्र की चर्चा असृत के समान है। जितना ही अधिक वह उनका सारण करेंगे, जितना ही अधिक वह उनके उपदेशों को आंख खोल कर पढ़ेंगे, उतना ही अधिक बल और पुरुषार्थ उनमें आवेगा। देश की दशा को सुधारने और उसको फिर उस उच्च शिखर पर पहुंचाने में, जिस पर कि वह किसी समय में था, भीषा जी का चरित्र इमारे लिये ग्रादर्भ रूप है। पित्र-भित्त, प्रतिज्ञा-पालन, सत्य, धर्मपरायणता, शूरता, निर्भयता, देशभिता इन गुणीं में कैसी अच्छी शिचा हमें भीषा जी के चरित्र से मिलती है। इन्हीं गुणों से देश का, जाति का और भारतवासियों का उत्थान सम्भव है। इसी कारण से उन्हें भीषा जी के चरित्र पर, जितना अधिक हो सके, मनन करना चाहिये।

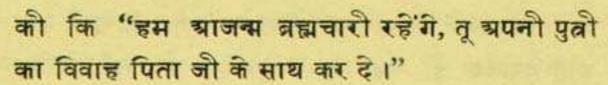
भीषा जी राजा शान्तनु के पुत्र थें। उनके पिता एक दिन आखेट के लिये जा रहेथे कि उन्होंने एक सुन्दर युवती को देखा, जिसे देख कर वे मोहित हो



पिता की यह दशा देखकर भीषा को चिन्ता हुई श्रीर इस रोग का कारण खोजने पर उन्हें वास्तविक बात मालूम हुई। भीषा तुरन्त ही उस मझाह के पास गये श्रीर उससे उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि सत्यवती से जो पुत्र होगा वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा, मैं उत्तराधिकारी न हंगा।

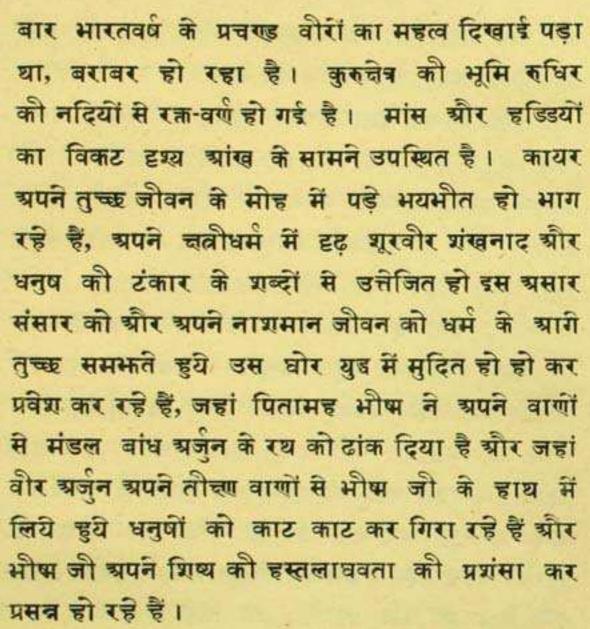
मल्लाइ ने यह बात तो मान ली परन्तु फिर यह कहा कि "तुमने अपने सम्बन्ध में तो प्रतिज्ञा कर ली कि तुम राज्य न लोगे परन्तु यदि तुम्हारे पुत्र हुए और उन्होंने राज्य छीन लिया तब हम क्या करेंगे?" इस बात को सुनकर भीषा ने उसी समय यह कठिन प्रतिज्ञा





पित्रभिति का कैसा अच्छा उदाहरण हमको इससे मिल रहा है। परन्तु इस प्रतिज्ञा करने से भी बढ़कर प्रतिज्ञा-पालन करने की रीति थी। जिस भाति भीषा ने सत्यवती के पुत्रों की रचा और उनके साथ खेह किया वह हमें प्रतिज्ञा-पालन की उत्तम शिचा दे रहा है। सत्यवती ने अपने पुत्रों के मरने पर ख्यं भीषा से बहुत अनुरोध किया कि वह वंग्र चलाने के लिये अपना विवाह करें परन्तु हढ़प्रतिज्ञ भीषा की प्रतिज्ञा नहीं टल सकती थी। एक बार जो ब्रत किया, खत्यु के दिन तक निवाहा, राज्य रहे चाहे न रहे, वंग्र चले या न चले, वीर भीषा की प्रतिज्ञा अटल है। उसका तोड़ना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

पाठकगण, अब आप महाभारत का दूसरा चित्र आपनी आंखों के सामने खींचें जब कि वह भीषा संग्राम-भूमि में अजिय रथ पर चढ़े सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहे हैं और चत्रीधर्म का निबाह करते और वाणों की वर्षा करते पाण्डवों की सेना का संहार कर रहे हैं। महाभारत को आरक्ष हुए नव दिवस व्यतीत हो चुके हैं। नव दिवस से वह रोमहर्षण संग्राम जिसमें अन्तिम



भीषा जी ने दुर्योधन को महाभारत आरक्ष होने से पहले बहुत समकाया या परन्तु उसके न मानने पर और उसकी और युद्ध करना अपना धर्म जान भीषा जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं दस सहस्र पाण्डवों के योदाओं को मारूंगा। आज वे उसी कठिन प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं। युधिष्ठिर की सेना में आज प्रलय मच गया है। जिसी और पितामह के रथ और



वाण जाते हैं उसी और योबाओं की लोधे दिखलाई पड़ती हैं। पाण्डवों की सेना भीषा जी के प्रचण्ड तेज के सामने आज योषा ऋतु के सूर्य से तप्त गी के समान नि:सहाय और निर्वल हो रही है।

ऐसी अवस्था में पाग्डवों के सहायी श्रीक्षणा जी अर्जन के रथ को छोड़ भीषा के मारने के लिए सिंह के समान गर्जते क्रोध से दीड़े हैं। उनको अपनी ग्रोर ग्रात देखकर भीषा जी हाथ जोड़कर कह रहे हैं कि "हे क्षण, हे यादवेन्द्र, ग्राप ग्राइये, ग्रापको नमस्कार है। ग्राप सुक्षे इस महायुद्ध में गिराइये। हे निष्पाप! में ग्रापका निस्सन्देह दास हं, ग्राप इच्छानुसार प्रहार कीजिये, ग्राप के हाथों से मरना मेरा सब प्रकार कल्याण हो है।"

भीषा जो हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त यह कह रहे हैं
श्रीर दूसरी श्रोर से श्रर्जुन श्रीक्षणा के चरणों को पकड़
कर उन्हें उनकी इस प्रतिज्ञा की याद दिला रहे हैं कि
"हम नहीं लड़ेंगे" श्रीर प्रार्थना कर रहे हैं कि
"पितामह को मारना काम मेरा है, श्राप श्रपने प्रण की
श्रोर ध्यान दीजिये।" इस प्रकार श्रर्जुन के स्मरण
दिलाने पर श्रीक्षणा फिर रथ पर चढ़ गये हैं श्रीर फिर
श्रजुन श्रीर क्षणा श्रीर पाण्डवों की समस्त सेना पितामह
के श्रस्तप्रहार से घायल श्रीर पीड़ित हो रही है।

अब सूर्य अस्ताचल को चले गये हैं। दिन के परिश्रम से यकी हुई दोनों सेनायें अपने अपने डिरों में विश्राम कर रही हैं। महाराज युधिष्ठिर के डिरे में सलाह हो रही है। युधिष्ठिर भीषा जी के पराक्रम को देख निराश हो रहे हैं। अपनी सेना को भीषा के सामने निःसहाय देखकर श्रीक्षण जो से कह रहे हैं कि "भीषा जी का विजय करना महाकठिन और असक्थव है। मेरी सेना भीषा जी के सामने पतिङ्गे के समान नष्ट हो रही है। मेरे शूरवीर प्रतिदिन भीषा जी के हाथों से मारे जा रहे हैं, इस कारण से मुक्के ऐसा जान पड़ता है कि मेरा कल्याण बन को चले जाने में ही है।"

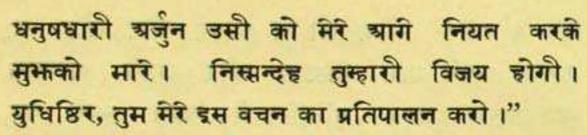
इस बचन को सुनकर श्रीक्षणा जी ने युधिष्ठिर को ढाढ़स दिया कि अर्जुन अवश्य भीषा पितामह को मारेंगे, फिर युधिष्ठिर ने कहा कि "अच्छा चलो हम सब लोग भीषा पितामह हो से पूछे' कि वे किस रीति से मारे जा सकते हैं। यद्यपि वे दुर्योधन की श्रोर लड़ रहे हैं तो भी उन्होंने हम लोगों को युद्ध में सलाह देने का प्रण किया है। वे स्वयं अपने मरने का उद्योग बतावेंगे।"

श्रीक्षण जी श्रीर पाण्डवों ने भी यह बात स्वीकार की श्रीर सब मिलकर नम्त्रता के साथ पितामह के



डेरे में गये। भीषा जी ने आदर और स्नेष्ट से उनको अपने पास बिठाया और उनके आगमन का कारण पूंछा। युधिष्ठिर ने अपने आने का कारण बताया और कहा कि "इस लोग आप में किसी प्रकार की वृटि नहीं जानते, आप युद में सदा धनुष-मंडल के समान दिखाई पड़ते हैं। इस लोग ग्रापको धनुष चढ़ाते, वाण लेते, संधानते ग्रीर फिर सूर्य के समान रथ पर चढ़ते हुये भी नहीं देख सकते हैं, अब किस पुरुष की सामर्थ्य है जो आपको युद्ध में विजय कर सके, आपने अपने वाणों की वर्षा से युद्ध में प्रलय मचाकर मेरी बड़ी सेना का नाश किया है, अब जिस रीति से इस आपको युद्ध में विजय कर सकें और अपनी सेना बचा सकें सो हे पितामइ! आप इसको बताइये।"

दसके उत्तर में भीषा जी ने कहा कि "हे राजा! तुम्हारी सेना में द्रुपद का बेटा, शूरवीर शिखण्डी नाम का है। जिस प्रकार से यह पहिले की था, फिर पुरुष हुआ, इसका बत्तान्त तुम जानते हो। अर्जुन तीच्य वाणों को लिये हुये शिखण्डी को आगे करके मेरे सन्मुख जो आवें तो धनुष वाण हाथ में लिये हुये भी मैं उस पहिले की रूप रखने वाले पर किसी अवस्था में शखन चलाऊंगा। इस कारण यह उत्तम



धन्य हो वीर भीषा! यह तुन्हारे योग्य ही या कि सत्य का पालन कर स्वयं अपने मरने का उपाय बतलाया। धन्य है वह भूमि जो तुन्हारे समान साहसी सत्यव्रत और टढ़प्रतिज्ञ वीर पैदा करे। तुन्हारे ही ऐसे पविव्रात्माओं के पुख्य से आज भी वैलोक्य स्थिर है, तुन्हारे ही से प्रभाव से संसार में आज भी कुछ धर्म दिखाई पड़ता है। और तुन्हारी कीर्ति की अजय ध्वजा के नीचे आज भी भारतवासी यह यव कर रहे हैं कि बहुत दिनों के आलस्य के पाप का प्रायक्षित्त कर तुन्हारी सन्तान कहलाने के योग्य हों!

प्रातः काल महाभारत का दसवां दिन आरक्ष हो गया है, पाण्डवों की सेना भीष जी के उपाय बताने के अनुसार शिखण्डी को आगे कर भीषा पितामह के मारने के लिये उद्यत हो रही है। कीरवों के बड़े बड़े सैनिक द्रोणाचार्य, कपाचार्य, जयद्रथ, अख्यामा आदि भीषा पितामह की रचा में प्रवृत्त हैं। घोर संग्राम हो रहा है, दोनों और के सहस्रों वीर रणगंगा में स्नान कर अपने चत्रीधर्म को निबाहते वीरगति या ब्रह्मलोक की यात्रा कर रहे हैं।



पिताम ह भीषा भी धनुष की टनकारों से घोर शब्द करते हुंगे अपने बाणों से आकाश आच्छादित कर रहे हैं; परन्तु शिखण्डी के सन्मुख से हुट जाते हैं और उसके बाण सहते हुंगे उस पर शख नहीं फेंकते हैं। आज उन्होंने अपनी उस प्रतिज्ञा को जो उन्होंने दुर्गीधन से की थी, पूरी कर दिया है। और अब इस हत्याकाण्ड से हटा चाहते हैं।

सन्धा का समय निकट है, सूर्य अस्ताचल को जाने ही वाले हैं। अर्जुन ने शिखण्डी की आड़ में लड़ते हुंगे भीषा जी के अंगों में बाण ही बाण वेध दिये हैं। उनका कवच टुकड़े टुकड़े हो गया है। उनका ग्रारीर भी शिथिल हो रहा है। भीषा जी भी कह रहे हैं कि "जान पड़ता है कि ये सब बाण मुक्ते अर्जुन ही मार रहा है; क्योंकि न शिखण्डी के और न किसी के बाण मुक्ते इस प्रकार पीड़ा पहुंचा सकते हैं"। तो भी टूटा ही कवच धारण किये वे लड़ रहे हैं और पाण्डवों की सेना का विध्वंस करते हैं।

परन्तु बस अब अधिक बलं नहीं रह गया। रथ के टुकड़े हो गये हैं और महात्मा भीषा रथ पर से पृथ्वी पर गिर पड़े हैं। परन्तु रोम रोम में धंसे शरों ने उन्हें आकाश ही में रोक लिया है। वे पृथ्वी तक पहुंचने नहीं पाये हैं और शरशय्या पर सच्चे वीर के समान



पड़े हैं। महाला भीषा के गिरते ही चारों श्रोर हाहाकार मच गया है। युढ बन्द हो गया है। कीरव श्रीर पाण्डव सभी कवच उतार श्रीर शव श्रलग धर महाला भीषा के दर्शन के लिये दीड़ रहे हैं। उनके चारों श्रोर कीरव श्रीर पाण्डव श्राखों में श्रांस् भर उपस्थित हैं। भीषा जी का श्रिर लटका हुशा है। इस हितु उन्हें तिकये की श्रावश्यकता हुई है। राजा लोग बहुत कोमल तिकये उनके शिर के नीचे रखने को उपस्थित कर रहे हैं। परन्तु उन तिकयों को देखकर भीषा जी कहते हैं कि "हे राजाश्रो! ये तिकये वीरों की श्रय्याश्रों पर श्रोभा नहीं देते"।

फिर अर्जुन को देख कर बोले—"हे बेटा अर्जुन! मेरा शिर लटकता है, तुम बहुत शीव्र मेरे शयन के योग्य तिकया मुभे दे दो"। आंखों से आंसू बहाते हुये अर्जुन ने "जो आज्ञा" कहकर और पितामह का आश्य समभ गांडीव धनुष को हाथ में ले तीन बाणों से भीषा जी के लटकते हुये शिर को सीधा कर दिया। भीषा जी अर्जुन से बहुत ही प्रसन्न हुये और उसकी प्रशंसा करने लगे।

इसी प्रकार शरशया पर पड़े भीषा जी इस बात की प्रतीचा देख रहे हैं कि सूर्य दिचणायन से उत्तरायण हो जायं, तब हम अपना शरीर कोड़ें। इसी शया पर से वे दुर्योधन और कर्ण को उपदेश दे रहे हैं कि इस



देश-नाशकरी संग्राम को मेरी ही मृत्यु के साथ बन्द कर देना चाहिये।

दुर्योधन श्रीर कर्ण के न मानने के कारण युद्ध बराबर हो रहा है। श्रन्त में कीरवों को जय कर युधिष्ठिर ने राज पाया है; परन्तु भाइयों के मरने पर शोकग्रस्त हो फिर पितामह के पास श्राये हैं श्रीर भीषा जी ने उनको वह धर्म का उपदेश दिया है जो चिरकाल तक भारतवासियों को स्मर्ण रखना चाहिये:—

केवल मारने और न मारने में पाप व पुख्य नहीं है। धर्म की और देश की रचा के लिये शतुओं का नाश करना ही सदा धर्म है। ऐसे समय मारने से मुख मोड़ना महापाप है। धर्म ही एक मुख्य पदार्थ है। जीना और मरना सदा ही लगा रहता है, एक शरीर को छोड़ मनुष्य को दूसरे शरीर में जाना है। इस कारण शरीर के मोह में पड़ धर्म का त्याग करना केवल निर्वृद्धि और मूर्खता है।

महात्मा भीषा का चिरत्न इस बात का उदाहरण है कि मनुष्य को किस प्रकार अपने धर्म को निवाहना चाहिये और भारतवासियों को सदा शिक्षा दे रहा है कि कायरता और शरीर के मोह को छोड़ तुम्हें निर्भयता से अपने धर्म पर आरूढ़ हो देश की उन्नति में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।



ताई

(8)

"ताजजी, हमें लेलगाली (रेलगाड़ी) ला दोगे?" —कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास को और दौड़ा।

बाबू साइब ने दोनों बांहें फैलाकर कहा—"हां बेटा, ला देंगे।"

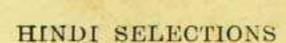
उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया, और उसका मुख चूमकर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी ?"

बालक बोला—"उसमें बैठके बली दूल जायंगे। हम भी जायंगे, चुन्नी को भी ले जायंगे। बाबूजी को नहीं ले जायंगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते। ताजजी, तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जायंगे।"

बाबू-"श्रीर किसे ले जायगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बक्क, श्रील किकी को नहीं से जायंगे।"

पास ही बाबू रामजीदास की अईंगिनी बैठी थीं। बाब साहब ने उनकी ओर दशारा करके कहा—"और अपनी तार्द को नहीं से जायगा?"



वालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताई जी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जायंगे।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताजजी ही को ले जा! मेरे उपर दया रख!"

ताई ने वह बात बड़ी क्खाई के साथ कही। बालक ताई के ग्रष्टक व्यवहार को तुरत ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जायगा?"

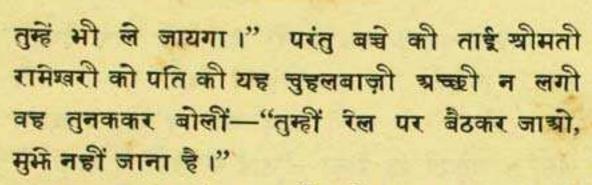
बाब्—"नो प्यार करें तो ले जायगा ?"

बालक को इसमें कुछ संदेह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मीन रहा।

बाबू साइब ने फिर पूछा—"क्यों रे, बोलता नहीं? ताई प्यार करें तो रेल पर बिठाकर ले जायगा?"

बालक ने ताजजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया; परंतु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साइब उसे अपनी अर्डांगिनीजी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो, इसे प्यार कर लो तो यह



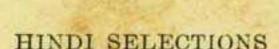
बाबू साइब ने रामेखरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"ध्यार नहीं करोगी तो फिर रेल में नहीं बिठावेगा।—क्यों रे मनोहर ?"

मनोइर ने ताज की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोइर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोइर नीचे गिर पड़ा। शरीर में तो चोट नहीं लगी; पर इदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साइब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार-पुचकार कर चुप किया और तत्प्रश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का बचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोइर भय-पूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की और ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनो हर के चले जाने पर बाबू रामजी दास रामेखरी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया! जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुंह मटकाकर बोलीं—"लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे?



याप ही तो उसे मेरे जपर डालते थे और याप ही यब ऐसी बाते' करते हैं।"

बाबू साइव कुढ़कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं ?"

रामेखरी—''ग्रीर नहीं किसे कहते हैं? तुन्हें तो ग्रपने ग्रागे ग्रीर किसी का दुख-सुख सुभता ही नहीं। न-जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुन्हें इन बातों की कोई परवा ही नहीं, ग्रपनी चुहल से काम है।"

बाबू—"बचों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाई जैसा जी हो प्रसन्न हो जाता है। सगर तुम्हारा हृदय न-जाने किस धातु का बना हुन्ना है!"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। श्रीर, होने को होता भी है; मगर वैसा बचा भी तो हो! पराए धन से भी कहीं घर भरता है।"

बाबू साइब कुछ देर चुप रहकर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समभता कि अपना धन किसे कहेंगे।"

रामिखरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—'बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समभो; पर सुभे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं! नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते! तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। श्रादमी संतान के लिए न-जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।"

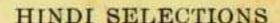
बाबू साइब के मुख पर घुणा का भाव भालक आया। उन्होंने कहा—"पूजा-पाठ, व्रत, सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।

श्रीमतीजी कुछ-कुछ रुश्रासे खर में बोलीं—"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रक्वा है! ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायं, तो काम कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें, तो श्रादमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।"

बाबू साइब ने सोचा कि मूर्ख बी के मुं इ लगना ठीक नहीं। अतएव वह बी की बात का कुछ उत्तर न देकर वहां से टल गए।

(2)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आदत का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उसका नाम है क्रण्णदास। दोनों



भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्तांतान हैं। कष्णदास के दो संतानें हैं। एक पुत्र, वही पुत्र जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने कोटे भाई और उनकी संतान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी संतान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। कोटे भाई की संतान को वे अपनी ही संतान समभते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समभते हैं।

परंतु रामजीदास की पत्नी रामेखरी को अपनी संतान-हीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन-रात संतान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की संतान पर पति का प्रेम उनकी आंखों में कांटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवत्त होकर रामजी-दास श्या पर लेटे हुए शीतल और मंद वायु का आनंद ले रहे थे। पास ही दूसरी श्या पर रामेखरी, हथेली पर सिर रकते, किसी चिंता में डबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साइब के पास से उठकर अपनी मां के पास गए थे।

बाबू साइब ने अपनी खी की ओर करवट लेकर कहा—"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुक्ते अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार विलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामिश्वरी बोलीं—"तुन्हीं ने मुक्के ऐसा बना रक्वा है। उस दिन उस पंडित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्न में संतान का जोग है और उपाय कुरने से संतान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताए थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुन्हारी इस बात से रातदिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है, फिर होना न होना तो भगवान के अधीन है।"

बाबू साइब इंसकर बोले—"तुम्हारी जैसी सीधी खी भी.....क्या कहं, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया भर के भूठे और धूर्त हैं! ये भूठ बोलने हो की रोटियां खाते हैं!"

रामिश्वरी तुनककर बोलीं—"तुम्हें तो सारा संसार भाठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब



भूठे हैं ? पंडित कुछ अपनी तरफ़ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं। ग्राख में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। ग्राख भूठा है, तो वे भी भूठे हैं। अंगरेज़ी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के ज़माने से चली आई हैं, उन्हें भी भूठा बताते हैं।"

बाबू साइब—"तुम बात तो समभती नहीं, अपनी ही ओट जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-गाल भूठा है। संभव है वह सच्चा हो। परंतु ज्योतिषियों में अधिकांग्र भूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते और लोगों को लूटते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—''हं', सब भूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सचे हो! अच्छा एक बात पूक्ती हं। भला तुम्हार जी में संतान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेखरी ने बाबू साइब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लंबी सांस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसके हृदय में संतान का मुख देखने की



दक्का न हो? परंतु किया क्या जाय? जब नहीं है, श्रीर न होने की कोई श्राशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिंता करने से क्या लाभ ? इसके सिवा, जो बात श्रपनी संतान में होती, वही भाई की संतान से भी हो रही है। जितना स्नेह श्रपनी पर होता, जतना ही इन पर भी है, जो श्रानंद उनकी बाल-क्रीड़ा से श्राता, वही इनकी कीड़ा से भी श्रा रहा है। फिर मैं नहीं समभता कि चिंता क्यों की जाय।"

रामेखरी कुढ़कर बोलीं—"तुम्हारी समभ को मैं क्या कहं। इसी से तो रात-दिन जला करती हं। भला यह तो वताओं कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साइब इंसकर बोले— "अरे तुम भी कहां की पोच बातें लाईं। नाम संतान से नहीं चलता। नाम अपनी सुक्रति से चलता है। तुलसीटास को देश का बचा-बचा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गए हैं, उन सबका नाम क्या उनकी संतान ही की बदौलत चल रहा है? सच पूछी, तो संतान से नाम चलने की जितनी आशा रहती है, नाम डूब जाने की भी उतनी ही संभावना रहती है। परंतु सुक्रति एक ऐसी वस्तु है, जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका



रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरिधारीलाल कितने नामी आदमी थे? उनके मंतान कहां है? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न-जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

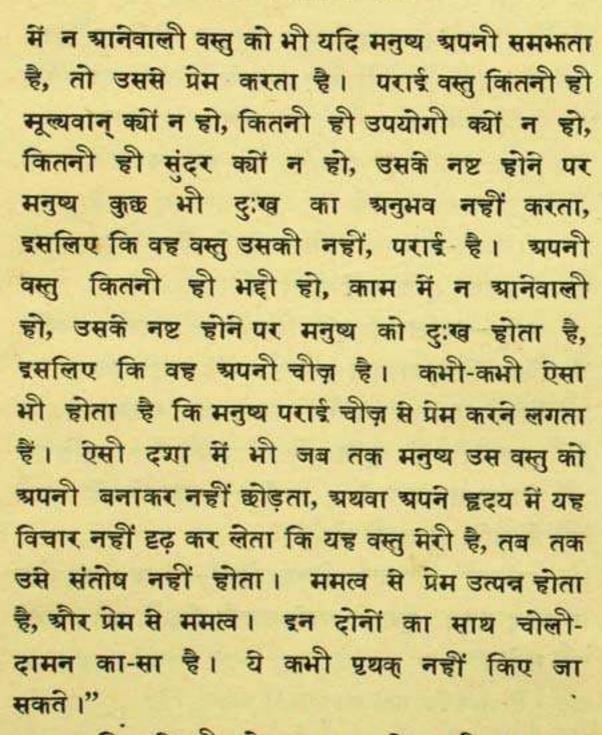
रामेखरी—"शास में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती ?"

बाबू—"मृति पर मुर्भ विखास ही नहीं। मृति है किस चिड़िया का नाम? यदि मृति होना मान भी लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मृति हो ही जाती है? मृति का भी क्या सहज उपाय है। ये जितने पुत्रवाले हैं, सभी की तो मृति हो जाती होगी?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोलीं—"श्रव तुमसे कौन बकवाद करे। तुम तो श्रपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

(₹)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुंदर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समभता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किंतु भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काम

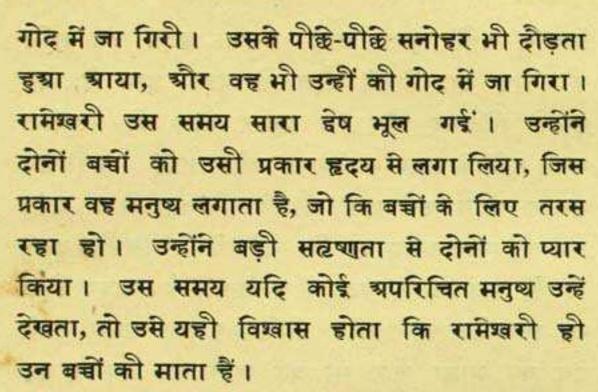


यद्यपि रामेखरी को माता बनने का सीभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माताके हृदय में होते हैं; परंतु उनका



विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के जपर लानेवाला कोई नहीं। इसीलिए उनका हृदय उन बचों की ओर खिंचता तो था, परंतु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति देष उत्पन्न होता था, पृणा पैदा होती थी। बिशेषकर उस समय उनके देष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थीं कि उनके प्रति-देव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेखरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेखरी खुली कत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थीं। दोनों बच्चे कत पर दीड़-दीड़कर खेल रहे थे। रामेखरी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेखरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हें-नन्हें मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिन्नाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएं उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दीड़ा। वह खिलखिलाती हुई दीड़कर रामेखरी की



दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के ग्राने की ग्राहट पाकर बच्चां की माता वहां से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।"—कहते हुए बाव रामजीदास कत पर श्राए। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेखरी की नींद-सी टूटी। पित को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भीहें तन गई। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही छुणा और देख का भाव जग उठा।

बचीं को रेलगाड़ी देकर बाबू साइब रामेश्वरी के पास आए, और मुसकिराकर बोले—"आज तो तुम



वचीं को वड़ा प्यार कर रहीं थीं! इससे माल्म होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पित की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमज़ोरी पर बड़ा दुख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने जपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पित के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमज़ोरी पित पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिए असहा हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसीलिए मैं कहता हूं कि अपनी संतान के लिए सोच करना हथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी संतान प्रतीत होने लगेंगे। सुभी इस बात से प्रसन्ता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साइब ने नितांत ग्रुड हृदय से कही थी; परंतु रामेश्वरी को इसमें व्यंग की तीच्ण गन्ध सालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर सन में कहा—इन्हें मीत भी नहीं जाती। मर जायं, पाप कटे! जाठों पहर गांखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साइब ने पत्नी को मीन देखकर कहा- "अब

भिपने से क्या लाभ ? अपने प्रेम-को किपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, किपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेखरी जल-भुनकर बोलीं—"मुक्त क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूंगी? तुन्हीं को मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आके घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हंसना-बोलना ही पड़ता है। अभी परसीं ज़रा यीं ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ीं बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं, न यों चैन, न वां चैन।"

बाबू साइव को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की की है। अभी अच्छी ख़ासी बैठी बचों को प्यार कर रही थी, मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाई जो करे, पर मेरे कहने से बिन्नयों उछलती है। न-जाने मेरी बातों में कीन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालम होता है तो न कहा करूंगा। पर इतना याद रक्वो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े- सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा! तुमसे मुभी ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेखरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने स्त्रोभ तथा कोध को वह आंखीं दारा निकालने लगीं।



HINDI SELECTIONS

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बचीं पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेखरी के देव और घणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्राय: बचों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेखरी ने यह देखा कि बचीं के कारण ही वह पति की नज़र से गिरती जा रही हैं, तब उनके हृदय में बड़ा तूफ़ान उठा। उन्होंने सीचा-पराए बच्चों के पीछे यह मुभसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुक्ते हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बचे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गए। न ये होते, न सुभी ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के दिए जलाऊ गी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानास कर रक्वा है।

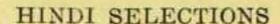
इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की संतान का अभाव, पित का भाई की संतान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार खयं उन्हीं को कष्ट-दायक प्रतीत होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी श्रोर लगाने के लिए उठकर टइलने लगी।

वह टहल ही रही थीं कि मनोहर दीड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी श्रुकुटी चढ़ गई, और वह कत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गई।

संध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगीं को देखता और सीचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनंद आवे। देर तक पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दीड़कर रामेश्वरी के पास आया और उनकी टंगों में लिपटकर बोला—"ताई, हमें पतंग मंगा दो।" रामेश्वरी ने भिड़ककर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से मांग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की और ताकने लगा। थोड़ी देर वाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यंत करूण-स्वर में कहा—"ताई, पतंग मंगा दो, हम भी उलावेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी



श्रीर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लंबी सांस लेकर मन-ही-मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो श्राज मुक्तसे बढ़कर भागवान् खी संसार में दूसरी न होती। निगोड़-मारा कितना सुंदर है, श्रीर कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है—यही जी चाहता है कि उठाकर द्वाती से लगा लें।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरनेवाली ही थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मीन देखकर बोला— "तुम हमें पतंग नहीं मंगवा दोगी, तो ताजजी से कहकर तुन्हें पितवांगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे भिड़ककर बोलीं—'जा कह दे अपने ताजजी से। देखूं वह मेरा क्या कर लेंगे।"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से इट आया और फिर सत्वणा नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगीं को देखने लगा।

इधर रामेखरी ने सोचा—यह सब ताजजी के दुलार का फल है कि बालिक्षोभर का लड़का मुक्ते धमकाता है। ईक्षर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी कत की ओर आई और रामेखरी के उपर से होती हुई क्रजी

की ग्रोर गई। कत के चारों ग्रोर चहारदीवारी थी। जहां रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहीं पर एक दार था, जिससे इन्जे पर आ-जा सकते थे। रामेखरी उस द्वार से सटी दुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतंग को कु पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दीड़कर इच्जे की ग्रोर चला। रामेखरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास से होकर कुजी पर चला गया और उनसे दो फ़ीट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग कुक्के पर से होती हुई नीचे, घर के आंगन में, जा गिरी। एक पैर इच्जे की मुंडिर पर रखकर मनोहर ने नीचे त्रांगन में भांका, और पतंग को ग्रांगन में गिरते देख वह प्रसन्ता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीव्रता से घूमा ; परंतु घूमते समय मुंडिर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ग्रोर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुंडर त्रा गई। वह उसे पकड़कर लटक गया, श्रीर रामेखरी की श्रोर देखकर चिन्नाया—"ताई!" रामेखरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। उनके मन में श्राया कि श्रच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा। यही सोचकर वह एक चण के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुंडिर पर से फिसलने लगे।



वह अत्यंत भय तथा करूण नेत्रों से रामेखरी की ग्रीर देखकर चिक्काया—"ग्ररी ताई!" रामेखरी की ग्रांखें मनोहर की ग्रांखें से जा मिलीं। मनोहर की वह करूण दृष्टि देखकर रामेखरी का कलेजा मुंह की ग्रा गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर की पकड़ने के लिए ग्रपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुंचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुंडर कूट गई। वह नीचे ग्रा गिरा। रामेखरी चीख़ मारकर कर्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताइ तक बुख़ार में वेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह ज़ोर से चिक्का उठतीं, श्रीर कहतीं—"देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाश्रो—दीड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह कहतीं—"बटा मनोहर, मैंने तुभी नहीं बचाया। हां, हां, मैं चाहती तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं।

मनोहर की टांग उखड़ गई थी। टांग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताइ बाद रामेखरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है ?"

INTERMEDIATE

रामजीदास ने उत्तर दिया—"श्रच्छा है।" रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाश्रो।"

मनोहर रामेखरी के पास लाया गया। रामेखरी न उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आंखों से आंसओं की भड़ी लग गई। हिचकियों से गला कंध गया।

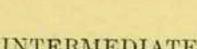
रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई'। अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से भी देख और घुणा नहीं करतीं। और, मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हे एक चण भी कल नहीं पड़ती।

दो बैलीं की कथा

जानवरीं में गधा सबसे ज्यादा बुडिहीन समभा जाता है। हम जब किसी आदमी को पक्षे दरजे का विवक्षण कहना चाहते हैं, तो उसे गधा कहते हैं। गधा सचमुच विवक्षण है, या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिश्युता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय



नहीं किया जा सकता। गाएं सींग मारती हैं, व्याई हुई गाय तो अनायास ही सिंहिनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत ग़रीब जानवर है; लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध या ही जाता है; लेकिन गर्ध को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असंतोष की छाया भी न दिखाई देगी। वैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो; पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायी रूप से क्राया रहता है। सुख-दु:ख, हानि-लाभ, किसी दशा में भी उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-सुनियों के जितने गुण हैं, वह सभी उसमें पराकाष्टा को पहुंच गये हैं; पर आदमी उसे वेवकूफ़ कहता है। सद्गुणीं का इतना अनादर कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न भारत-वासियों की अफ्रिका में क्यों दुर्दशा हो रही है? क्यों अमेरिका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता ? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचा कर रखते हैं, जी तोड़कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-भगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम



खा जाते हैं। फिर भी बदनाम हैं। कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गएव बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कुछ ही कम गधा है, और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम 'गधा' शब्द का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में बिछया के ताज का प्रयोग भी करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद वेवकुफी में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे; मगर हमारा विचार ऐसा नहीं। बैल कभी-कभी मारता भी है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आ जाता है। और भी कई रीतियों से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है; अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

भारी काछी के दोनों बैलों के नाम ये हीरा श्रीर मोती। दोन पछाई जाति के थे। देखने में सुन्दर, काम में चीकस, डील ऊंचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाई-चारा हो गया था। दोनों श्रामने-सामने या श्रास-पास बैठे हुए एक-दूसरे से मूक भाषा में विचार विनिमय करते

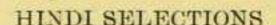


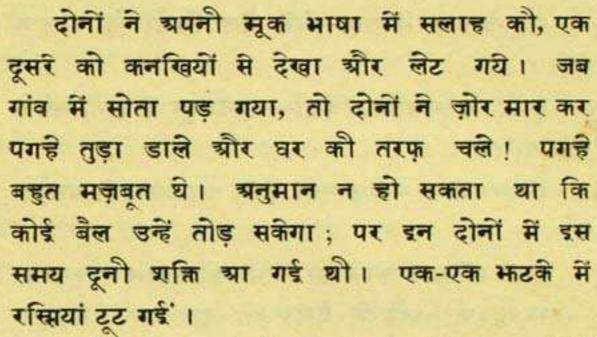
थे। एक दूसरे के मन की बात कैसे समभ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवीं में श्रेष्ठता का दावा करनेवाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक दूसरे को चाटकर और सुंघकर अपना प्रेम प्रकट करते। कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे। विग्रह के भाव से नहीं, केवल विनोद के भाव से, यात्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्ठता होते ही धील-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ पुसपुसी, कुछ इलकी-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विम्बास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त यह दोनों बैल इल या गाड़ी में जोत दिये जाते श्रीर गरदनें हिला-हिलाकर चलते, तो हरेक की यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा-से-ज्यादा बोभ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते, तो एक दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकन मिटा लिया करते। नांद में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ उठते, साथ नांद में मुंह डालते श्रीर साथ ही बैठते थे। एक मुंह हटा लेता, तो दूसरा भी इटा लेता था।

संयोग की बात, भूरी ने एक बार गोंई को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालम, वे क्यों

भेज जा रहे हैं। समभे मालिक ने हमें वेच दिया। अपना यों वेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने; पर भूरी के साले गया को घर तक गोंई ले जाने में दांतीं पसीना आ गया। पीछ से हांकता तो दोनों दाएं-बाएं भागते, पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनों पीछे को ज़ोर लगाते। मारता तो दोनों सींग नीचे करके हुं कारते। अगर ईखर ने उन्हें वाणी दी होती, तो भूरी से पूछते— तुम इस ग़रीबों को क्यों निकाल रहे हो? इसने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रक्वी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता या तो और काम लेते। इमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कब्ल था। इमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर भुकाकर खा लिया, फिर तुमने इमें इस ज़ालिम के हाथ क्यों बेच दिया?

सन्धा समय दोनों बैल अपने नये स्थान पर पहुंचे। दिन-भर के भूखे थे; लेकिन जब नांद में लगाये गये, तो एक ने भी उसमें मुंह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समभ रक्वा था, वह आज उनसे कूट गया था। यह नया घर, नया गांव, नये आदमी, सब उन्हें वेगानों-से लगते थे।





भूरी प्रातःकाल सो कर उठा, तो देखा दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनों में ग्राधा-ग्राधा गरांव लटक रहा है। घुटनों तक पांव कीचड़ से भरे हैं, ग्रीर दोनों की ग्रांखों में विद्रोहमय सेह भलक रहा है।

भूरी बैलों को देखकर स्नेह से गदगद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन श्रीर चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर श्रीर गांव के लड़के जमा हो गये श्रीर तालियां बजा-बजाकर उनका खागत करने लगे। गांव के इतिहास में यह घटना श्रभूतपूर्व न होने पर भी महत्त्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पश्र-वीरों को श्रीभनन्दन-पत्न देना चाहिए। कोई श्रपने घर से रोटियां लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।



एक बालक ने कहा—ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।

टूसरे ने समर्थन किया—इतनी टूर से दोनों अकेले चले आये।

तीसरा बोला—बैल नहीं हैं वे, उस जनम के आदमी हैं।

इसके प्रतिवाद करने का किसी को साइस न हुआ।
भूरी की स्त्री ने बैलों को दार पर देखा, तो
जल उठी। बोली—कैसे नमकहराम बैल हैं, कि
एक दिन भी वहां काम न किया। भाग खड़े
हुए!

भूरी अपने बैलों पर यह आद्येप न सुन सका— नमकहराम क्यों हैं। चारा-दाना कुछ न दिया होगा, तो क्या करते!

खी ने रोब के साथ कहा—बस, तुम्हीं तो बैलीं को खिलाना जानते हो, और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।

भूरी ने चिढ़ाया—चारा मिलता तो क्यों भागते? स्त्री चिढ़ी—भागे इसलिए, कि वे लोग तुम जैसे बुद्धश्रों की तरह बैलीं को महलाते नहीं। खिलाते हैं, तो रगड़ कर जोतते भी हैं। यह दोनों उहरे काम चोर, भाग निकले। श्रव देखूं, कहां से खली



HINDI SELECTIONS

श्रीर चोकर मिलता है! सूखे भूमे के सिवा कुछ न दृंगी, खायें चाई मरें।

वही हुआ। मजूर को कड़ी ताकीद कर दी गई, कि बैलों को खाली सुखा भूसा दिया जाय।

बैलों ने नांद में मुंह डाला, तो फीका-फीका। न कोई चिकनाइट, न कोई रस! क्या खायं। ग्रामा-भरी ग्रांखों से द्वार की ग्रोर ताकने लगे।

भूरी ने मजूर से कहा—थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता वे?

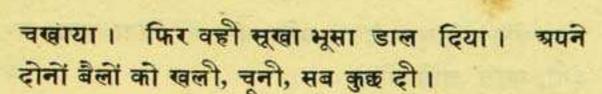
'मालकिन मुक्ते मार ही डालेंगी।' 'चुरा कर डाल आ।' 'ना दादा, पीक्टे से तुम भी उन्हों की-सी कहोगे।'

()

दूसरे दिन भारी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अब की उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी की सड़क की खाई में गिराना चाहा; पर हीरा ने संभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या समय घर पहुंचकर उसने दोनों को मोटी रिस्सियों से बांधा, श्रीर कल की शरारत का मज़ा

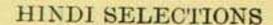


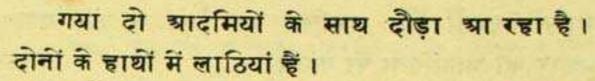
दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था।
भूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी
टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहां मार पड़ी।
आहत-समान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला
सुखा भूसा! नांद की तरफ आंखें भी न उठाई।

दूसरे दिन गया ने बैलों को इल में जोता; पर इन दोनों ने जैसे पांव उठाने की क्सम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया; पर दोनों ने पांव न उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक में खूब डंड जमाये, तो मोती का गुस्सा काबू के बाहर हो गया। इल लेकर भागा। इल, रस्सी, जुआ, जोत, सब टूट-टाट कर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियां न होतीं, तो दोनां पकड़ाई न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—भागना व्यर्ध है। मोती ने उसी भाषा में उत्तर दिया—तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी। अबकी बड़ी मार पड़ेगी।

'पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहां तक बचंगे।'





मोती बोला—कहो तो दिखा दूं कुछ मना मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है।

हीरा ने समभाया — नहीं भाई ! खड़े हो जाओ । 'मुक्ते मारेगा, तो मैं भी एक-दो को गिरा दूंगा।'

'नहीं। इमारी जाति का यह धर्म नहीं है।'

मोती दिल में एंठ कर रह गया। गया आ पहुंचा, और दोनां को पकड़कर ले चला। कुशल हुई, कि उसने इस वक्त मार-पीट न का, नहीं मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर देखकर गया और उसके सहायक समक्त गये, कि इस वक्त टाल जाना ही मसलहत है।

श्राज दोनों के सामने फिर वही सुखा भूसा लाया
गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन
करने लगे। उसी वक्त एक छोटी-सी लड़की दो
रोटियां लिए निकली, श्रीर दोनों के मुंह में देकर चली
गई। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शांत
होती; पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया।
यहां भी किसी सज्जन का वास है। लड़की भैरो की
थी। उसकी मां मर चुकी थी। सीतेली मां उसे



मारती रहती थी; इसलिए इन बैलीं से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गई थी।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डखंडे खाते, अड़ते। ग्राम को यान पर बांध दिये जाते, और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियां खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की वह बरकत थी, कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे; मगर दोनों की आंखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक भाषा में कहा—श्रव तो। नहीं सहा जाता हीरा।

'क्या करना चाहते हो ?'

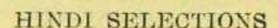
'एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक टूंगा।'

'लेकिन जानते हो वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियां खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। वह वैचारी अनाय न हो जायगी!'

'तो मालकिन को न फेंक टूं। वही तो उस लड़की को मारती है।'

'लेकिन श्रीरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।'

'तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। तो आयो, याज तुड़ाकर भाग चलें।'



'हां, यह मैं स्त्रीकार करता हं; लेकिन इतनी मोटी रस्त्री टूटेगी कैसे!'

'इसका उपाय है। पहले रस्ती को थोड़ा-सा चवा लो। फिर एक भटके में जाती है।'

रात को जब बालिका रोटियां खिलाकर चली गई, तो दोनों रिक्सियां चबाने लगे; पर मोटी रक्सी मुंह में न श्राती थी। वैचार बार-बार जोर लगाकर रह जाते थे।

सहसा घर का द्वार खुला, श्रीर वही लड़की निकली। दोनों सिर भुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूछे खड़ी हो गई। उसने उनके माथ सहलाय श्रीर बोली—खोले देती हं। चुपके से भाग जाश्रो, नहीं यहां लोग तुन्हें मार डालेंगे। श्राज घर में सलाह हो रही है, कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जायं।

उसने गरांव खोल दिया; पर दोनों चुपचाप खड़ैं रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा—अब चलते क्यों नहीं?

हीरा ने कहा—चलें तो ; लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आयेगी। सब इसी पर संदेह करेंगे। सहसा बालिका चिलाई—दोनीं फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं! श्रो दादा! दोनों बैल भागे जा रहे हैं! जल्दी दीड़ी!

गया इड़बड़ाकर भीतर में निकला, और बैलों को पकड़ने चला वह दोनों भागे। गया ने पीका किया। वह और भी तेज़ हुए। गया ने गोर मचाया। फिर गांव के कुछ आदमियों को साथ लेने के लिए लीटा। दोनों मिल्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गये। यहां तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आये थे, उसका यहां पता न था। नये-नये गांव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा—मालम होता है, राह भूल गय। 'तुम भी तो वेतहाणा भाग। वहीं उसे मार गिराना था।'

" 'उसे सार गिराते, तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म कोड़ दे; लेकिन हम अपना धर्म क्यों कोड़ें।'

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी। चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं है।

जब पेट भर गया, और दोनों ने आज़ादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उक्रलने-कूदने लगे।



पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाये, श्रीर एक दूसरे को ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहां तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध श्राया। संभलकर उठा श्रीर फिर मोती से भिड़ गया। मोती ने देखा— खेल में भगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गया।

(8)

अरे! यह क्या! कोई सांड़ डींकता चला आ रहा है। हां, सांड़ ही है। वह सामने आ पहुंचा। दोनीं मित्र बग़लें भांक रहे हैं। सांड़ पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है; लेकिन न भिड़ने पर भी तो जान बचती नहीं नज़र आती। दन्हीं की तरफ़ आ भी रहा है। कितनी भयंकर स्रत है?

मोती ने मूक भाषा में कहा—बुरे फंसे। जान कैसे बचेगी। कोई उपाय सोचो।

हीरा ने चिंतित स्वर में कहा—अपने घमंड में भूला हुआ है। आरजू-बिनती न सुनेगा।

'भाग क्यों न चलें।'

'भागना कायरता है।'

" 'तो फिर यहीं मरो। बंदा तो नी-दो ग्यारह होता है।'



'श्रीर जो दीड़ाये ?' 'तो फिर कोई उपाय सोचो जल्ह!'

'उपाय यही है, कि उस पर दोनों जनें एक साथ चोट करें। मैं आगे से रगेदता हूं, तुम पीछे से रगेदो, दोहरी मार पड़ेगी, तो भाग खड़ा होगा। ज्यों ही मेरी और भपटे तुम बग़ल से उसके पेट में सींग बुसेड़ देना। जान जोखिस है; पर दूसरा उपाय नहीं है।'

दोनों मित्र जान इथेलियों पर लेकर लपके। सांड को कभी संगठित शतुत्रीं से लड़ने का तजरबान था। वह तो एक शत्रु से मझयुद करने का आदी था। ज्यों ही हीरा पर भपटा, मोती ने पीके से दीड़ाया। सांड़ उसकी तरफ़ सुड़ा, तो हीरा ने रगेदा। सांड़ चाहता या कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले; पर यह दोनों भी उस्ताद थे। उसे यह अवसर न देते थे। एक बार सांड़ भज़ाकर हीरा का अन्त कर देने के लिए चला, कि मोती ने बगल से आकर उसके पेट में सींग भोंक दी। सांड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया। ग्राखिर वेचारा जखमी हो कर भागा, और दोनों मिलों ने दूर तक उसका पीछा किया। यहां तक कि सांड़ वेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे कोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में भमते चले जाते थे।



HINDI SELECTIONS

मोती न अपनी सांकितिक भाषा में कहा—मेरा जी तो चाहता था, कि बचा को मार ही डालूं।

हीरा ने तिरस्कार क़िया—गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिए।

'यह सब ढोंग है। बैर को ऐसा मारना चाहिए, कि फिर न उठे।'

'श्रव घर कैसे पहुंचेंगे, यह सोचो।' 'पहले कुछ खा लें, तो सोचें।'

सामने मटर का खित था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा; पर उसने एक न सनी। अभी दो ही चार ग्रास खाये थे कि दो आदमी लाठियां लिये दीड़ पड़े, और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा तो मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खित में था। उसके खुर कीचड़ में धंसने लगे। न भाग सका। पकड़ लिया गया। हीरा ने देखा, संगी संकट में है, तो लीट पड़ा। फंसेंगे तो दोनों साथ फंसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रातःकाल दोनों मित्र कांजीहीस में बन्द कर दिये गये।

(4)

दोनों मिल्रों को जीवन में पहली बार ऐसा साबका यड़ा, कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समभ ही में न याता था. यह कैसा खामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। वहां कई भैंसे थीं, कई बकरियां, कई घोड़े, कई गर्ध; पर किसी के सामने चारा न था। सब ज़मीन पर स्रदों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमजोर हो गर्य थे, कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ग्रोर टकटकी लगाये ताकते रहे; पर कोई चारा लेकर श्वाता न दिखाई दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी ग्रुक् की; पर इससे क्या त्यित होती।

रात को भी जब कुछ भोजन न मिला, तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला—ग्रव तो नहीं रहा जाता मोती!

मोती ने सिर लटकाये हुए जवाब दिया—मुर्भ तो मालूम होता है, प्राण निकल रहे हैं।

'दतनी जल्द हिमात न हारो भाई! यहां से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।'

'श्राश्रो, दीवार तोड़ डाले'।' 'सुभासे तो अब कुछ न होगा।' 'बस, इसी बूते पर अकड़ते थे।' 'सारी अकड़ निकल गई।'



बाड़े की दीवार कची थी। हीरा मज़बूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिये और ज़ोर मारा, तो मिट्टी का एक चिप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। उसने दीड़-दीड़कर दीवार पर चोटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय कांजी हीस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरों की हाजिरी लेने या निकला। हीरा का यह उजडडपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीट किये और मोटी-सी रसी से बांध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा ग्राखिर मार खाई, क्या मिला?

'अपने बूते-भर ज़ोर तो मार लिया।'

'ऐसा ज़ोर मारना किस काम का कि श्रीर बंधन में पड़ गये।'

'ज़ोर तो मारता ही जाऊ'गा, चाहे कितने ही बंधन बढ़ते जायं।'

'जाने से हाथ धीना पड़ेगा।'

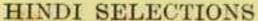
'कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती, तो कितनी जानें बच जातीं। इतने भाई यहां बन्द हैं। किसी की देह में जान नहीं है। दो-चार दिन श्रीर यही हाल रहा, तो सब मर जायंगे।' 'हां, यह बात तो है। अच्छा तो लो, फिर मैं भी ज़ोर लगाता हूं।'

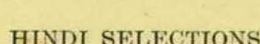
मोती ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और हिमात बढ़ी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह ज़ोर करने लगा, मानो किसी इन्ही से लड़ रहा है। आखिर कोई दो घंटे की जोर-आज़माई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गई। उसने दूनी शक्ति से दूसरा धका मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था, कि अधमरे से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियां सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियां निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गई; पर गधे अभी तक ज्यों के त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा — तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते? एक गर्ध ने कहा — जो कहीं फिर पकड़ लिये जायं! 'तो क्या हरज है। ग्रभी तो भागने का अवसर है।'

'हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।' आधी रात से जपर जा चुकी थी। दोनों गर्ध अभी तक खड़े सोच रहे थे, भागें या न भागें। और मोती अपने मित्र की रस्मी तोड़ने में लगा हुआ था। जब वह हार गया तो, हीरा ने कहा—तुम





जाओ, सुभी यहीं पड़ा रहने दो। शायद कभी भेंट हो जाय।

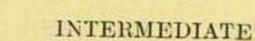
मोती ने आंखों में आंस् लाकर कहा-तुम मुर्भ इतना खार्थी समभते हो हीरा! इस और तुम इतन दिनों एक साथ रहे। आज तुम विपत्ति में पड़ गये, तो में तुम्हें क्रोड़कर अलग हो जाऊं।

होरा ने कहा-बहुत मार पड़ेगी। लोग समभ जायंगे, यह तुम्हारी शरारत है।

मोती गर्व से बोला - जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बंधन पड़ा, उसके लिए अगर मुभ पर मार पड़े, तो क्या चिंता। इतना तो हो ही गया कि नी-दस प्राणियों की जान बच गई। वह सब तो आशीर्वाट देंगे।

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधीं को सींगीं से मार-मार कर बाड़े के बाहर निकाला और तब अपने बन्ध के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मंश्री श्रीर चीकीदार श्रीर श्रन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसके लिखने की जरूरत नहीं। बस इतना ही काफी है कि मोती की खूब सरमात हुई और उसे भी मोटी रस्ती से बांध दिया गया।



(€)

एक सप्ताइ तक दोनों मित्र वहां बंधे पड़े रहे। किसी ने चारे का एक त्रण भी न डाला। हां, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गये थे, कि उठा तक न जाता था। ठठरियां निकल आई थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहां पचास-साठ आदमी जमा हो गये। तब दोनों मित्र निकाले गये और उनकी देख-भाल होने लगी। लोग या-याकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जातें। ऐसे सृतक बैलीं का कौन खरीदार होता।

सइसा एक दढ़ियल आदमी जिसकी आंखें लाल थीं, और मुद्रा अत्यन्त कठोर, आया और दोनों मिलीं के कूल्हों में उंगली गोदकर मुंशीजी से बातें करन लगा। उसका चेहरा देखकर अन्तरज्ञान से दोनों मिलों के दिल कांप उठे। वह कीन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न हुआ। दोनों ने एक दूसरे को भीत नेत्रों से देखा, श्रीर सिर भुका लिया।

हीरा ने कहा-गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।



मोती ने अयादा के भाव से उत्तर दिया—कहते हैं, भगवान् सबके जपर दया करते हैं। उन्हें हमार जपर क्यों दया नहीं आती ?

'भगवान् के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो अच्छा ही है, कुछ दिन उनके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचायेंगे।'

'यह आदमी कुरी चलायेगा। देख लेना।'

'तो क्या चिंता है। मांस, खाल, सींग, इड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जायंगी।'

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दिख्यल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी कांप रही थी। बचारे पांव तक न उठा सकते थे; पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे; क्योंकि वह ज़रा भी चाल धीमी हो जाने पर ज़ोर से डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक खेड़ हरे-हरे हार में चरता नज़र आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चपल। कोई उक्रलता था, कोई आनन्द से बैठा पागुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका; पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं, कि उनके दो भाई विधिक के हाथ पड़े कैसे दुखी है। सहसा दोनों को ऐसा मालम हुआ, कि यह परिचित राह है। हां, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गांव मिलन लगे। प्रतिचण उनकी चाल तेज़ होने लगी। सारी थकन, सारी दुर्बलता गायब हो गई। अहा! यह लो! अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे। हां, यही कुआं है।

मोती ने कहा—हमारा घर नगीच आ गया। हीरा बोला—भगवान की दया है। 'मैं तो अब घर भागता हं।' 'यह जाने देगा?'

'इसे मैं मार गिराता हं।'

'नहीं-नहीं, दीड़कर यान पर चलो। वहां से हम आगी न जायंगी।'

दोनों उन्मत्त होकर बकड़ों की भांति कुलेलें करते हुए घर की श्रोर दीड़े। वह हमारा थान है। दोनों दीड़कर अपने थान पर श्राये श्रीर खड़े हो गये। दिख्यल भी पीछे-पीछे दीड़ा चला श्राता था।

भूरी दार पर बैठा धप खा रहा था। बैलों को देखते ही दीड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मिलों की आंखों से आनन्द के आंस् बहने लगे। एक भरी का हाथ चाट रहा था।



दिद्यल ने जाकर बैलों की रिस्सियां पकड़ लीं। भूरी ने कहा—मेरे बैल हैं।

'तुम्हारे बैल कैसे? मैं मवेशीख़ाने से नीलाम में लिये आता हं।'

'मैं तो समभता इं, चुराये लिये आते हो। चुपके से चले जाओ। मेरे बैल हैं। मैं बेचूंगा, तो बिकेंगे। किसी को मेरे बैल नीलाम करने का क्या अख्तियार है?'

'जाकर थाने में रपट कर टूंगा।'

'मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है, कि मेरे दार पर खड़े हैं।'

दिव्यल भक्ताकर बैलों को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दिव्यल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दिव्यल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गांव के बाहर निकल जाने पर वह कका; पर खड़ा दिव्यल का रास्ता देख रहा था। दिव्यल दूर खड़ा धमकियां दे रहा था, गालियां निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था। श्रीर मोती विजयी शूर की भांति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गांव के लोग यह तमाशा देखते थे, श्रीर हंसते थे।

जब दिव्यस हार कर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

13-1421 B.T.

INTERMEDIATE

हीरा ने कहा—मैं डर रहा या कि कहीं तुम गुक्सों में आकर सार न बैठो।

'अगर वह मुक्ते पकड़ता, तो मैं वे मारे न छोड़ता।' 'अब न आयेगा।'

'आयेगा तो दूर ही से खबर लूंगा। देखूं कैसे ले जाता है।'

'जो गोली मरवा दे ?'

'मर जाऊंगा; पर उसके काम तो न आऊंगा।' 'हमारी जान को कोई जान ही नहीं समभता।' 'इसीलिए कि हम इतने सीधे होते हैं।'

- ज़रा देर में नांदों में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया श्रीर दोनों मित्र खाने लगे। भूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था श्रीर बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गांव में उक्काइ-सा मालूम होता था।

उसी समय मालिकन ने आकर दोनों के माथे चूम लिये।



प्रेम-तक

(8)

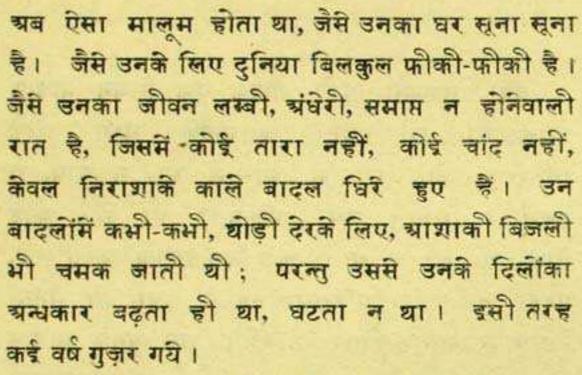
डेढ़ सी साल बीत चुके हैं, परन्तु देवी सुलक्वीका नाम याज भी उसी तरह जीता-जागता है। गुरदास-पुरके ज़िलेमें कड़याला नामका एक क्रोटासा गांव है, जहां ज़रादा आबादी हिन्दू जाटोंकी है। वहां आप किसीसे पूछिये, वह आपको देवी सुलक्खीकी समाधिका पता बता देगा। यहां प्रतिवर्ध मेला लगता है; चियां रंग-बिरंगे वस्त्र पहनकर आती हैं, और इसपर घीके दिए जलाती हैं। जब वेर पकते हैं, तो सबसे पहली वर देवी सुलक्वीकी समाधिपर चढ़ाये जाते हैं, इसके बाद लोग खाते हैं। क्या मजाल कि इस समाधिपर वर चढ़ाये बिना कोई वेरको मुंह भी लगा जाय। दीवालीकी रातको लोग पहले यहां दिए जलाते हैं; इसके बाद अपने घरमें जलाते हैं। किसीमें इतना साइस नहीं कि देवो सुलक्बीकी समाधिपर रोशनी किये बिना अपने घरमें रोशनी कर ले। व्याइके बाद दुलिइनें पहले यहां आकर अपनी यहा प्रकट करती हैं, इसके बाद अपनी ससुरालमें पांव धरती हैं। किसीमें हिमात नहीं कि गांवकी इस रौतिको



HINDI SELECTIONS

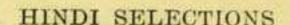
(2)

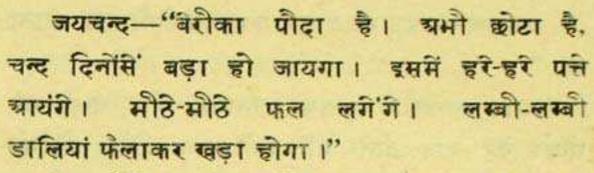
देवी सुलक्वी इसी गांवके एक निर्धन ब्राह्मण जयचन्दकी बी थी। जयचन्दके घरमें बीके अतिरिक्त कोई भी न था-न मा, न बाप, न बहन, न भाई। बस, पति-पत्नी ही थे; कोई बाल-बचा भी न था। कुछ दिन इलाज करते रहे, परन्तु जब सारा परिश्रम निष्फल हुआ, तो भाग्य-विधानपर सन्तुष्ट होकर बैठ रहे। उस युगके ब्राह्मण लोग प्रायः नौकरी द्रत्यादि न करते थे; न धन-दौलतमें उस समय ऐसी मोहनी थी, न लोग धनको दुर्लभ समभक्तर उसकी प्राप्तिके लिए अधीर रहते थे। योडे ही में गुज़ारा हो जाता था। एक कमाता था, दस खा लेते थे। याज वह ज़माना कहां? दस कमानेवाले हों, एक वेकारको नहीं खिला सकते। उस समयके ब्राह्मण सार-सारे दिन पूजा-पाठमें लगे रहते थे। खाने-पीनेको जाट जजमानोंके यहांसे या जाता था। दोनोंको किसी प्रकारकी चिन्ता न थी। हां, कभी-कभी नि:सन्तान होनेपर कुढ़ा करते थे। यदि एक भी बचा हो जाता, तो दोनोंका मन बहल जाता। उनका जीवन मधुर, प्रकाशमय तथा विनोद-पूर्ण हो जाता। उनको कोई ग्रुगल मिल जाता।



एक दिन जयचन्दने अपने आंगनके कोनेमें नवजात बच्चेके समान वेरीका एक पीदा देखा, जो ख्यं ही उग आया था। पीदा बहुत छोटा था, और आम पीदोंसे जरा भी भिन्न न था, किन्तु जयचन्दको ऐसा प्रतीत हुआ, मानो यह पीदा न था, प्रक्षतिका अद्भुत सीन्दर्य था। वे उसके छोटे-छोटे रग-रेशे और चिकनी-चिकनी ज़रा-ज़रासी कोपले देखकर वेसुध-से हो गये। शान्तिके पुतलेपर अशान्ति छा गई। दीड़े-दीड़े सुलक्ष्वीके पास गये, और बोले—"आओ, जुछ दिखाऊ'। भगवानने हमारे घर बूटा लगाया है, बड़ा सुन्दर है।"

सुलक्वीने जाकर देखा, तो एक नन्हा-सा पीदा था। बोली—"क्या है यह ? ऐसे प्रसन्न क्यां हो रहे हो ?"





सुलक्वीने पुलक्तित होकर कहा — "सारे आंगनमें काया हो जायगी।"

जयचन्द—"हर साल वेर लगे'गे। खूब मीठे होंगे।"

सुलक्वी—"मैं इसे सदा जलसे सींचा करूंगी। योड़े ही दिनींमें बड़ा हो जायगा। कब तक फलेगा?"

जयचन्द — (पीदेको प्रेम-भरी दृष्टिस देखकर) — "चार वर्ष बाद। तुमने देखा, कैसा प्यारा लगता है। बड़ा होकर और भी प्यारा लगेगा। कैसा चिकना है, कैसा सुन्दर है! देखकर तबीयत हरी हो जाती है!"

सुलक्वी—(सरलतास)—गरमीके दिन हैं, कुम्हला जायगा। सुभी तो अब भी घबराया हुआ माल्म होता है। ज़रा कोपलें तो देखों, जैसे प्यासके मारे व्याकुल हो रही हों। किह्ये, ताज़ा जल भर लाजं? गरमीसे बड़ों-बड़ोंका बुरा हाल हैं। यह तो विलकुल नही-सी जान है! (चुटकी बजाकर) अभी भर लाजंगी, दो मिनटमें!" जयचन्द—"इस समय तुम कहां जाश्रोगी, मैं जाता हं।"

मगर सुलक्वीने कलसा उठाया, श्रीर चली गई थोड़ी देर बाद दोनों पित पत्नी उस कोटिस पीदेको पानीस सींच रहे थे। ऐसे प्यारसे, जैसे उनका जीता-जागता बचा हो; ऐसी भिक्तिसे, जैसे उनका देवता हो; ऐसी श्रद्धासे, जैसे कोई श्रमोल वस्तु हो। पीदा सचमुच धूपसे जुम्हलाया हुश्रा था। ठंडा पानी पीकर उसने श्रांखें खोल दीं। सुलक्वी बोली—"देख लो! श्रव इसमें ताज़गी श्रा गई है, या नहीं? क्यों?"

जयचन्द—"सुक्षे तो ऐसा मालूम होता है, जैसे यह मुस्करा रहा है।"

सुलक्वी—"श्रीर सुभी ऐसा मालूम होता हैं, जैसे यह बातें कर रहा है। कहता है—मैं तुम्हारा वेटा हं।"

जयचन्द — "भाई, यह बात तो तुमने मेरे मंहसे छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। हां, बेटा तो है ही। इसे खूब प्यार करोगी न ?"

सुलक्वी—"तुम्हारे कचनिकी क्या आवश्यकता है ? अपने वेटेसे कीन प्यार नहीं करता ?"

जयचन्द—''मैं डरता हं, कहीं मुक्ते न भूल जाओ। बड़ी आयुमें बालक पाकर खियां पतिको उपेचाकी



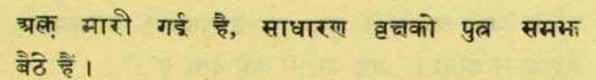
दृष्टिसे देखने लगती हैं, मगर मुभसे तुम्हारी लापरवाही वदाम्त न होगी। यह अभीसे कहे देता हैं।"

सुलक्वी—"चलो हटो! तुम्हें तो ग्रभीसे डाह होने लगी।"

जयचन्द इंसते-इंसते घरके भीतर चले गये, परन्तु सलक्वी कई घंटे वहीं धूपमें खड़ी बेरीकी ग्रोर देखती रही ग्रीर खुग्न होती रही। ग्राज भगवानने उसके घर बूटा लगा दिया था। ग्राज उसको ऐसा ग्रनुभव हुग्रा, जैसे वह बांभ नहीं रही—पुत्रवती हो गई है। ग्रबोध बालक छाछको दूध समभकर खग्न हो रहा था।

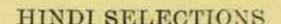
()

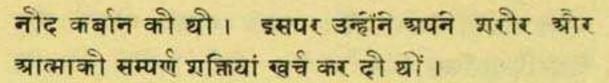
यब जयचन्द श्रीर सुलक्वी दोनोंको एक काम मिल गया। कभी बरीको पानी देते कि कुम्हला न जाय; कभी खुरपी लेकर उसके श्रासपासकी ज़मीन खोदते कि उसे श्रपनी खूराक प्राप्त करनेमें दिक्कृत न हो; कभी उसके गिरदा-गिर्द बाड़ लगाते कि कोई जीव-जन्तु हानि न पहुंचाय; कभी दो चारपाईयां खड़ी करके उसपर चादर फला देते कि गरमीमें सूख न जाय। लोग यह देखते थे, श्रीर उनकी इस मूर्छता (१) पर हंसते थे। कोई-कोई कह भी देता था कि इनकी



मगर प्रेमके इन सरल-हृदय भक्तोंको इसकी ज़रा भी परवा न थी। उन्हें उस बेरीकी कोपलें बढ़ती देखकर वैसी ही प्रसन्नता होती थी, जैसी माता-पिताको बन्नेके हाथ-पांव बढ़ते देखकर होती है। जयचन्द बाहरसे आते, तो सबसे पहले बेरीकी कुशल-चेम पूछते। सलक्वी रातको कई-कई बार चौंककर उठती, और बेरीको देखने जाती—शायद उसे भय था कि कोई इस अनमोल बस्तुको उखाड़कर न ले जाय। ऐसे प्रेम, ऐसी सावधानीसे किसी गरीव विधवाने अपने एकमाव पुत्रका भी लालन-पालन शायद ही किया हो।

धीर धीर यह प्रेम-तर बढ़ने लगा। अब वह जमीनसे बहुत जपर उठ गया था। उसका तना भी मोटा हो गया था। डालें भी बड़ी-बड़ी हो गई थी। रातके समय ऐसा सन्देह होता था, जैसे वह बाहें फैनाकर किसीसे गले मिलनेको अधीर हो रहा है। सुलक्वी उसे अपनी बेटी और जयचन्द उसे अपना बेटा कहते थे। उसे देखकर उनकी आंखें चमकने लगती थीं। उनका हृदय-कमल खिल उठता था। यह हच साधारण हच न था; उनके रात-दिनके परिश्रमका परिणाम था। इसके लिए उन्होंने अपनी रातोंकी





इसी तरह प्रेम-मुख्बत और लाड़-प्यारके चार वर्ष गुज़र गये, और बेरीके फलनेके दिन नज़दीक आ गर्य। जयचन्द श्रीर सुलक्वी दोनोंके पांव ज़मीनपर न पड़ते थे। उनकी खुशीका ठिकाना न था। जब जब बीर श्राया, तो दोनों सारा-सारा दिन श्रांगनमें बैठे उसकी रचा किया करते थे। क्या मजाल, जो कोई पास भी फटक जाय!! जयचन्द अब पहलेकी तरह पूजा-पाठके पाबन्द न रहे थे। सुलक्लीको अब चरखेका ख़याल न था। साधारण वृत्तके प्रेमने उन्हें दूस प्रकार बांध लिया या कि ज़रा हिलते भी न थे। हर समय इसीकी बात करते थे। उस वक्त वह दूस संसार से बाहर चले जाते थे। सुलक्वी कहती— "तुम्हारे खुयालमें यह पीले रंगका बीर होगा, मगर मुक्ते तो ऐसा मालूम होता है कि मेरी बेटीने सोनेके भूषण पहने हैं। किस शानसे खड़ी है, देखकर मन नाचन लगता है।"

जयचन्द कहते—'यह मेरे बेटेकी पहली कमाई है। इसे बीर कीन कहता है? यह तो मोहरें हैं, बल्कि सुक्षि तो इसके सामने मोहरें भी तुच्छ मालूम होती हैं। उन्हें मनुष्य बनाता है। इसे ख्यं भगवान

INTERMEDIATE

अपने हाथोंसे संवारता है। इसके सामने मोहरें और अगरिएयां किस गिनतीमें हैं? थोड़े दिनोंमें यह वेर बन जायंगे। उनमें जो सुन्दरता, जो यौवन, जो मिठास होगी, वह सोनके उन सिकोंमें कहां?"

सुलक्वी कहती—"जिस दिन पहले वेर उतरंग, उस दिन मिठाई बांटूंगी।"

जयचन्द कहते—''मैं रतजगा करूंगा गांवके सारे लोगोंको बुलाऊंगा। सारी रात रीनक रहेगी।"

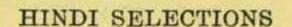
सुलक्वी कहती—"खूब ख़र्च करना पड़ेगा।"

जयचन्द कहते—''लोग बेटोंके ब्याह-शादीमें लुटाते हैं। मेरे लिए यही बेटेका ब्याह है। सब कुछ ख़र्च हो जाय, जब भी परवा नहीं; परन्तु एक बार दिलके अरमान निकल जायं। कोई अभिलाषा शेष न रह जाय।"

यह सुनकर सुलक्वी किसी दूसरी दुनियामें पहुंच जाती थी। उसके हृदयरूपी समुद्रमें खुशीकी तरंगें उठने लगती थों। जैसे चांदनी रातमें समुद्रमें ज्वार-भाटा श्रा जाय।

(8)

आख़िर वह दिन भी आ गया, जिसकी पति-पत्नी दोनीं प्रतीचा कर रहे थे। पहले दिन वेरीके दो सी



वेर उतरे। यह वेर इतने मीठे, ऐसे गोल-गोल, ऐसे लाल, इतने सुन्दर श्रीर चिकने थे कि देखकर जी खुश हो जाता था। दोपहरका समय था। सुलक्वीने पुराने ज़मानेकी हिन्दू खियोंकी तरह नये कपड़े पहने। लाल रंगकी पुलवार श्रोढ़ी। नाकमें नथ पहनी, श्रीर जाकर जयचन्दके सामने खड़ी हो गई। जैसे उस दिन उसके यहां कोई ब्याह-शादी थी। उसको इन वखोंमें देखकर जयचन्द सुग्ध-सा हो गया। थोड़ी देर तक दोनोंके मुंहसे कोई बात न निकली। श्रांखें मूंदकर चुपचाप इस श्रलीकिक श्रानन्दसे श्रानन्दित होते रहे। तब जयचन्दने वर टोकरीमें रखे श्रीर सुलक्वीसे कहा—'जा! जाकर जजमानोंके यहां गिनकर बीस-बीस दे श्रा।"

सुलक्वीन साइसपूर्ण नेत्रींसे पतिको देखा, और प्यार-भरी आवाज़में कहा—"ईखर करे, खब मीठे हों। लोग वे-अखत्यार वाह-वाह कहें। आकर बधाइयां दें। कहें ऐसे बेर सारे गांवमें नहीं हैं।"

जयचन्दने दस वेर अपने लिए रख लिये थे। उनकी ओर ताकते हुए बोले—"तू खामखाह मरी जाती है। दूसरोंके लिए मीठे न होंगे, न सही, पर हमारे लिए इनसे मीठी वस्तु संसारमें और कोई नहीं है। यह मैं चखे बिना कह सकता—हं। आ। देर



हुई जाती है। तूबांटकर आ जाय, तो एक साथ खायं।"

सुलक्वीन पतिकी और प्यारसे देखकर उत्तर दिया
— "में एक-आध घरमें दे लूं, तो तुम खा लेना। मेरो
राह देखनेकी क्या आवश्यकता है ?"

जयचन्द—"वाह! आवश्यकता क्यों नहीं? एक साथ खायंगे। अकेलेमें क्या मज़ा आयगा। ज़रा जल्दी लीट आना। नहीं लड़ाई होगी।"

सुलक्वीने छोटासा घृंघट निकाला, श्रीर बेरोंकी टोकरी उठाकर बांटने चली जैसे कोई ब्याइ-शादीकी मिठाई बांटने जा रही हो। थोड़ी देरमें एक जजमान दीड़ता हुआ श्राया, श्रीर बोला—"पंडितजी! बधाई है रवे। खब मीठे निकले।"

जयचन्दका दिल धड़कने लगा। मुंह गुलाब हो गया। बोले—"घच्छा, आपने खाये हैं ?"

जजमान—"खाये क्या हैं! वेर चखा है। मगर वाह भई, वाह! गुड़से भी मीठा है। आमसे भी मीठा है। कोई और वेर है, या नहीं?"

जयचन्दकी बाक्टें खिली जाती थों। उन्होंने दो वर उठाकर जजमानके हाथमें दे दिये। जजमान खाता जाता था, और तारीफ़ करता जाता था। कहता था—''पंडितजी, यह वर क्या हैं, खांड़के खिलीने हैं।



मरी इतनी आयु हो गई, मगर ऐसे वर मैंने आज तक नहीं खाये। परमात्मा जाने, इनमें कैसा खाद है, मालूम होता है, जैसे कोई खशबू भरी है; जैसे किसीने इत्तर भर दिया है।"

जयचन्द—"परमात्माने हमारी मेहनत सफल कर दी।"

जजमान—"सारे इलाक़े में ऐसे बेर मिल जायं, तो मूं छैं मुड़वा दूं। दूर-नज़दीकसे लोग आया करेंगे। मालूम होता है, आपने अभी तक नहीं चखे।"

जयचन्द—"जजमानींको भेंट कर लूं, फिर खाऊंगा।"

जजमान—"हैरान रह जाश्रोगे। ऐसे वेर कावुल, कन्धारमें भी न होंगे। हमारे घरमें दस-बीस वेरोंसे क्या बनता है ? देखते-देखते खतम हो गये। श्रीर वेर कब तक उतरेंगे ? हम बीस श्रीर लेंगे।"

जयचन्द-- 'आपका अपना वृत्त है। दो-चार दिन तक और अतरेंगे, तो भिजवा दूंगा। मुक्के दूसरोंको खिलाकर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह खाकर नहीं होती। लीजिए, दो और ले जाइये। है बाकी हैं। इस दोनों तीन-तीन खायंगे। हमें यही बहुत हैं।"

थोड़ी देर बाद एक और जजमान आया। उसने भी इतनी तारीफ़ की कि जयचन्दकी आंखें चमकने लगीं। बोला—"यह प्रेमका वृत्त है, इसमें प्रेमके बेर लगे हैं। इससे मीठे संसार-भरमें न होंगे। भाई, इतनी मेहनत कीन करता है? आप दोनोंने एक मिसाल कायम कर दी। दो बेर खाये हैं, दो और मिल जायं, तो मज़ा आ जाय। फ़ालतू हैं, या नहीं?"

जयचन्दने मुस्कराकर कहा—''है बचे हैं। दो आप ले जाइये। दो-दो हम खा लेंगे।"

जजमान—"यह तो अन्याय होगा। रहने दीजिए। फिर सही और बेर कब तक उत्तरेंगे?"

जयचन्द—"श्राप ले जाइये। इमें खाद देखना है। पेट थोड़े भरना है! (बेर हाथपर रखते हुए) रात रतजगा है। श्राइयेगा ना ? कोई बेटेका ब्याह करता है। कोई "पोती-पोतिका मूंडन करता है। मेरी श्रायुमें यही एक दिन श्राया है! यही श्रन्तिम होगा। श्रीर क्या ?"

जजमान—"ज़रूर याजंगा, पंडितजी! मगर वेर खूब मीठे हैं यभी तक मुंहसे सुगन्ध या रही है।

यह कहकर जजमान चला गया। इतनेमें दो श्रीर श्रा गये। पंडितजीके पास चार वेर बाक़ी थे। वह उनकी भेंट हो गये। श्रव उनके पास एक भी वेर न था। पंडितजी दिलमें डरे सुलक्वीसे क्या कहंगा।



कहीं ख़फ़ा न हो जाय। तैश्में न आ जाय। परन्तु सुलक्वी इस प्रकारकी स्त्री न थी। सारा माजरा सुनकर बोली—"आपने बहुत अच्छा किया। हमारा क्या है? फिर खा लेंगे। अपनी बेरी है, जब चाहा, दो बेर तोड़ लिये। कहीं मांगने थोड़े जाना है? श्रीर क्या?"

जयचन्द—"गांवमें धूम मच गई है। कहते हैं— ऐसे वेर दूर-दूर तक नहीं हैं।"

सुलक्वीकी आंखों में आंसू आ गये। नथको संभालते इए बोली—"सभी कहते हैं—और दो। वेर क्या हैं, खोयके पेड़े हैं।

जयचन्द—"कहते हैं, इनमें सुगन्ध भी है।"

सुलक्वी—"जो खाता है, चटख़ारे सेता है। कहते हैं —ऐसा मज़ा न ग्राममें है, न संगतरेमें।"

जयचन्द—"यह सब तुम्हारे परिश्रमका फल है। रोज़ पानी दिया करती थीं। तुम्हारे हाथोंका पानी असत हो गया।"

सुलक्वी—''श्रीर जो तुम कपड़ोंसे इहाया करते फिरते थे, उसका कोई श्रमर ही नहीं? यह सब उसका नतीजा है।"

जयचन्द—"तुम देरमें लीटीं। नहीं तो एक-एक खालेते। अब दो-चार दिनके बाद पकेंगे।"



(4)

परन्तु जयचन्दके भाग्यमें बेर पकाना लिखा या, वेर खाना न लिखा या। रतजगेने बाद उनको सइसा बुखार हो गया। गांवमें जैसा दलाज हो सकता था, हुआ। हकीमने समभा, थकावटका बुखार है। साधारण श्रीषधियोंसे उतर जायगा; परन्तु यह यकावटका बुखार न या, मृत्युका बुखार या। जिसकी दवा दुनियाके बड़े-से-बड़े हकीमके पास भी नहीं। चौथे दिन प्रातः ही जयचन्द सुलक्वीसे घंटे-भर धीरे-धीरे बातें करते रहे। बातें क्या करते रहे, रोते श्रीर रुलाते रहे! दुनियादारीकी बातें समभाते रहें। ये बातें छनके जीवनका सार थीं। मुलक्वी ये बातें मुनती थी, और रोती जाती थी। इस समय उसका दिल बसमें न था। वह चाहती थी, जिस तरह भी हो, पतिको बचा ले। यदि उसके बसमें होता, तो वह अपनी जान देकर भी उन्हें बचा लेती। इसमें उसे ज़रा भी संकोच न था. परन्तु जो भाग्यमें बदा हो, उसे कौन रोक सकता है ? थोड़ी देर बाद इधर संसारका सूर्य उदय हो रहा था, उधर जयचन्दके जीवन श्रीर सुलक्बीकी दुनियाका सूर्य हमेशाके लिए श्रस्त हो गया।



अब सुलक्वी संसारमं बिलकुल अकेली थी। अब उसका सिवा एक छोटे भाईके और कोई भी न था। योड़े दिन रोती रही। इसके बाद चुप हो गई, इसलिए नहीं कि सत्युका शोक भूल गई, बल्कि इसलिए कि उसकी यांखों में यांसून रहे थे। रो-रोकर श्रांस् भी समाप्त हो जाते हैं, मगर उसके दिलके वाव इमेशा इरे थे। उसे किसी पहलू कल न पड़ती थी। पतिको सत्युके बाद किसीने उसे इंसेते नहीं देखा। न ग्रच्छा खाती थी, न ग्रच्छा पहनती थी। उसका ज्यादा समय दुःखी लोगोंकी सेवामें गुज़रता था। गांवमें कोई बीमार होता, सुलक्खी पहुंच जाती। फिर उसे सोना हराम था। सरहानेसे न उठती थी। चर समय सेवामें लगी रहतो थी। जैसे मा बचेकी तीमारदारी कर रही हो। जब वह खस्थ हो जाता, तब घर लीटती। उसकी इन सेवाग्रीने गांववालींके मन मोह लिये। ये कहते ये—यह ची नहीं, देवी ्है। अब उन्हें मालूम होता था कि यदि यह न हो, तो गांववा लोपर विपत्ति टूट पड़े। उसे दुनियाकी किसी वस्तुसे प्रेम न था-किसी वस्तुकी परवान थी। जैसे उसने संन्यास ले लिया हो, जैसे उसने दुनियाकी हरएक वस्तुका परित्याग कर दिया हो।

परन्तु एक वस्तु उसे अब भी प्यारी थी। वह



उसकी वेरी थी। वह अब भी उसका उसी तरह ख्याल रखती थी। उसको उसी तरह पानी देती थी। उसी तरह देख-भाल करती थी। गरमीमें उसके पत्तोंको कुम्हलाया हुआ देखकर अब भी उसी तरह अधीर हो जाती थी। रातको चौंक-चौंककर अब भी उसे देखती थी। बाहर जाती, तो भाई लक्क्मनसे कह जाती, बेरीका ख्याल रखना। जब बेर लगते, तो दो-तीन महीने उसके पाससे न उठती; कहीं ऐसा न हो, जानवर आकर कुतर जायं। जब वेर उतरते, तो सारे गांवमें बांटती, जिस तरह पहले साल बांटे थे, मगर आप वेरोंको संइ न लगाती थी। न पहले साल खाय घे, न अब खाती थी। उसका भाई लक्षमन खब पेट भरकर खाता था। वह कहता था, यह वेर इस दुनियाके नहीं, स्वर्गपुरीके हैं। कभी कहता, ऐसे बेर स्वर्गमें भी न होंगे। बहनसे कहता, तू भी चखकर देख। वह कहती—"वह खाते, तो मैं भी खाती। उन्होने नहीं खाये, मैं भी नहीं खाऊंगी।"

लक्मन कहता—"तू अभागी है।"

सुलक्खी उत्तर देती—"अभागी न होती, तो वह क्यों मरते? अब तो सारी आयु इसी प्रकार गुज़र जायगी।"

गुरदासपुरके कई दूकानदारीने वेरी मोल लेनी



चाही, पर सुलक्वीने साफ़ इनकार कर दिया। कहा — "मरती मर जाऊंगी, मगर वेरी न दूंगी।"

एक दूकानदारने कहा—"दो सी क्षया ले ले, वेरी देदे।"

सुलक्वीने उत्तर दिया—"तू दो हज़ार दे, जब भीन वेचूं। दो लाख दे, जब भीन वेचूं।"

टूकानदार—"तू अजब स्ती है। न खाती है। न बचती है।"

सुलक्वी—''बांटती तो हं। मेरे लिए यही खुशीकी बात है। मैं नहीं खाती, तो क्या हुआ, सारा गांव तो खाता है।"

दूकानदार—"परन्तु इससे तुभी क्या मिल जाता है। जिसको वेर खानेकी इच्छा होगी, पैसे देकर ख़रीद लेगा।"

सुलक्तीने दूकानदारकी श्रोर करूणापूर्ण दृष्टिसे देखा, श्रीर कहा—"मैं ब्राह्मणी हं, कुंजड़िन नहीं, जो श्रपनी वेरीके वेर वेचूं। न भाई! यह न होगा। तू श्रपने रूपये ले जा, मुक्ते यह सीदा मंजूर नहीं।"

एक दूसरे दूकानदारने कहा—"तू बेरी बेच दे, तो मैं पांचसी दूं। बोल, है दरादा ?"

सुलक्वी—''यह बेरी नहीं है। हमारी श्रीलाद है। श्रपनी श्रीलाद कीन बेचता है?'' दूकानदार—"यह तेरा वहम है। आदमीकी सन्तान आदमी होता है, इस नहीं होता।"

सुलक्वी—"यह अपना-अपना विचार है। कई आदमी ऐसे भी हैं, जो ठाकुरको पत्थर कहते हैं।"

दूकानदार-"मुक्ति तो इच ही मालूम होता है।"

सुलक्वी—"तेरी आंखांमें वह ज्योति कहां, जो इसकी असली सूरत देख सके ? हचींके वेर ऐसे मीठे कहां होते हैं।"

लक्षमन अब तक चुप था, यह सुनकर बोला— "ऐसे मीठे बेर तुमने कहीं और भी देखे हैं? एक-एक बेर एक आनेको भी सस्ता है।"

दूकानदार—"यह ठीक है! किन्तु आख़िर है तो वेरी।"

सुलक्ती—"नहीं भैया! यह वेरी नहीं है। मेरे खामीकी यादगार है। जो अपने खामीकी यादगारको वेच दे, उसको मरकर नरक भी न मिलेगा।"

दूकानदार—"अब इसका क्या उत्तर दूं? पांचसी रूपये थोड़े नहीं होते। तेरी सारी आयु सुखसे कट जायगी।"

सुलक्वी—"भैया! जो सुख सुभी इसको पानी देकर होता है, वह सुख रूपये लेकर कभी न होगा।" दूकानदार—"तो पानी देनेस तुभी कीन रोकता है?

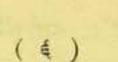


जितना चाहे, पानी दे। अगर तेरा हाथ पकड़ जाऊ', तो जो चोरकी सजा, वह मेरी सजा।"

सुलक्खी— "परन्तु जो बात श्रव है, वह फिर कहां? श्रव श्रपना है, फिर पराया हो जायगा। श्रव वेर भारे गांवमें बांटती झं, फिर तू हाथ भी न लगाने देगा। गांवके जिन लोगोंके पास पैसे नहीं, वह क्या करेंगे? वेरोंको देखेंगे, श्रीर ठंडी सांस भरकर रह जायंगे। मुझे कोसेंगे, दिलमें गालियां देंगे। श्रव सबको मुफ़ भिलते हैं, फिर किसीको भी न मिलेंगे। गांवके छोटे-छोटे बचे कहेंगे, कैसी ज़ालिम है, चार पैसोंकी खातिर वेरी वेच दी। न भाई! यह कलंकका टीका न ख्रीटूंगी। मैं गरीब ही भली।"

यह कहकर सुलक्वी वेरीके पास चली गई, श्रीर उसकी डालियोंपर हाथ फेरने लगी।

श्रीर यह उस खीका हाल था, जिसने किसी पाठशालामें विद्या नहीं पढ़ी थी; जिसने धर्म-कर्मपर कोई व्याख्यान न सुना था; जिसके पास खानेको कुछ न था: जो अपने जजमानोंके दानपर निर्वाह करती थी; परन्तु उसका हृदय कितना विशाल, कितना पवित्र था। उसने पड़ोसियोंके कर्तव्यको किस कृदर ठीक समभा था। ऐसी पवित्रहृदया, सुशीला तथा सभ्य देवियां संसारमें कम जन्म लेती हैं।



कई वर्ष बोत गये।

ज्येष्ठका महीना था। सुलक्खी बरीके सार बर बांट चुकी थी। अब बरीपर एक बर भी बाक़ी न था। सुलक्खी बरीके पास खड़ी उसकी फलोंसे ख़ाली डालियोंको देखती थो, और खुग होती थी कि इस सालका कर्तव्य भी पूरा हो गया। इतनेमें उसके एक जजमान हाड़ीरामने आकर सुलक्खीको नमस्कार किया, और बोला—"पंडतानीजी! हमारे बर कहां हैं?"

सुलक्खीके सिरपर जैसे बिजली-सी गिर पड़ी। हैरान थी, क्या कहे, क्या न कहे। हाड़ीराम गांवमें सबसे उजड़ जाट था। ज़रा-ज़रासी बातपर जोगमें या जाता था, और मरने-मारनेको तैयार हो जाता था। उसकी लाल यांखें देखकर सारा गांव सहम जाता था। वह अपने परिवारमहित दो महीनेसे कहीं बाहर गया हुआ था। सुलक्बी एक-दो बार उसके मकानपर गई, और किवाड़ बन्द पाकर लीट आई। इसके बाद वह उसे भूल-सी गई, और वेर समाप्त हो गये। और अब — हाड़ोराम उसके सामने खड़ा था। सुलक्बीने उसकी ओर ख़तावार निगाहोंसे देखा, और कहा— "जजमान! वेर तो ख़तम हो गये।"



हाड़ीरामने ज़रा गरम होकर कहा—"वाह! खतम कैसे हो गये ? हमें तो मिले ही नहीं!

सुलक्वी—"तब तुम जाने कहां चले गये थे? दो बार तुम्हारे मकानपर लेकर गई, दोनों बार दरवाजा बन्द था। लीट आई। इसके बाद मुक्ते ख्याल नहीं रहा।"

हाड़ीराम-(त्योरियां चढ़ाकर)--"ख्याल क्यों नहीं रहा ? इतनी बची भी तो नहीं हो।"

सुलक्वी--(ग्रान्तिसे)- "ग्रव जजमान, तुमसे वहस कीन करे, भूल हो गई! अगले साल दुगने ले लेना।"

हाड़ीराम-"खाना तो कभी नहीं भूलती हो, न फसलपर गला मांगना भूलती हो। हमारे वेरोंका समय त्राया, तो भूल गई !"

मुलक्वी-- 'तुम बाहर चले गये थे। क्या करती ?'' हाडीराम-वरीसे लगे रहने देती। मैं आता उतार लेता।"

सुलक्खी—"ग्रीर जो पककर गिर जाते, तो फिर! अब किसीके मंहमें तो पड़ गये। उस अवस्थामें किसीके भी काम न त्राते।"

हाड़ीरामके नेवोंसे अग्निकी ज्वाला निकलने लगी। गरजकर बोला-"मेरे वेर जब मेरे काम न आयं, तो



मुक्त क्या, चाई रहें, चाई मिट्टीमें मिल जायं। मेरे लिए एकसी बात है। तुम दूसरोंको देनेवाली कीन थीं?"

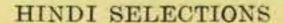
अब सुलक्वीको भी कोध आया। ज़रा तेज होकर बोली—वेरी मेरी है, तुम्हारी नहीं। जिसको चाहं, एक वेर भी न दूं; जिसको चाहं, सब-के-सब दे दूं। वेरी तुम्हारे हाथों विकी हुई नहीं। तुम बोलनेवाले हो कीन ?"

हाड़ीराम-"अच्छा, अब हम कीन हो गये?"

सुलक्वी—(उसी तरह गस्सेस)—'महनत मैं करती हं। रात-दिन मैं जागती हं, फिर सार-के-सार बर बांट देती हं। ग्राप एक बर भी नहीं खाती। इसपर भी दतना क्रोध! ग्राख़िर ग्रादमीको कुछ सोचना भी तो चाहिए। जाग्रो, नहीं दिये, न सही। जो कुछ करना हो, कर लो।"

हाड़ीराम दांत पीसता हुआ चला गया। इधर सुलक्वी वरीके पास जाकर उससे लिपट गई. और बोली—"वेटी! यदि तुम्हारा बाप जीता होता, तो इसकी क्या हिमात थी, जो यूं मेरी वेदज्ज़ती कर जाता।"

इसमे तीसरे दिन सुलक्वी एक बीमार बचेकी मेवा-सुत्रूषा कर रही थी कि एक लड़का दीड़ता हुआ



आया, और हांफता हुआ बोला—''तुम्हारी वेरीको हाड़ीने काट दिया। कई लोगोंने मना भी किया, मगर वह कहता था, मुक्ते सुलक्वीने गाली दी है। सारा आंगन भर गया है।"

(0)

सुलक्वीको ऐसा सालूम हुआ, जैसे किसीने गोली मार दो हो। वहांसे चली, तो उसे रास्ता न दिखाई देता था? उसके पांव-तलेसे ज़मीन निकलती जा रही थी। उस समय उसके शरीरमें ज़रा भी शक्ति न थी। पैर इस तरह लड़खड़ा रहे थे, जैसे अभी गिर पड़ेगी। मार्गके दोनों और लोग खड़े उसको देखते थे, और हाड़ीको गालियां देते थे। उस समय उन्हें सुलक्वीका विचार था, हाड़ीका भय न था। ये सुलक्वीके साथ सहानुभूति दिखाना चाहते थे, और उन्हें सिवा हाड़ीको गालियां देनेके और कोई ढंग न दिखाई देता था।

उधर मुलक्वीका आंगन स्ती-पुरुषों से भरा था।

श्रीर मध्यमें वेरी कटी पड़ी थी। लोग कहते थे—

"कितना ज़ालिम है, ज़रासी बातपर वेरी काट दी।

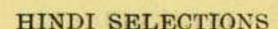
काटनेपर ही सबर किया होता. तो भी ख़ैर थी। श्रगले
वर्ष फिर उग श्राती, परन्तु इसने तो जड़ें भी उखाड़

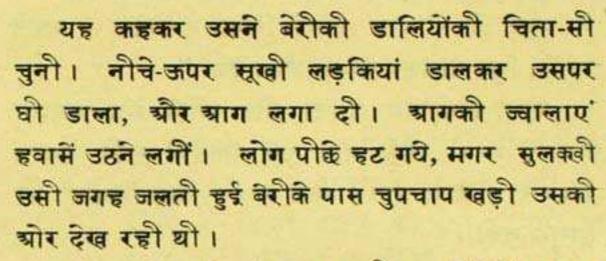
दी। श्रादमी काहिको है, चंडाल है!"

INTERMEDIATE

सहसा सुलक्षी कोटासा घंघट निकाले आई, और यांगनमें खड़ी हो गई। उसने बेरीकी डालोंको ज़मीनपर पड़ा देखा, तो उसके हृदयपर कुरियां चल गईं। उसको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह वसकी डालियां नहीं, उसकी सन्तानके हाथ-पांव हैं। उसने ग्रागे बढ़कर एक-एक डालीको गले लगाया, और रो-रोकर विलाप किया। इस विलापको सुनकर सभी लोग रोने लगे। सुलक्ती कहती थी- 'यर ! तूने मुक्ते बुला क्यों न लिया ? वचा! पता नहीं! जब तुभापर ज़ालिसका कुल्हाड़ा चला होगा, तेरा दिल क्या कहता होगा। तड़पता होगा। सोचता होगा, मां काहेको है, डायन है। यह कसाई मेरे हाथ-पांव काट रहा है, वह बाहर वृम रही है। बचा! मुक्ते क्या मालुम या, तेरे सिरपर मौत खेल रही है। अभी भला-चंगा कोड़कर गई थी; अभी-यभी तू बाहें फैलाकर खड़ा था। तुभी देखकर जी प्रसन्न हो जाता था। इतनी जल्द तयारी कर ली। अब लोग तरे वेरोंको तरसेंगे। ऐसे मीठे वेर श्रीर यहां नहीं ?

'तिरे बापने सरते समय कहा था, जब तक जीती है, इसकी रहा करना, श्रीर इसके बेर लोगों में बांटना। श्राज ये दोनों बातें श्रमकाव हो गईं। श्रब मेरा रहना ब्रथा है। चल दोनों एक साथ चलें। वहां तीनों सिलकर रहेंगे।"





सहसा वह चितामें कूद पड़ी। लोगोंमें इलचल मच गई। वे "हैं-हैं" करते हुए आगे बढ़े; परन्तु आगकी ज्वालाओंने उनका रास्ता रोक लिया। सलक्वी आगमें बैठी जल रही थी, किन्तु उसके मुखपर ज़रा परिशानी—ज़रा घबराइट न थी; बल्कि आत्मिक प्रकाश था। जैसे उसके लिए आग-आग न थी, ठंडा जल था। इतनेमें ज्वालाओंमें से आवाज़ आई—'मैं मरते समय वसीअत करती हैं कि मेरे ज़लके लोग भविष्यमें दान न लें।"

पुरुषोंकी आंखोंसे आंसू जारी थे। स्तियां फूट-फूटकर रो रही थीं, परन्तु सुलक्खी सृत्यके गरजते हुए शोलोंसे चुपचाप बैठी थी। देखते-देखते सा-बेटे दोनों जलकर भस्म हो गये। कल दोनों जिन्दा थे, आज कोई भी न था।

योड़ी देश्के बाद सुलक्वीका भाई खक्रमन श्रीर गांवके जाट लाठियां लिये हाड़ीरामको ढूंढ़ते फिरते थे।



वे कहते थे—''श्राज उसको ज़िन्दा न क्रोड़ेंगे। पहले सारेंगे, फिर बांधकर श्रागमें जला देंगे।''

परन्तु हाड़ीराम जंगलीं और वनींमें मुंह किपाता फिरता था। इसके बाद उसे किसीने नहीं देखा। कब मरा ? कहां मरा ? कैसे मरा ?—यह किसीको भी मालूम नहीं।

होली

(8)

"कल होली है।"

"होगी।"

"क्या तुम न मनाश्रोगी?"

"नहीं।"

"नहीं ?"

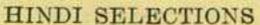
"·年 l"

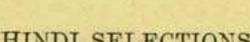
''क्यों ?''

"क्या बताऊ क्यों ?"

"श्राख़िर कुछ सुनूं भी तो"।

"सुनकर क्या करोगे ?"





"जो करते बनेगा।" "तुमसे कुछ भी न बनेगा।"

"तौ भी।"

"ती भी क्या कहं? क्या तुम नहीं जानते होली या कोई भी त्योद्वार वही मनाता है जो सुखी है। जिसके जीवन में किसी प्रकार का सुख ही नहीं, वह त्योद्वार भला किस बिरते पर मनावे ?"

"तो क्या तुमसे होली खेलने न आज' ?" "क्या करोगे आकर ?"

सकरण दृष्टि से करुणा की ओर देखते हुए नरेश साइकिल उठाकर घर चल दिया। करुणा अपने घर के काम-काज में लग गई।

(2)

नरेश के जाने के आध घंटे बाद ही करुणा के पति जगत प्रसाद ने घर में प्रवेश किया। उनकी आंखें लाल थीं। मुंह से तेज़ शराब की बू आ रही थी। जलती हुई सिगरेट को एक ग्रोर फेंकते हुए वे कुरसी खींच कर बैठ गये। भय-भीत हिरनी की तरह पति की ग्रोर देखते हुए करूणा ने पूछा—"दो दिन तक घर नहीं आए, क्या कुछ तबियत खराव थी ? यदि न आया करो तो खबर तो भिजवा दिया करो। मैं प्रतीचा में ही बैठी रहती हैं।"

उन्होंने करुणा की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया।
जीव से रुपये निकाल कर मेज़ पर ढेर लगाते हुए बोले
— 'पंडितानी जी की तरह रोज़ ही सीख दिया करती
हो कि जुआ न खेलो, प्रराव न पीयो, यह न करो, वह
न करो। यदि मैं जुआ न खेलता तो आज मुर्भ इतने
रुपये इकड़े कहां से मिल जाते? देखो पूरे पन्द्रह सी
है। तो इन्हें उठाकर रखो, पर मुभ्भ से बिना पूछे
इसमें से एक पाई भी न खुर्च करना सम्भीं?

करुणा जुए में जीते हुए रूपयों को मिटी समभती
थी। गरीबी से दिन काटना उसे स्वीकार था। परन्तु
चरित्र को भ्रष्ट करके धनवान बनना उसे प्रिय न था।
वह जगत प्रसाद से बहुत डरती थी इसलिए अपने
स्वतंत्र विचार वह कभी भी प्रकट न कर सकती थी।
उसे इसका अनुभव कई बार हो चुका था। अपने
स्वतंत्र विचार प्रकट करने के लिए उसे कितना अपमान,
कितनी लांक्रना और कितना तिरस्कार सहना पड़ा था।
यही कारण था कि आज भी वह अपने विचारों को
अन्दर ही अन्दर दबा कर दबी हुई ज़बान से बोली—
"रूपया उठाकर तुम्हों न रख दो ? मेरे हाथ तो आटे
में भिड़े हैं।" करुणा की इस इन्कारी से जगत प्रसाद
क्रीध से तिलमिला छठे और कड़ी आवाज़ से पृक्का—

"क्या कहा ?"



करुणा कुछ न बोली नीची नज़र किए हुए आटा सानती रही। इस चुप्पी से जगत प्रसाद का पारा एकसी दस डिग्री पर पहुंच गया। क्रोध के आवेश में रुपये उठा कर उन्होंने फिर जिब में रख लिये—"यह तो में जानता ही या कि तुम यही करोगी। मैं तो समभा या इन दो-तीन दिनों में तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने आगया होगा। जट-पटांग बातें भूल गई होगी और कुछ अकल आगई होगी। परन्तु सोचना व्यर्थ था। तुम्हें अपनी विदत्ता का घमंड है तो सुक्त भी कुछ है। लो! जाता हं अब रहना सुख से"—कहते कहते जगत प्रसाद कमरे से बाहर निकलने लगे।

पीकि से दौड़कर करुणा ने उनके कोट का सिरा पकड़ लिया और विनीत खर में बोली—"रोटी तो खालो! में रुपये रखे लेती हं। क्यों नाराज़ होते हो?" एक ज़ोर के भटके के साथ कोट को छुड़ाकर जगत प्रसाद चल दिये। भटका लगने से करुणा पत्थर पर गिर पड़ी और सिर फट गया। छून की धारा बह चली, और सारी जाकेट लाल हो गई।

(()

संध्या का समय था। पास ही बाबू भगवती प्रसाद जी के सामने वाली चीक से सुरीली आवाज़ आ रही थी। "होली कैसे मनाऊं?" "सैंया बिदेस, मैं दारे ठाढ़ी, कर मल मल

पक्ताऊं।"

होली के दीवाने भंग के नग्ने में चूर थे। गानेवाली नर्तकी पर रूपयों की बौद्धार हो रही थी। जगत प्रसाद को अपनी दुखिया पत्नी का ख़याल भी न था। रूपया बरसाने वालों में उन्हीं का सब से पहिला नस्बर था। इधर करुणा भूखी-प्यासी क्टपटाती हुई चारपाई पर करवटें बदल रही थी।

* *

"भाभी, दरवाज़ा खोलों" किसी ने बाहर से आवाज़ दी। करुणा ने कष्ट के साथ उठकर दरवाज़ा खोल दिया। देखा तो सामने रंग की पिचकारी लिए हुए नरेश खड़ा था। हाथ से पिचकारी कूट कर गिर पड़ी। उसने साथर्थ पूछा—

"भाभी यह क्या ?"

करुणा की आंखें कल कला आई', उसने रुंधे हुए कंठ से कहा—

THE REAL OF MINISTER OF THE PARTY OF THE PARTY.

"यही तो मेरी होली है, भैया।"



मानुषौ

पार्वती ने कहा—स्वामिन्, बहुत दिन हो गये, नर-लोक नहीं देखा। यदि अनुचित न हो, तो चलने का कष्ट उठा कर दासी का मनोर्थ पूर्ण की जिए।

भगवान शंकर ने कहा—देवि, ऐसी इच्छा क्यों? क्या कैलाश-धाम से जी जब उठा?

नहीं नाथ, कैलाश के श्रानन्द-उत्सवीं से जो नीर उत्यित होता है, वह तो नित्य नया है! यहां जब उठने का प्रश्न ही नहीं।

जबना नहीं, तो फिर यह क्या है प्रिये!

एक उत्कर्ण। जवना विरिक्त-जन्य है, श्रीर उत्करणा श्रानन्द-जन्य। देखना तो चाहिए, श्रापका जटा-जूट छोड़ जाइको जीजी जिस लोक में गई हैं, वह कैसा है?

कैलास के हिम-धवल शृङ्गों को श्रीर भी समुज्ज्वल करते हुए शंकर श्रष्टहास कर उठे। बोले—जाइकी जोजो पर तुम्हारा श्रनुराग बहुत है! यदि उनकी तरह तुम भी वहां रह गई' तो ?

स्वामिन्, यह कैसा परिहास ! शरीर के आलम्बन को कोड़ कर काया कहीं रह सकती है ? तथास्तु। तुम्हारी दच्छा है, तो चलो। महादेव-पार्वती नर-लोक के नाना दृश्य देखते चले जा रहे थे। बड़े-बड़े राजप्रासाद निकल गये, जहां चञ्चला लच्मी अचला हो कर आलोक किये बैठी थी। बड़े बड़े उद्यान पीक्के क्ट गये, जो अपनी महत्ता में, समय-असमय के, अपने-पराये, कोटे-बड़े सब दृचों को एक-से वात्सल्य-रस से सींच कर अहर्निश्च पृष्पित-फलित किये हुए थे। सहसा एक भोपड़ी के भीतर से "ओ जगदस्बा मैया!" सुन कर पार्वती ठिठक कर खड़ी हो गई। बोलीं—कोई दुखिया जान पड़ती है नाथ! देखिए न, हमें क्यों याद कर रही है।

देवि, यह नर-लोक है। यदि इस तरह देखा जायगा, तो यह देखना कभी पूरा न होगा।

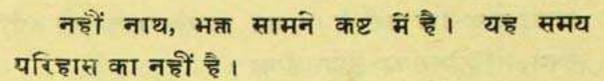
नहीं, इसे तो देखना ही चाहिए। शीत-काल की सुनसान रात, जड़-चेतन सब निद्रा-मग्न हैं। सुभी बड़ी करणा आ रही है। अनुग्रह करके इसके सब अभाव दूर कर दीजिए देव!

देख जिया। इसे कोई अभाव नहीं है।

कोई ग्रभाव नहीं है ? सुभी तो इस उटज में जो कुछ दिखलाई पड़ता है, वह ग्रभाव ही है, ग्रीर कुछ नहीं।

तुम मुभ-जैसा थोड़े देख सकती हो। मैं 'त्रिनेत्र' जो हं!

HINDI SELECTIONS



देवि, मैं परिहास नहीं कर रहा हैं। सुकी यहां करुणा का कोई कारण नहीं दिखाई देता। इस उटज को देख कर यथार्थ ही मैं यानन्द से पुलकित हो उठा हैं।

नाथ, इस भोपड़ी में ऐसा कीन-सा आकर्षण है, सो समभ में नहीं आया। देखिए, काल के थोड़े-से आवात से ही, आंखों में अंधेरा भर कर, यह किसी हड़ा की तरह एळी पर बैठ जाने की सोच रही है। जपर की मिट्टी ने खिसक कर खान-खान पर भित्तियां विषम कर दी हैं, मानो उनमें भुर्रियां पड़ गई हों। जपर कप्पर में जगह-जगह भरोखे बन गये हैं। जाले बन कर भीतर मकड़ियों ने उन पर परदे डालने चाहे हैं। ऐसी है यह भोपड़ी। और, इसी को देख कर आप आनन्द से पुलकित हो उठे हैं!

नहीं देवि, इस ग्रोर तो मेरी दृष्टि ही नहीं पड़ी।

धन्य भगवन्, ग्राप यथार्थ ही भोलानाथ हैं। ग्रापन तो इस लोक के नरेन्द्रों को भी मात कर दिया, जिनके सामने ही प्रजा 'व्राहि-व्राहि' करती रहती है, परन्तु उनके कानों का मधु-संगीत किंचिन्माव भी कुंठित नहीं होता। ग्राज मालूम हो गया, इस लोक में इतना दुःख-इन्ड क्यों है। जब ग्रापने बाहर ही नहीं देखा, तो भीतर क्या देखा होगा ?

प्रस्तर-प्रस्ते, मैं कहता तो हैं, भीतर बहुत कुछ है। तुम स्वयं देख लो न।

में प्रस्तर-प्रसूता हं, बुद्धि मेरी है ही कितनी? बुद्धि होती, तो देख न लेती। परन्तु नाथ, इतना स्मरण रखिए, मैं प्रस्तर की पुत्नी हं, तो आप भी प्रस्तर से असम्बन्धित नहीं रह सकते। आप इस प्रकार—

भवानि, तुन्हारा यह आवेश भी बहुत सुन्दर जान पड़ता है। इसमें उत्ताप है, परन्तु निदाघ की नहीं हेमंत की अग्नि-शिखा का।

इधर-उधर की बातें करके आप बात टालना चाहते हैं, मैं यह न होने टूंगी। अच्छा, भीतर ही देखिए, भीतर क्या है? अविच्छित्र अंधकार। यदि आपके भाल पर चन्द्र न होता, तो वास्तव में कुछ देख लेना सबका काम न होता। परन्तु इससे क्या? देखने का साधन है, देखने के लिए भी तो कुछ चाहिए। देखिए, यही है न—दो-चार ट्टे-फूटे बर्तन; रिक्त रसोई-घर; वह खाट, जिसकी मूंज ढीली हो कर, टूट कर, स्वयं भूमि-शयन करना चाहती है। और कुछ हो, तो आप बताइए।



श्रीर वह मानुषी ?

उसी खाट पर मिलन कत्या में बंधी हुई वह गठरी ही न ? उसके ललाट का सिन्ट्र-सुधाकर सदा के लिए ग्रस्त हो चुका है। मन को चर्चा ही क्या जब ग्ररीर भी ज्वर-ताप से दग्धीभूत हो रहा है। पास में कोई पानी देने तक के लिए नहीं है। ज्वर की ग्रचेतावस्था में सुभी पुकार रही है। मैं सामन हो ग्रलचित हं। ग्राप कहते हैं, उसे कोई ग्रभाव नहीं है। यह कैसी समस्या है देव!

यथार्थ हो कहता हं देवि. इसके पास जो कुछ है, उसकी तुलना में कोई ग्रभाव टिक नहीं सकता। ग्रभी कुछ विलम्ब नहीं हुगा, कितने ही वैभंवणाली नराधिप देख चुका हं, कितने ही योगियों को पीछे छोड़ ग्राया हं, कितने ही मनीषियों ग्रीर कलाकारों का परिचय पा ग्राया हं। परन्तु जो कुछ इसके पास देख रहा हं, वह इसीके पास है।

यदि यह ऐसी गरीयसी है, तो यह इस स्थान
पर सुशोभित नहीं होती नाथ! नष्ट करने के
लिए नहीं, उदर भरने के लिए तो इसे भोजन
दीजिए। प्रासाद नहीं, ऐसा घर तो दीजिए, जिसमें
सिर जंचा करके चलने में उसके फूटने का डर
नहीं।

INTERMEDIATE

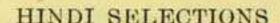
शुभे, इसका घट जपर तक भरा हुआ है। उसमें और कुछ भरने के लिये स्थान नहीं है। इसमें और कुछ ढालने के लिए इसका ओत-प्रोत असत निकाल लेना पड़ेगा। यह बात इसके लिए वर नहीं, अभिशाप से अधिक होगी। अभी तुम इस रमणी को बैभव देने के लिए कह रही हो, आगे चल कर अस्थकार पूरित खनि में मणि देख कर कहोगी, इनके उत्पन्न होने के लिए स्थान-स्थान पर सीध खड़े कर दो। यह कैसे हो सकता है?

नहीं नाथ, मैं प्रतिज्ञा करती हं, मिणयों के लिए सीध खड़े कर देने की बात नहीं कहंगी। विभूति का योड़ा-सा कण इस महीयसी को ही देने के लिए कह रही हं। इसके विषय में आपने जो कुछ कहा है, उसे सुन कर सुभी रोमहर्ष हो उठा है। इसके लिए किंचित् अनुग्रह करना ही पड़ेगा।

अच्छा, ऐसा करो देवि, इसे तुम जो कुछ देना चाइती हो, खयं दे दो। यदि तुम इसे कुछ भी अधिक दे सकोगी, तो मुक्ते कम संतोष न होगा।

ऐसा करने में कुछ अपराध तो न होगा? भगवन्! मेरे मन में करुणा का उद्रेक हो रहा है, नहीं तो—

नहीं भगवति, कोई अपराध न होगा। इस महीयसी



को और पास से देखने का अवसर पा कर तुम भी अपनी यह यात्रा सफल समभोगी।

स्वामिन्, आपने मेरी उत्कर्णा बहुत बढ़ा दी है। यह अवसर हाथ से नहीं छोड़ा चाहती। हां; आपको कुछ क्कने का कष्ट उठाना पड़ेगा।

जब तक तुम्हारी इच्छा होगी, मैं सहर्ष रुक्रंगा। तुम अपना काम करो देवि! मैं पास ही इस आक-वृज्ञ के पुष्प में बैठ कर तुम्हारी प्रतीचा करूंगा।

*

मनोइरलाल की अवस्था १७-१८ से अधिक न होगी, जिस समय उसके पिता कामतानाथ की मृत्यु हुई। मिट्टी के कचे घर में जितना पक्का प्रबन्ध किया जा सकता था, वह कर गये थे। आठ-दम बीचे का खेत तो परम्परागत था ही, दो-चार सी नकद भी छोड़ गये थे। पुत्र को आवश्यकता से अधिक शिक्तित कर गये थे। अर्थात्, वह डाकखाने के मनीआर्डर-फार्म ही नहीं भर लेता था, वरन् सामयिक समाचार-पत्नादि पढ़ कर उनका मतलब भी हृदयंगम कर लेता था। यह सब तो था ही, पुत्र का विवाह करके वह घर में ऐसी बह्न ले आये थे, जिसे वह साचात् लच्ची समभते थे। यदि पीत्र का मुंह और देख जाते, तो कदाचित् उनकी सब अभिलाषाएं पूरी हो जातीं।

परन्तु न तो सहा मनुष्य को सब अभिलाषाएं पूरी होती हैं, और न मनुष्य का सीचा हुआ ही सब समय ठीक निकलता है। पिता की सत्यु के बाद मनोहरलाल ने जिस पय का अवलस्वन किया, वह मनोहर तो था, परन्तु वह मनोहरता बनाये हुए नागरिक पय की नहीं, वन्य पय की थी, जिसमें आस-पास की पुनीत नैसर्गिक माधुरी के साथ-साथ कंकड़, कंटक, खड़ और हिंस पशु भी कम नहीं होते। ऐसे पथ पर चलने के लिए जिस साहस की आवश्यकता होती है, उसका अभाव उसमें न था। यदि उस साहस के साथ कुछ चातुर्य उसमें और होता, तो कदादित् कोई शोचनीय प्रसङ्ग उपस्थित न होता।

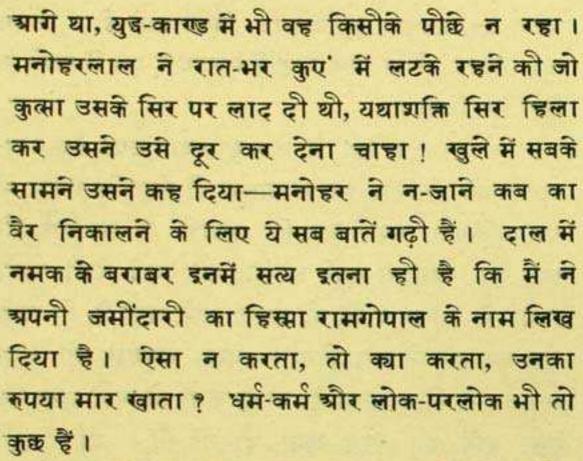
एक दिन मृलू अहीर ने या कर मनोहर को अपना दु:ख सुनाया। उसके जपर रामगोपाल जमींदार के कई सी कपये निकलते या रहे थे। निरन्तर कुछ-न-कुछ दे कर भी वह अपना खाता छोढ़ा न करा पाया था। ऋण के इस अंधकूप से उबारने के लिए रामगोपाल ने उसे रात भर रस्त्री के सहारे कुएं में लटका रक्वा था। अन्त में उसकी जमींदारी की कुछ पाइयां और की ड़ियां ही लिखा कर उसके कई सी क्पयों की रसीद दे कर उसे सदा के लिए ऋण-मृत्त कर दिया था। मनोहरलाल सब हाल सुन कर ऐसा उत्तेजित हो उठा.



मानो यह व्यवहार उसीके साथ किया गया हो। उसने सब संवाद लिख कर भट-से समाचार-पत्न में इत्पन के लिए भेज दिया।

जब समाचार-पत्र में उक्त समाचार छपा, तब गांव-वालीं को निश्चित रूप से मालूम हो गया कि संसार में अब कलिकाल अपनी सोलहीं कलाओं से अवतीर्ण हो गया है। अभी से अपने घर-गांव की बुराई ऐसी कड़ी भाषा में बाहर वालों को सुनाई जाने लगी है, तो आगे चल कर न-जाने क्या होगा! ऐसा व्यवहार तो सदा सनातन से होता आया है, परन्तु कभी तो नहीं सुना कि ऐसी बातें इस तरह छपा दी गई हों। यदि किसी धुनिए-जुलाई ने मूलू के साथ वह व्यवहार किया होता, तो उस पर विचार भी किया जा सकता था। जमींदार के विरुद्ध कुछ कहना ऐसा पाप है, जिसका प्रायिश्वत नहीं है। जिस तरह बैकुग्ठविहारी भगवान की प्रस्तर-सूर्ति बनाने की व्यवस्था करके उनकी अर्चा घर-घर सुलभ कर दी गई है, उसी तरह ईम्बर के ग्रंश-स्वरूप नराधिप की सेवा करने के लिए ही जगह-जगह जमींदार प्रतिष्ठित किये गये हैं! अतएव मनोहरलाल के इस नास्तिकाचार के कारण सारा गांव उसका शतु वन गया।

इस व्यापार के आदि-कागड़ में जो मूलू अहीर सबसे



प्रलतः एक-एक करके मनोइरलाल के सब हेली-मेली, अड़ोसी-पड़ोसी उससे दूर हट गये। ऐसे भयंकर आदमी के साथ किसी की पट कैसे सकती थी। सब बाल-बच्चे वाले गरीब आदमी थे। मनोइरलाल का विश्वास हो क्या, न-जाने कब, किसके विषय में, वह क्या क्या दे!

इस महाभारत का शान्ति-पर्व यहीं पर नहीं हो गया। एक दिन मृलू श्रहीर ने तहसीलदार के यहां दावा किया कि मनोहरलाल ने उसे बुरी-बुरी गालियां दी हैं, श्रीर बुरी तरह मारा है। सब बातें प्रमाणित करने वाले स्वार्थ-त्यागी साचियों की भी कमी न थी।



उनमें से कुछ सदाशय ऐसे भी थे, जो उस दिन गांव में भी नहीं थे। नहीं थे, तो क्या हुआ; घर में आग लगी हो, तो नाबदान के पानी से भी उसे बुक्ताने में दोष नहीं। विपत्ति-काल का धर्म धर्म की छाती रींद कर भी चलता है! गांव वालों ने यह निगृद तत्त्व अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया था। अतएव न्याय-देवता की चुधा मिटाने के लिए जितने असत्य की आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति करने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। इस तरह गांव भर के, अर्थात् जमींदार के, गतु मनोहरलाल को एक महीने की सज़ा हो गई।

कारागार से लीट कर मनोहरलाल ने न तो सत्याग्रहियों का-सा खागत पाया, श्रीर न समाचार-पत्नीं का स्तव गान ही। इस बीच में गांव के ढोरों ने उसकी खड़ी हुई खेती चर कर उसे काटने श्रीर घर लाने के श्रागामी श्रम-बाहुल्य से श्रवश्य मुक्त कर रक्खा था।

ख्यामा ने रोत-रोते स्वामी के पैरों पर गिर कर कहा — चलो नाथ, इस पापी गांव को छोड़ कर श्रीर कहीं चलो। इन गांव वालों के साथ रहने की श्रीचा वन के हिंसक पश्चीं के साथ रहना श्रीक श्राच्छा है।

सनोहरलाल आंखों से आग बरसा कर गरज उठा— क्या तुम भी हमारे शतुओं में मिल गई ? तुम्हें जहां



जाना हो, चली जाओ। किसी के डर से मैं बाप-दादों का घर नहीं छोड़ सकता।

हृदय को समभाने के लिए हृदय की बात ही यथेष्ट होती है। वहां तर्क का प्रवेश निषिद्ध है। ग्यामा दतने में ही समभा गई, यह घर छोड़ा नहीं जा सकता। घर जहां होता है, वहीं रहता है; चारों ग्रोर ग्रग्नि का ताग्डव-तृत्य होने पर भी उठा कर दूसरी जगह नहीं ले जाया जा सकता।

घर नहीं छोड़ा गया, परन्तु घर की सामग्री धीरे धीरे उसका परित्याग करके रीते पेट भरने लगी। इसका परिणाम बहुत अनुकूल न हुआ। जिस खाद्य में घर के कितने ही गहने-कपड़े और लोटा-वर्त्तनों का सिमायण था, वह मिलावटी अन्न की तरह मनोहरलाल के भरीर का भोषण करने लगा।

खाट पर गिर कर भी मनोहरलाल ने आराम की ही सांस ली। जिन गांववालों से वह दूर-दूर रहना चाहता या, उन्हीं के बीच रह कर भी उनकी छाया से बचन का उसे सबसे बड़ा उपाय मिल गया। यदि कोई पड़ोसी कभी उसके यहां उसकी खबर पूछने आ जाता, तो वह ऐसा व्यवहार करता, मानो रसोई-घर में पूरे का कुला घुस आया हो। ग्यामा वैद्य को बुलाने का साहस भी नहीं कर सकी। फिर भी उसने सब हाल कहलवा कर



उसके यहां से दवा मंगाई। उसे देख कर ही मनोहर-लाल आग हो उठा। बोला—सब मेरे साथ प्रव्रुता रखते हैं, तुम तो सुभी आराम से पड़ा रहने दो। क्या तुमसे मेरा खाट पर पड़ा रहना भी नहीं देखा जाता? फेंको यह दवा, इसी दम फेंको। यहीं नहीं, घर के बाहर। इसको गन्ध मेरा दम घोट देगी। जिस औषधि का देखना-भर इतना विषाक्त था, उसका सेवन कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता था। प्यामा ने तुरन्त बाहर जा कर औषधि पृथ्वी-माता के अर्पण कर दी।

श्वामा ने दवा का अभाव अपनी सेवा से पूरा करना चाहा। स्वामी में खाट पर बैठने की शक्ति नहीं थी। निरन्तर उनके पैरों के पास बैठ कर उसने उन्हें बैठने का सुख देना चाहा। उन्हें रात को नींद नहीं आती थी। उसने स्वेच्छा से रात-रात भर जाग कर उन्हें अपनी नींद देनी चाही। परन्तु दे न सकी अपने दीर्घ जीवन का एक पल भी। जिस दुर्निवार वेग से व्याघ्र अपने आखेट पर भाषटता है, उसी भीषणता के साथ मनोहरलाल का अन्त निकट आनं लगा।

उस दिन, रात के प्रारम्भिक श्रंधेरे में, हाथ में लोटा लिये, श्यामा दूध लेने श्रहीर के यहां जा रही थी। श्रकेले पथ पर श्रचानक जमींदार रामगोपाल मिल गया।



घूंघट खींच कर, उसे जगह देने के लिए वह एक ग्रोर हट गई। उसने धृष्टता की हंसी हंस कर कहा— "सुन्दरी, तुम इतना कष्ट क्यों करती हो? जरा हंस कर मुक्ते ग्राज्ञा दो। सीधी तुम्हारे यहां दूध की धार पहुंच जायगी।" केवल दो ग्रांखों से ही नहीं, ग्रपने सम्पूर्ण मुख से त्रिनेत्र के रोष की भीषण ज्वाला बरसाती हुई ग्रामा ग्राग बढ़ गई। जले हुए कंड की घनीभूत राख की तरह रामगोपाल जहां-का तहां जड़ीभृत हो गया। बड़ी देर के बाद उसे चेत ग्राया कि वह कहां है, ग्रीर कितनी बड़ी घटना घोड़े समय के भीतर घट चुकी है।

वर पहुंच कर श्यामा खामी को दूध पिलाना भूल गई। उनके पैर पकड़ कर श्राज वह बड़े ज़ोर से रो पड़ी। जिस गीली लकड़ों के एक सिरे पर श्राग होती है, श्रीर दूसरें सिरे से पानी रिसता है, उसी-जैसी उसकी श्रवस्था थी। खामी के सामने इस प्रकार वह कभी नहीं रोई थी। कारण न उसने पृक्का, न श्यामा ने ही कहा। उसकी श्रोर वह इस प्रकार देखता रहा मानो कुक पूकने की श्रावश्यकता नहीं है। इस घटना का हितु मानो उसके स्मृति-भांडार में ही कहीं किपा हो, श्रीर वह उसे वहां से बाहर निकालने का विफल प्रयत कर रहा हो।



मृत्यु के कुछ पहले मनोहरलाल की चेतना गिक्त घवराये हुए उस खजन की तरह लीट आई, जो अपने आत्मीय के अन्तिम समय का समाचार तार से पा कर दूर से आया हो। ग्यामा को अपने और पास खींच कर उसने धीमे स्वर में कहा—"श्यामा, मैं ने तुम्हें बहुत दुःख दिया। शायद संसार में किसीको सुख दिया ही नहीं जा सकता। परन्तु यदि मैं तुम्हें अपने जीवन में थोड़ा भी सुख दे सका होता, तो याज यपने यानन्द में सुक्त कोई वृटि न दिखाई देती। मालूम नहीं, तुम समभ सकोगी या नहीं, फिर भी याज सुर्भ जो यानन्द है, उसके सामने कोई चिन्ता, कोई दु:ख, कोई अभाव नहीं उहर सकता। याज मेरे जपर किसी का कोई ऋण, कोई अनुग्रह नहीं है। संसार से जो कुछ सुभी मिला था, मैं ने उसका पाई-पाई हिसाब चुका दिया उसके समस्त घातक श्लों का, समस्त दु:ख श्रीर लांछनाश्री का श्राघात, कायर सैनिक की तरह, मैंने पीठ पर नहीं भीला। पीछे के आघात के सामने भी मेरी काती ही खुली रही है। आज अब मेरे जाने का समय या गया। मालूम नहीं, तुम संसार को किस तरह सहन करोगी।"

श्यामा की आँखों से भर-भर आंसू भर रहे थे। उसने उन्हें आंचल से पोंक डाला। केवल आंखों



में ही नहीं, हृदय के अन्तरतल में भी। शोक की म्हान कालिमा भी कदाचित् उन्हीं के साथ पींछ दी गई। उसके मुंह पर एकाएक सीन्दर्य का वह तेज फैल गया, जो सहमरण के लिए प्रस्तुत किसी देवी को सब और में छा लेता है। उसने सिर उठा कर सहज, शान्त खर में कहा—"चिन्ता न करो नाथ! मैं भी संसार को उसी प्रकार सहन करूँ गी जिस प्रकार तुमने सहन किया है। मेरे लिए चिन्ता करके तुम आज अपने अन्तिम आनन्द को पीड़ा न पहुँ चाओ।"

सनोहरलाल ने पत्नी की श्रोर देखा। श्रव की बार उसकी श्रांखों में भी श्रांस् दिखाई दिये। कुछ देर के लिए श्रपनी श्रांखें बंद करके उसने श्रपने श्रानन्द के भार को सहन करना चाहा।

उसी रात मनोहरलाल ने सदा के लिए श्रांखें बन्द करलीं।

जो बैर है, विरोध है, कुका है— उसका जीवन दतना भी नहीं; जितना मनुष्य की चणभंगुरता का। ग्रमर वही है, जो प्रेम है, सत्य है, सुन्दर है। तभी मृत्यु की छाया में दनका जीवन पहले से भी ग्रधिक उज्ज्वल हो उठता है। ग्राज मनोहरलाल के लिए बहुतों को हार्दिक दुःख हुआ। रामगोपाल भी उसके ग्रव-संस्कार



में जाने से न क्क सका। उसके जीवित काल में लोगों ने उसके जपर पत्थर ही बरसाये थे। उसने भाड़-पोंछ कर वे पत्थर अपने ही पास रख छोड़े थे। प्रतिघात के लिए आक्रमणकारियों के ही जपर न फेंक कर उसने उन सबको नि:शब और निस्सहाय कर दिया था। उन लोगों को अपनी उस असहायावस्था का जैसा पता आज लगा, वैसा कभी नहीं लगा था। वह ग्लानि मिटाने के लिए लोगों ने उसकी चिता पर आंसू और फूल बरसाने में कसर न रख्वी।

इस घटना के अनन्तर ग्यामा उस रूपान्तर में पलट गई, जो मूल से भी बहुत बढ़-चढ़ कर होता है। लोगों को उसे देख कर आधर्य हुआ। घनीभूत धुएं से भर हुए कमरे में दीप-शिखा की भांति वह ग्रोक उसका अणु-मात्र भी अनिष्ट न कर सका। मानों कुछ ऐसा हुआ ही नहीं कि उस पर दया की जाय।

तिरहीं के दिन उसके भैया ने, निमन्तित थोड़े से ब्राह्मणों को भोजन करा चुकने के उपरान्त, कहा— बहन, अब यहां तेरे रहने की ज़रूरत नहीं। चल, वह घर भी तेरा ही है। अपनी छाया में वहां अपने भतीजों को आदमी बनने के योग्य कर दे।

आज वह अपने को संभाल न सकी। अजस आंस् बरसा कर उसने कहा—इसके लिए चमा करो भैया! यह घर छोड़ा जा सकता होता, तो आज यह दिन आता ही नहीं। जिस तरह छुटपन में मेरे अनेक उपद्रव हंस कर सह लेते थे, उसी तरह आज मेरी यह बात भी सहो।

घर छोड़ने के लिए उसे किसी तरह समात न किया जा सका। भैया के हृदय पर चोट लगी। उन्होंने समभा, विवाह के बाद बहन पर भैया का किसी तरह का भी ज़ोर नहीं रहता। अच्छी बात, इसी घर में रहे। जहां उसे सुख हो, वहीं अच्छा।

दस-पांच दिन उसके यहां ग्रार रह कर, उसके रहने का उचित प्रबन्ध करके, उसके भैया ग्रांखों में ग्रांस् भरे हुए चुसा मन से ग्रंपने घर चले गये।

श्यामा दूसरीं का आटा पीस कर और अपना खेत बंटवारे पर दे कर अपने दिन व्यतीत करने लगी। उसे जो कुछ मिल जाता, वह भी उसके लिए अधिक हो जाता। निज का सब काम करके उसके हाथ और भी कुछ करने के लिए तैयार रहते। उस समय वह पड़ोसियों के यहां जा कर उनके काम में हाथ बंटाती। कठोर-से-कठोर मिल-मैनेजर मज़दूरों से जितना काम लेता है, अपने श्रीर से वह उससे भी अधिक परिश्रम लेती। किसी पड़ोसी के प्रतिदान की आवश्यकता उसे न होती। देवी की प्रतिमा की तरह



वह अपने भक्त का अर्पित किया हुआ भोग अपने प्रसाद के साथ उसीके लिए लीटा देती।

उसे स्वामी की फतूही की जेब में सोने की एक अंग्ठी मिली थी। बहुत दिन पहले एक विपन्न परिवार ने कुछ ज़ेवर सोने के भाव से भी सस्ते दिये थे। यह अंग्ठी उन्हीं में से थी। और सब ज़ेवर गला कर मनोहरलाल ने उनका सोना बेच दिया था। परन्तु यह अंग्ठी या तो बिकी न थी, या फिर बेचने के लिए जेब में ही रख छोड़ी गई थी। ध्यामा ने भी उसे न बेचा। वह धन का कम-से-कम उपयोग करना चाहती थी। स्वामी की अस्थियां त्रिवेणी में सिराते समय उसने वह वहीं दान में दे दी थी।

इस तरह बहुत दिनों तक करते-करते इक्के की उस घोड़ी की तरह उसका शरीर टूट गया, जिसे परिश्रम तो टूना करना पड़ता है, परन्तु खाने के लिए श्राधा भी नहीं दिया जाता। एक दिन वह खाट पर गिर रही।

उस रात ज्वर के कारण वह अचेतावस्था में थी। बीच-बीच में वह कई बार "ओ भोला बाबा, ओ जगदस्बा मैया!" कह कर चिक्काई थी। रोग ऐसा जान पड़ता था कि आज उसकी तबीयत और खराब हो जायगी। परन्तु सवेरे उठ कर उसे जान पड़ा कि



वह स्वस्थ है। अपनी इस अवस्था पर उसे बड़ा आयर्थ हुआ। रात की सुषुप्ति की दशा में उसे एक विचित्र आलोक दिखाई दिया था। उसका स्मरण उसके शरीर पर बार-बार अस्तत-सा किड़कने लगा।

श्यामा स्प से नाज फटक कर आटा पीसने की तैयारी में थी कि पड़ोसी तुलसी पिण्डत की खी एक हवा को लेकर उसके यहां आई। श्यामा ने उसके पैर कू कर उसे विठाया। पंडिताइन ने कहा—"यह हमारी गिरो मीसी हैं। तुमसे मिलना चाहती थीं। आज अब तुम्हारी तबीयत कैसी है?"

भोसी के पैर फिर कू कर ग्यामा ने कहा— "धन्य भाग! त्राज तो तबीयत ठीक मालूम देती है।"

प्रव्द को छन्द के सांचे में ढालने के लिए किव ही स्वेच्छाचारी नहीं होते, जन-साधारण भी उच्चारण की सुविधा के लिए यह छूट लेते हैं। मीसी का नाम तो है गिरोजा, परन्तु कहलाती हैं गिरो मीसी।

दो-चार बातों में ही गिरो मीसी ने श्यामा को इस प्रकार मुग्ध कर लिया, मानो उनके साथ उसका कई जन्म का सम्बन्ध हो। उनके सरल वात्सल्य ने उसकी वर्षीं की चुधा शान्त-सी कर दी। पंडिताइन तो घर के काम से चली गई, परन्तु मीसी की उठने की इच्छा



न हुई। न तो मीसी को ख्यामा से त्रिप्त हो रही थी, और न ख्यामा को मीसी से।

सन्ध्या-समय मीसी ने भ्यामा से कहा—वेटी, तेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं आज रात को यहीं सोजंगी। मेरे लिए जैसा तुलसी का घर, वैसा ही तरा। ऐसे में तुभी अकेली न छड़ंगी।

बड़ी बिचित्र बात है, ध्यामा मौसी को रोक न सकी। इस प्रकार किसी की वाध्यता स्वीकार करना उसकी प्रकृति में नथा।

उस रात मीसी उसीके यहां सोई।

जब डेढ़ पहर रात बीत गई, श्रीर चारों श्रीर सन्नाटा का गया, तब मीसी ने, इधर-उधर चारों श्रीर देख कर धीम में कहा—बेटी, मुक्ते तुक्तसे एक बात कहनी है। श्राज दिन-भर से मैं उसीके कहने का श्रवकाश ढूंढ़ रही थी।

"कहतीं क्यों नहीं मौसी? मैं सुनती हां।" "अब तेरे सब दुःख-कष्ट दूर हो जयेंगे।" आमा ने शंकित हो कर कहा—इस तरह मैं नहीं

समभ सकती। साफ-साफ कही मौसी!

"तुम्हारा जो खेत है, उसकी मेंड़ पर बहुत पुराने समय का एक पत्थर गड़ा हुआ है।"

"हां, ठीक कहती हो मीसी, गड़ा तो है।"

"वह पत्थर मामूली नहीं है। बहुत पुराना है, चन्देलों के राज्य का।"

"लोग कहते तो ऐसा ही हैं।"

"भूठ थोड़े कहते हैं। ऐसी ही बात है।"

"होगी मौसी, इससे हमें क्या ?"

"हमें कैसे जुक्त नहीं। वह बड़े काम की चीज़ है। एक बहुत बड़े सहात्मा ने बताया है।"

"क्या बताया है ?"

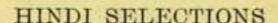
"अपना सिर ऊंचा करके वह अपार धन की चौकसी किये खड़ा है।"

"ग्रच्छा ?"

"उस पत्थर की नींक एक श्रोर नीची है। उसीकी सीध में पचास हाथ की दूरी पर जाकर फिर उतना ही उस श्रोर मुड़ जाना चाहिए, जिस श्रोर पत्थर के सिरे पर एक नींक उठी हुई है। मनुष्य को वैभवशाली करके जंचा उठाने के लिए उसी स्थान पर एक हंडी में जपर तक लवालव सोने की मुहरें भरी हुई हैं।"

श्यामा का चेहरा हर्ष से उज्ज्वल हो उठा। बोली —तो चलो मीसी, उसे निकाल दें।

परन्तु इस बात से मीसी को कुछ अच्छा न मालूम इथा। शायद उन्होंने सोचा—यह खी कैसी है! मैं ने इतनी बड़ी बात बताई, परन्तु इसने कतज्ञता का एक



शब्द भी नहीं कहा। बोली—यह काम इस तरह उतावली में थोड़े किया जा सकता है। सब लोगों को मालूम हो जायगा।

ठीक 'तो है! ग्यामा को अपनी बुद्धि-हीनता पर लज्जा मालूम हुई। बोली—तो बताओं मीसी, क्या करूं?

पहले उस जगह एक छोटी-सी महदया बना लेनी चाहिए। शायद लच्मी देवी को अपना प्रकाश खयं देखने का बहुत शीक है, इसीसे वह अंधेरे स्थानों से निकलना पसन्द करती हैं। हां, यह तो तुमने कहा ही नहीं, उसमें से सुक्ते क्या दोगी?

श्वामा चिकत हो गई। बोली—यह क्या बात मीसी? मैं तो वह सब धन तुम्हारे ही लिए निकालने की बात सीच रही थी। मैं इतने धन का क्या करूंगी? मुभी तो कोई अभाव नहीं है।

मीसी ग्रानन्द के मारे उद्यल पड़ी। परन्त तुरन्त ही ग्रपने को संभाल कर बोली—मैं वह सब धन कैसे ले सकती हैं बेटी! तेरी यह कैसी बात कि सुभी कोई ग्रभाव नहीं है?

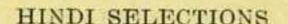
श्यामा को अपनी बात का प्रतिवाद सुनने का अभ्यास न था। चुसा हो कर बोली—भूठ बोलने की आदत मुक्ते नहीं। मैं ने सच ही कहा है, मुक्ते कोई अभाव नहीं है।

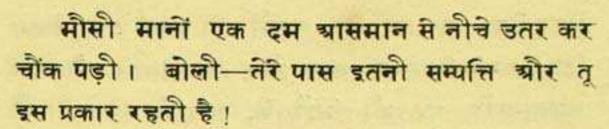


अब की बार मीसी गरम हो उठी। बोली—मैं नादान नहीं हं बेटी, जो मुर्स इस तरह बहलाना चाहती हो। तुम्हारे कुछ अभाव न होने की बात तो इस घर की बैठती हुई दीवारें ही कह रहीं हैं! यह खाट, ये लत्ते-कपड़े, ये इने-गिने बर्त्तन, यह तुम्हारा टूटा हुआ शरीर, सभी तो तुम्हारे अभाव न होने के साची हो रहे हैं! इतनी भोली न बनो। मैं ने क्या देखा नहीं है कि तबीयत ठीक न होने पर भी आज तुम्हें बाहर का नाज पीसे बिना घर का चूल्हा सुलगान की गित न थी।

चण-भर के लिए खामा निस्पन्द हो गई। कुछ देर बाद बोली—इस साल एसल बिलकुल नहीं हुई है, और मेरी तबीयत भी बिगड़ गई। इसीसे यह घर ऐसा हो रहा है। परन्तु यह सब तो मेरा अभाव है नहीं मीसी! इसके लिए तो मुक्त कभी कष्ट नहीं हुआ। परन्तु इस तरह तुम न मानोगी, इसलिए आज तुमसे मुक्त वह बात कहनी पड़ेगी, जो अब तक किसीसे नहीं कही।—यह कह कर वह वहां से उठ गई।

थोड़ी देर बाद वह कुछ ले आई, और मीसी के पैरों के पास मुड़ी खोल कर ख़ाली कर दी। उन्होंने देखा, कुछ कांच के-से टुकड़े हैं। उसने कहा—देखती हो मीसी, यह क्या है? यह सब धन अधिक नहीं, तो पचीस-तीस हज़ार का अवश्य होगा।





श्यामा ने कहा-हां मीसी, यही बात है। बहुत दिन हुए, एक विपन्न परिवार ने कुछ ज़ेवर हमारे यहां सोने के भाव से भी सस्ते बेचे थे। यह समभा गया था कि इसमें जड़े हुए नग मामूली कांच हैं। इसलिये सोना निकाल कर बेच दिया गया था, ये नग यहीं पड़े रहे। उस समय किसी कारण-वश एक सोने की अंगूठी नहीं बिक सकी। उस बार उनके फूलों के साथ वह श्रंगूठी ले कर मैं प्रयागराज गई। जिनके यहां उहरी, उन्हों के यहां बड़े घर की एक सेठानी ठहरी थीं। एक दिन अचानक दान में दी हुई मेरी वह अंगूठी देख कर वह चौंकीं। उन्होंने कहा—'यह तुम्हें कहां मिली? इसका नग तो बिलकुल पका है, पांच हजार से कम का न होगा।' सुन कर मुझे बड़ी क्लाई आई। स्वामी बिना चिकित्सा के रोग से घुल-घुल कर खगेवासी हो गये, और उनकी जेब में ही इतनी बड़ी निधि पड़ी रही। उसी समय मैं ने समभ लिया कि घर पर पड़े हुए बाकी के नग भी मामूली नहीं हैं। मेरे मन में याया, यभी घर जाकर ये नग चूर चूर कर दूं। फिर सोचा-नहीं, यह ठीक नहीं। जिन रत्नों ने कांच का



कपट-वेश रख कर मेरे खामी को इतना बड़ा घोखा दिया, उनके लिए यह दण्ड ठीक न होगा। मैं इन्हें उपेचा-पूर्वक घर की मिट्टी में, मामूली कांच की ही तरह, एक और डाल टूंगी। तभी से ये इसी तरह पड़े हुए हैं। खामी से कपट करने वाले रहीं से किसी तरह का समभौता मुक्त ठीक नहीं मालूम हुआ।

कहते-कहते घ्यामा की आंखों से भर-भर आंस् भर उठे। मीसी भी अपने को संभाल न सकी। उठ कर उसने घ्यामा को अंक में भर लिया। बोली—वेटी, मेरे सब तीर्थ, सब धर्म, सब कर्म पूरे हो गये, जो तुभ जैसी देवी के दर्भन मिले। अब मैं तुभासे एक बात और कहंगी। जिन महाला ने सुभी खित के उस धन का पता दिया है, उन्हें तेरे पाम ले आजंगी। जिस तरह खेत की मिटी अपने भीतर अपार धन रख कर भी सब जगह की साधारण मिटी जैसी ही बनी हुई है, उसी तरह वह महाला भी अपने भीतर अनन्त सिंदि साधारण साधु के वेश में किपाये हुए हैं। दया करके वह तेरे खामी की तुभासे मिला देंगे।

श्यामा ने कहा— चमा करो मौसी! इस समय मेरा जी न जाने कैसा हो गया है। स्वामी सब माया-



बन्धन कोड़ कर मृत्त हो चुके हैं। अब इस लोक की मिट्टी में घसीट कर मैं उनका आनन्द क्यों भड़ करूं? विपत्ति के डर से भी उन्होंने बाप-दादों का यह घर नहीं कोड़ा। अन्त-समय तक वह इसी में रहे। अब तो वह अपने सब पूर्वजों के बीच आनन्द से हैं। मेरे मन की तो सबसे बड़ी साध यही है कि समय आते ही उनकी सेवा में पहुंचूं, और पैरों पर सिर रख कर कह सकूं—'नाथ, मैं ने संसार को उसी प्रकार सहन कर लिया, जिस प्रकार तुमने।' बस और कुक नहीं।

मौसी की यांखों से भी भर-भर यांस् भरने लगे।

पार्वती ने कहा—चिलए नाथ, मुर्भ बहुत समय लग गया!

शंकर ने पूका—या गई देवि! भक्त को क्या दे याई'?

कुछ नहीं नाथ, आंखों से भिक्ति के आंसू भर ही। आपने ठीक ही कहा था, उसे कुछ नहीं दिया जा सकता। परन्तु इस हार के लिए मुक्ते लज्जा नहीं है।

भगवात ! तुम उसे एक वस्तु देना भूल गई' होगी। क्या स्वामिन ?



उसका खामी।

पत्यर की बेटी कह कर आप मेरी हंसी उड़ाया करते हैं। परन्तु भगवन्, मैं इतनी निर्बोध नहीं हं। उसके खामी अहर्निश उसके साथ हैं। यह अभाव भी उसे नहीं है। हां, इस विषय में मेरी एक प्रार्थना है।

निसांकोच कही देवि!

उसके खामी को कैलास-धाम में ही बुला लीजिए, जिसमें समय पर वह महीयसी सीधी वहीं आ कर उनसे मिल सके।

तथास्तु। अब तुमने बुक्क ठीक बात कही। तो चलो, और आगी चलें।

नहीं नाय, तीर्य-यात्रा करके सीधे घर को ही जाना चाहिए। इसलिए अब कैलाश को लीट चलिए। श्रीरामनवमी १८८७



याचरण की सभ्यता

विद्या, कला, किवता, साहित्य, धन श्रीर राजत्व से भी श्राचरण की सभ्यता श्रिधक ज्योतिषाती है। श्राचरण की सभ्यता को प्राप्त करके एक कंगाल श्रादमी राजाश्रों के दिलों पर भी श्रपना प्रभुत्व जमा सकता है। इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य श्रीर संगीत को श्रद्धत सिंदि प्राप्त होती है। राग श्रिक सृदु हो जाता है, विद्या का तीसरा श्रिव-नेत्र खुल जाता है, चित्र-कला मीन राग श्रलापने लग जाती है, वक्ता चुप हो जाता है, लेखक की लेखनी श्रम जाती है, मूर्ति बनानेवाले के सामने नए कपोल, नए नयन श्रीर नवीन क्रिव का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

श्राचरण की सभ्यतासय भाषा सदा सीन रहती है। इस भाषा का निघंटु श्रुड खेत पत्रोंवाला है। इसमें नाम मात्र के लिये भी शब्द नहीं। यह सभ्याचरण नाद करता हुआ भी मीन है, व्याख्यान देता हुआ भी व्याख्यान के पीछे छिपा है, राग गाता हुआ भी राग के सुर के भीतर पड़ा है। सदु वचनीं की मिठास में श्राचरण की सभ्यता मीन रूप से खुली



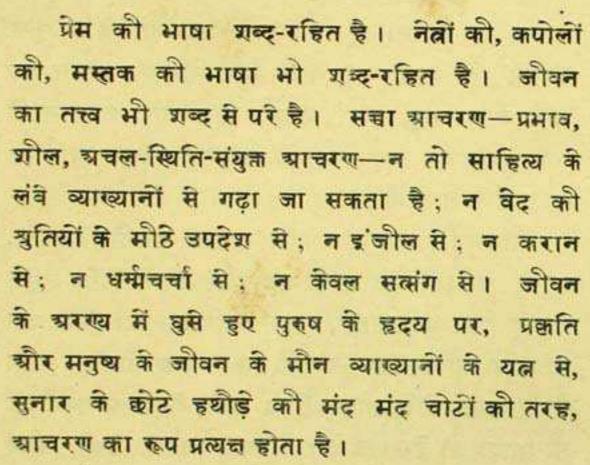
हुई है। नम्ब्रता, दया प्रेम श्रीर उदारता सबके सब सभ्याचरण की भाषा के मीन व्याख्यान हैं। मनुष्य के जीवन पर मीन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है श्रीर उसकी श्रात्मा का एक श्रंग हो जाता है।

न काला, न नीला, न पीला, न सुफेद, न पूर्वी, न पश्चिमी, न उत्तरी, न दक्तिणी, वे नाम, वे निशान, वे सकान-विशाल आत्मा के आचरण से मौनरूपिणी सुगंधि सदा प्रसारित चुत्रा करती है। इसके मीन से प्रसूत प्रेम और पविव्रता-धर्मा सारे जगत् का कल्याण करके विस्तृत होते हैं। इसकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाती है। तीच्य गरमी से जले भुने व्यक्ति श्राचरण के बादलों की बूंदा-बांदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन शरदतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगंधमय घटल वसंत ऋतु के आनंद का पान करते हैं। ग्राचरण के नेत्र के एक अशु से जगत् भर की नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के यानंद-तृत्य से उन्मदिषा होकर हत्तीं ग्रीर पर्वतीं तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं। आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नए नए विचार खयं ही प्रकट होने लगते हैं। सूखे काष्ट सचमुच ही हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों



में जल भर आता है। नए नेव मिलते हैं। कुल पदार्थी के साथ एक नया मैती-भाव फूट पड़ता है। सूर्थ, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास-पात, नर, नारी और बालक तक में एक अश्वतपूर्व संदर मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं।

मौनरूपी व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभाववती होती है कि उसके सामने क्या मात्रभाषा, क्या साहित्य-भाषा श्रीर क्या यन्य देश की भाषा—सबकी सब तुच्छ प्रतीत होती हैं। अन्य कोई भाषा दिव्य नहीं, केवल आचरण की मीनभाषा ही देखरीय है। विचार करके देखो, मीन व्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी में संदरता पिरो देता है। वह व्याख्यान ही क्या, जिसने हृदय की धुन को-मन के लच्च को-ही न बदल दिया। चंद्रमा की संद संद इंसी का-तारागण के कटाच-पूर्ण प्राक्तिक मीन व्याख्यान का प्रभाव किसी कवि के दिल में घुसकर देखी। सूर्यास्त होने के पथात्, श्रीकेशवचंद्र सेन श्रीर महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर ने सारी रात, एक चण की तरह, गुज़ार दी; यह तो कल की बात है। कमल और नरगिस में नयन देखनेवाले नेवों से पूछो कि मौन व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है।



वर्ष का दुपटा बांधे हुए हिमालय इस समय तो श्रित सुंदर, श्रित कंचा और गौरवान्वित मालूम होता है; परंतु प्रकृति न श्रिगणित श्रिताव्दियों के परिश्रम से रित का एक एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो डुबोकर और उसकी श्रपने विचित्र हथीड़ों से सुडील कर करके इस हिमालय के दर्शन कराए हैं। श्राचरण भी हिमालय की तरह एक जंचे कलश्रवाला मंदिर है। यह वह श्राम का पेड़ नहीं जिसकी मदारो एक जण में, तुम्हारी श्रांखों में धूल डालकर, श्रपनी हथेली पर जमा दे। इसके बनने में श्रनंत काल लगा है। एखी बन गई, सूर्य बन गया, तारागण श्राकाश में

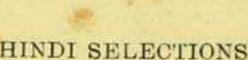


दौड़ने लगे; परंतु अभी तक आचरण के सुंदर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हुए। कहीं कहीं उसकी अत्यल्प कटा अवश्य दिखाई देती है।

पुस्तकों में लिखे हुए नुस्ख़ों से तो और भी अधिक बदहज्मी हो जाती है। सारे वेद और शास भी यदि घोलकर पी लिए जायं तो भी आदर्श आचरण की प्राप्ति नहीं होती। आचरण-प्राप्ति की दच्छा रखनेवाले को तर्क-वितर्क से कुछ भी सहायता नहीं मिलती। शब्द और वाणी तो साधारण जीवन के चोचले हैं। ये अाचरण की गुप्त गुहा में नहीं प्रवेश कर सकते। वहां दनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वेद इस देश में रहनेवालों के विश्वासानुसार ब्रह्म-वाणी हैं, परंतु इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी बाज तक वे समस्त जगत् की भिन्न भिन्न जातियों को संस्कृत भाषा न बुला सकी न समभा सकी न सिखा सके। यह बात हो कैसे ? ईखर तो सदा भीन है। ईखरीय मीन शब्द और भाषा का विषय नहीं। वह केवल शाचरण के कान में गुक-मंत्र फूंक सकता है। वह केवल ऋषि के ग्रंत करण में वेद का जानोदय कर सकता है।

तिसी का आचरण वायु के भोंके से हिल जाय तो हिल जाय, परंतु साहित्य और अब्द की गोलंदाज़ी





यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रचा के लिये—चाहे वह कन्या किसी जाति की हो, किसी मनुष्य की हो, किसी देश की हो- अपने आपको गंगा में फेंक दे—चाई फिर उसके प्राण यह काम करने में रहें या जायं तो इस कार्य के प्रेरक आचरण की मीनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में, और किस काल में, कौन नहीं समभ सकता? प्रेम का आचरण, उदारता का ग्राचरण, दया का ग्राचरण-क्या पशु श्रीर क्या मनुष्य—जगत् भर के सभी चराचर आप ही आप समभ लेते हैं। जगत् भर के बचों की भाषा इस भाष्यहीन भाषा का चिक्क है। बालकों के इस गुड मीन का नाद और हास्य भी सब देशों में एक ही सा पाया जाता है।

एक दफी एक राजा जंगल में शिकार खेलते खेलते रास्ता भूल गया। उसके साथी पीछे रह गए। घोड़ा उसका सर गया। बंदूक हाथ में रह गई। रात का समय या पहुंचा। देश बर्फानी, रास्ते पहाड़ी। पानी बरस रहा है। रात अंधेरी है। ओले पड़ रहे हैं। ठंडी हवा उसकी हडिडयों तक को हिला रही है। प्रक्रति ने, इस घड़ी, इस राजा को अनाथ बालक से भी अधिक बे-सरो-सामान कर दिया। इतने में दूर एक पहाड़ी की चोटी के नीचे टिमटिमाती हुई बत्ती



की ली दिखाई दी। कई मील तक पहाड़ के ऊंचे-नीचे उतार-चढ़ाव को पार करने से थका हुआ, भूखा श्रीर सर्दी से ठिठरा हुआ राजा उस बत्ती के पास पहुंचा। यह एक गरीब पहाड़ी किसान की कुटी थी। इसमें किसान, उसकी खी और उनके दो-तीन बचे रहते थे। किसान शिकारी राजा को अपनी भोपड़ी में ले गया। आग जलाई। उसके वस सुखाए। दो मोटी मोटी रोटियां और साग उसके आगे रखा। उसने खुद भी खाया और शिकारी को भी खिलाया। जन और रीक के चमड़े के नरम और गरम बिक्रीने पर उसने शिकारी को सुलाया। आप बे-बिक्रीने की भूमि पर सो रहा। धन्य है तू, हे मनुष्य! तू ई खर से क्या कम है ! तू भी तो पवित्र और निष्काम रचा का कर्ता है। तू भी आपन्न जनों का आपत्ति से उद्वार करनेवाला है।

शिकारी कई रूसों का ज़ार ही क्यों न हो, इस समय तो एक रोटी और गरम बिस्तर पर—अग्न की एक चिनगारी और टूटी क्टत पर— उसकी सारी राजधानियां बिक गईं। अब यदि वह अपना सारा राज्य उस किसान को, उसकी अमूल्य रचा के मोल में देना चाहे तो भी वह तुच्छ है; यदि वह अपना दिल ही देना चाहे तो भी वह तुच्छ है। अब उस निर्धन



और निरचर पहाड़ी किसान की दया और उदारता के कर्म के मीन व्याख्यान को देखी। चाहे शिकारी को पता लगे चाहे न लगे, परंतु राजा के अंतस् के मौन-जीवन में उसने ईखरीय श्रीदार्थ्य की क्लम गाड़ दी। शिकार में अचानक रास्ता भूल जाने के कारण जब इस राजा को ज्ञान का एक परमाणु मिल गया तब कीन कह सकता है कि शिकारी का जीवन अच्छा नहीं। क्या जंगल के ऐसे जीवन में, इसी प्रकार के व्याख्यानों से, मनुष्य का जीवन, शनै: शनै:, नया रूप धारण नहीं करता ? जिसने शिकारी के जीवन के दुःखीं को नहीं सहन किया उसको क्या पता कि ऐसे जीवन की तह में किस प्रकार के श्रीर किस सिठास के श्राचरण का विकास होता है। इसी तरह क्या एक मनुष्य के जीवन में और क्या एक जाति के जीवन में — पविव्रता ग्रीर ग्रपविव्रता भी जीवन के ग्राचरण को भली भांति गढ़ती है - ग्रीर उस पर भली भांति कुन्दन करती है। जगाई और सधाई यदि पक्षे लुटेरे न होते तो सहाप्रभु चैतन्य के याचरण-संबंधी मीन व्याख्यान को ऐसी हढ़ता में कैसे ग्रहण करते ? कीन कह सकता है कि जीवन की पवित्रता और अपवित्रता के प्रतिद्वंदी भाव से संसार के आचरणों में एक अइत पवित्रता का विकास नहीं होता! यदि मेरी माडिलिन विण्या न होती तो कौन उसे ईसा के पास ले जाता और ईसा के मीन व्याख्यान के प्रभाव से किस तरह आज वह हमारी पूजनीया माता बनती? कीन कह सकता है कि भ्रव की सीतेली माता अपनी कठोरता से ही भ्रव को अटल बनाने में वैसी ही सहायक नहा हुई जैसी कि स्वयं भ्रव की माता।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसके अाचरण को रूप देने के लिये नाना प्रकार के ज'च-नीच और भले-बुरे विचार, अमीरी और गरीबी, उन्नति श्रीर अवनति इत्यादि सहायता पहुंचाते हैं। पवित्र अपविव्रता उतनी ही बलवती है, जितनी कि पविव्र पवित्रता। जो कुछ जगत् में हो रहा है वह केवल श्राचरण के विकास के अर्थ हो रहा है। श्रंतरात्मा वहीं काम करती है जो बाह्य पदार्थीं के संयोग का प्रतिबिंब होता है। जिनको इस पविवासा कहते हैं, क्या पता है, किन किन कूपों से निकलकर वे अब उदय को प्राप्त इए हैं? जिनको इस धर्मात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन किन अधर्मी को करके वे धर्म-ज्ञान को पा सके हैं ? जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो अपने जीवन में पविव्रता को ही सब कुछ समभाते हैं, क्या पता है, वे कुछ काल पूर्व बुरी और अधर्मपूर्ण अपविव्रता में लिप्त रहे



हों ? अपने जन्मजन्मांतरों के संस्कारों से भरी हुई अंधकार-मय कोठरी से निकलकर ज्योति और खच्छ वाय से परिपूर्ण खुले हुए देश में जब तक अपना श्राचरण श्रपने नेत्र न खोल चुका हो तब तक धर्म के गूढ़ तत्त्व कैसे समभ में या सकते हैं। नेव-रिहत को सूर्य्य से क्या लाभ ? हृदय-रहित को प्रेम से क्या लाभ ? बहरे को राग से क्या लाभ ? कविता, साहित्य, पीर, पैगम्बर, गुरु, श्राचार्य, ऋषि श्रादि के उपदेशों से लाभ उठाने का यदि आत्मा में बल नहीं तो उनसे क्या लाभ ? जब तक जीवन का बीज पृथ्वी के मल-सूत्र के ढेर में पड़ा है, अथवा जब तक वह खाद की गरमी से अंकुरित नहीं हुआ और प्रस्फुटित होकर उससे दो नए पत्ते जपर नहीं निकल ग्राए, तब तक ज्योति ग्रीर वायु उसके किस काम के ?

जगत् के शनेक संप्रदाय अनदेखी और अनजानी वस्तुओं का वर्णन करते हैं; पर अपने नेत्र तो अभी माया-पटल से बंद हैं—और धर्मानुभव के लिये मायाजाल में उनका बंद होना आवश्यक भी है। इस कारण में उनके अर्थ कैसे जान सकता हं? वे भाव—वे आचरण—जो उन आचार्यों के हृदय में ये और जो उनके शब्दों के अंतर्गत मीनावस्था में पड़े

हुए हैं, उनके साथ मेरा संबंध, जब तक मेरा भी याचरण उसी प्रकार का न हो जाय, तब तक हो ही कैसे सकता है? ऋषि को तो मीन पदार्थ भी उपदेश दे सकते हैं; टूटे-फूटे शब्द भी अपना अर्थ भासित कर सकते हैं, तुच्छ से भी तुच्छ वस्तु उसकी आंखों में उसी महत्ता का चिक्क है जिसका चिक्क उत्तम उत्तम पदार्थ हैं। राजा में फकीर छिपा है और फकीर में राजा। बड़े से बड़े पंडित में मूर्ख छिपा है और बड़े से बड़े मूर्ख में पंडित। वीर में कायर और कायर में वीर सोता है। पापी में महातमा और महातमा में पापी ड्वा हुआ है।

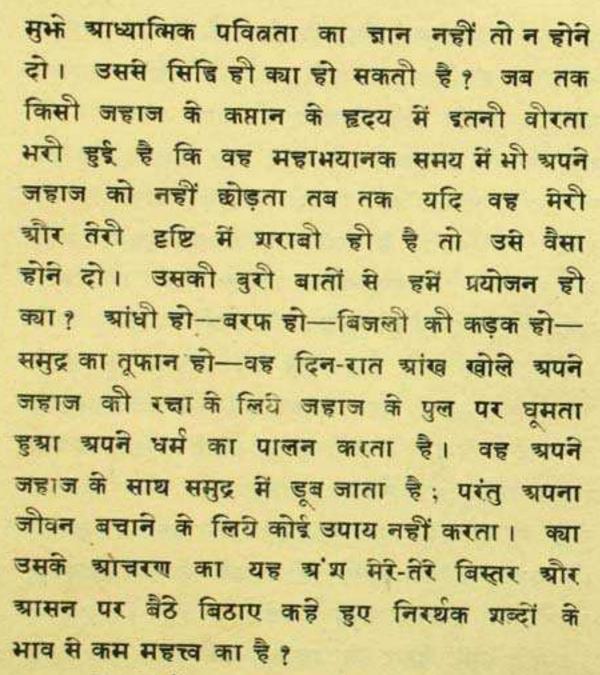
वह याचरण, जो धर्म-संप्रदायों के यनुचारित ग्रब्दों को सुनता है, हममें कहां ? जब वही नहीं तब फिर क्यों न ये संप्रदाय हमारे मानसिक महाभारतीं के कुरुचेत बनें ? क्यों न अप्रेम, अपवित्रता, हत्या और अत्याचार इन संप्रदायों के नाम से हमारा खून करें ? कोई भी धर्मसंप्रदाय आचरण-रहित पुरुषों के लिये कल्याणकारक नहीं हो सकता और आचरणवाले पुरुषों के लिये सभी धर्म-संप्रदाय कल्याणकारक हैं। सचा साधु धर्म को गौरव देता है, धर्म किसी को गौरवान्तित नहीं करता।

श्राचरण का विकास जीवन का परमोद्देश है।



श्राचरण के विकास के लिये जितने कर्म हैं उन सबको श्राचरण संघटित करनेवाले धर्म के अंग मानना पड़ेगा। चाहे कोई कितना ही बड़ा महातमा क्यों न हो वह निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यों ही करो, और किसी तरह नहीं। आचरण की सभ्यता की प्राप्ति के लिये वह सबको एक पथ नहीं बता सकता। आचरण-शील महातमा खयं भी किसी अन्य की बनाई हुई सड़क से नहीं आया; उसने ग्रपनी सड़क स्वयं ही बनाई थी। इसी से उसके बनाए हुए रास्ते पर चलकर हम भी अपने आचरण को बादर्श के ढांचे में नहीं ढाल सकते। इमें बपना रास्ता अपने ही जीवन की कुदाली की एक एक चोट से रात-दिन बनाना पहुंगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा। इर किसी को अपने देश-कालानुसार अपनी नैया आप ही चलानी पड़ेगी।

यदि मुर्क ईखर का ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान ही से क्या प्रयोजन? जब तक मैं अपना हथीड़ा ठीक ठीक चलाता हूं और रूपहीन लोहे को तलवार के रूप में गढ़ देता हूं तब तक यदि मुर्क ईखर का ज्ञान नहीं तो न होने दो। उस ज्ञान से मुर्क प्रयोजन ही क्या? जब तक मैं अपना उदार ठीक और शुद्ध रीति से किए जाता हूं तब तक यदि



न में किसी गिरजे में जाता हुं ग्रीर न किसी मंदिर में; न में नमाज़ पढ़ता हुं ग्रीर न रोज़ा ही रखता हुं; न सन्ध्या ही करता हुं ग्रीर न कोई देवपूजा ही करता हुं; न किसी ग्राचार्य के नाम का मुक्ते पता है ग्रीर न किसी के ग्राग मैंने सिर ही मुकाया है। इन सबसे प्रयोजन ही क्या ग्रीर



हानि भी क्या? मैं तो अपनी खेती करता हं; अपने इल श्रीर बैलीं को प्रात:काल उठकर प्रणाम करता हं; मेरा जीवन जंगल के पेड़ीं और पिचयों की संगति में बीतता है; आकाश के बादलों को देखते देखते मेरा दिन निकल जाता है। मैं किसी को धोखा नहीं देता; हां, अदि मुक्ते कोई घोखा दे तो उससे मेरी कोई हानि नहीं। मेरे खेत में अब उग रहा है; मेरा घर अब से भरा है; बिस्तर के लिये मुक्ते एक कमली काफी है, कमर के लिये एक लंगोटी श्रीर सिर के लिये एक टोपी बस है। हाथ-पांव मेरे बलवान् हैं; प्रारीर मेरा निरोग है; भूख खूब लगती है; बाजरा और मकर्ड, काक और दही, दूध और मक्खन मुक्ते और मेरे बची के लिये खाने को मिल जाता है। क्या इस किसान की सादगी श्रीर सचाई में वह मिठास नहीं जिसकी प्राप्ति के लिय भिन्न भिन्न धर्म-संप्रदाय लंबी-चौड़ी और चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा दीचा दिया करते हैं ?

जब साहित्य, संगीत और कला की यति ने रोम को घोड़े से उतारकर मखमल के गद्दों पर लिटा दिया—जब आलस्य और विषय-विकार की लंपटता ने जंगल और पहाड़ की साफ हवा के असभ्य और उदंड जीवन से रोमवालों का मुख मोड़ दिया तब

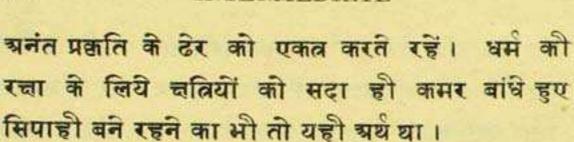
रोम नरम तिकयां और विस्तरों पर ऐसा सोया कि अब तक न आप जागा और न कोई उसे जगा ही सका। ऐंग्लो-सैक्सन जाति ने जो उच्च पद प्राप्त किया या वह उसने अपने समुद्र, जंगल और पर्वत से सम्बन्ध रखनेवाले जीवन से ही प्राप्त किया था। इस जाति को उन्नति लड़ने-भिड़ने, सरने-मारने, लूटने और लूटे जाने, शिकार करने और शिकार होनेवाले जीवन का ही परिणाम है। लोग कहते हैं कि केवल धर्म ही जाति को उन्नत करता है। यह ठीक है, परंतु वह धमांकुर, जो जाति को उन्नत करता है, इस असभ्य, कमीने और पाप-मय जीवन की गंदी राख के ढेर के जपर नहीं उगता है। मंदिरों और गिरजों की मंद मंद टिमटिमाती हुई मोमबत्तियों की रोशनी से यूरोप इस उचावस्था को नहीं पहुंचा। वह कठोर जीवन, जिसको देशदेशांतरीं को ढूंढ़ते फिरत रहने के बिना शांति नहीं मिलती; जिसकी शंतज्वीला दूसरी जातियों को जीतने, लूटने, मारने और उन पर राज करने के बिना संद नहीं पड़ती—केवल वही विशाल जीवन समुद्र की छाती पर मृंग दलकर और पहाड़ीं को फांदकर उनको उस महत्ता की ग्रोर ले गया ग्रीर ले जा रहा है। राबिन हुड की प्रशंसा में इंगलैंड के जो कवि अपनी सारी शक्ति खर्च कर



देते हैं उन्हें तत्त्वदर्शी कहना चाहिए; क्योंकि राबिन हुड जैसे भौतिक पदार्थी से ही नेलसन और वेलिंगटन जैसे अंगरेज वीरों की हडिडयां तैयार हुई थीं। लड़ाई के आजकल के सामान—गोले, बारूद, जंगी जहाज और तिजारती वेड़ी आदि—को देखकर कहना पड़ता है कि इनसे वर्तमान सभ्यता से भी कहीं अधिक उच्च सभ्यता का जन्म होगा।

यदि यूरोप के समुद्रों में जंगी जहाज मिक्वयों की तरह न फैल जाते और यूरोप का घर घर सोने और हीर से न भर जाता तो वहां पदार्थ-विद्या के सचे आचार्य और ऋषि कभी न उत्पन्न होते। पश्चिमीय ज्ञान से मनुष्य मात्र को लाभ हुआ है। एक तरफ यदि यूरोप के जीवन का एक अंश असभ्य प्रतीत होता है—कमीना और कायरता से भरा हुआ मालूम होता है—तो वहीं दूसरी और यूरोप के जीवन का वह भाग, जिसमें विद्या और ज्ञान के ऋषियों का सूर्य चमक रहा है, इतना महान् है कि थोड़े ही समय में पहले अंश को मनुष्य अवश्य ही भूल जायंगे।

धर्म ग्रीर ग्राध्यात्मिक विद्या के पौधे को ऐसी ग्रारोग्य-वर्धक भूमि देने के लिये, जिससे वह प्रकाश ग्रीर वायु में खिलता रहे, सदा फूलता रहे, सदा फलता रहे, यह ग्रावश्यक है कि बहुत से हाथ एक



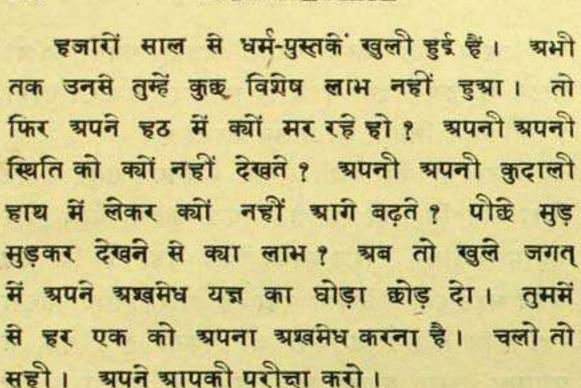
हिंदुओं का संबंध यदि किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ रहा होता तो उनके वर्तमान वंश में अधिक बलवान् श्रेणी के मनुष्य होते—तो उनके भी ऋषि, पराक्रमी, जनरल श्रीर धीर-वीर पुरुष उत्पन्न होते। ग्राजकल तो वे उपनिषदों के ऋषियों के पविव्रता-मय प्रेम के जीवन को देख देखकर अहंकार में मग्न हो रहे हैं और दिन पर दिन अधोगित को श्रीर जा रहे हैं। यदि वे किसी जंगली जाति की संतान होते तो उनमें भी ऋषि श्रीर बलवान् योडा होते। ऋषियों को पैदा करने के योग्य असभ्य पृथ्वी का बन जाना तो आसान है; परंतु ऋषियों को अपनी उन्नति के लिये राख और पृथ्वी बनाना कठिन है; क्योंकि ऋषि तो केवल अनंत प्रकृति पर सजते हैं; हमारी जैसी पृष्य-शय्या पर सुरक्षा जाते हैं। माना कि प्राचीन काल में, यूरोप में सभी असभ्य थे ; परंतु याजकल तो हम यसभ्य हैं। उनकी ग्रसभ्यता के जपर ऋषि-जीवन की उच्च सभ्यता फुल रही है और हमारे ऋषियों के जीवन के फूल की श्या पर श्राजकल श्रसभ्यता का रंग चढ़ा हुआ है।



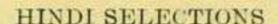
सदा ऋषि पैदा करते रहना, अर्थात् अपनी ऊंची चोटी के ऊपर इन फूलों को सदा धारण करते रहना ही जीवन के नियमों का पालन करना है।

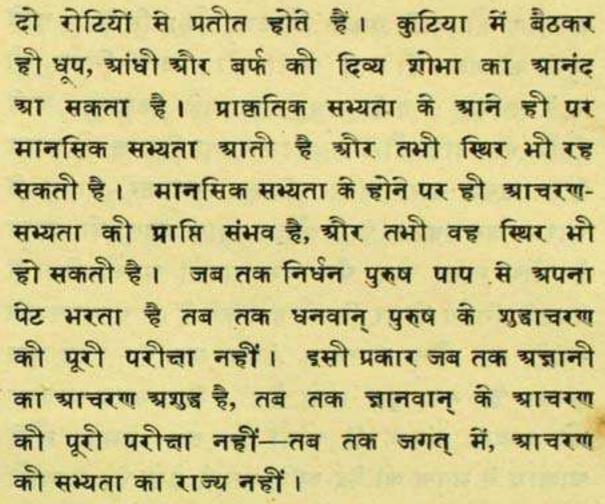
तारागणीं को देखते देखते भारतवर्ष समुद्र में अब गिरा तब गिरा हो रहा है। एक कदम और, और धड़ाम से नीचे! कारण इसका केवल यही है कि यह अपने अट्ट स्वप्न में देखता रहा है और निश्चय करता रहा है कि मैं रोटी के बिना जी सकता हं; हवा में पद्मासन जमा सकता हं; एक्वी से अपना आसन उठा सकता हं; योगसिंदि हारा सूर्य्य और तारी के गूढ़ भेदों को जान सकता हं; समुद्र की लहरीं पर वेखटके सो सकता हं। यह इसी प्रकार के स्वप्न देखता रहा; परंतु अब तक ऐसी एक भी बात सत्य सिंद्र नहीं हुई। यदि अब भी इसकी निद्रा न खुली तो वेधड़क प्रांख फूंक दो! कूच का घड़ियाल बजा दो! कह दो, भारतवासियों का इस असार संसार से कूच हुआ।

लेखक का तात्पर्य केवल यह है कि आचरण केवल मन के खप्नों से नहीं बना करता। उसका सिर तो शिलाओं के जपर धिस धिसकर बनता है; उसके फूल सूर्य की गरमी और समुद्र के नमकीन पानी से बारंबार भीगकर और सूखकर अपनी लाली पकड़ते हैं।



धर्म के याचरण की प्राप्ति यदि जपरी याडंबरों से होती तो याजकल भारत-निवासी स्र्य्य के समान युद्ध याचरणवाले हो जाते। भाई! माला से तो जप नहीं होता। गंगा नहाने से तो तप नहीं होता। पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुया करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती है; यांधी, पानी और साधारण जीवन के जंच-नीच, गरमी-सरदी, गरीबी-यमीरी के भिलने से तप हुया करता है। याध्यात्मिक धर्म के खप्नों की गोभा तभी भली लगती है जब यादमी यपने जीवन का धर्म पालन करे। खुले समुद्र में यपने जहाज पर बैठकर ही समुद्र की याध्यात्मिक शोभा का विचार होता है। भूखे को तो चंद्र और सूर्य भी केवल याटे की बड़ी बड़ी





याचरण की सभ्यता का देश ही निराला है।
उसमें न शारीरिक भगड़े हैं, न मानसिक, न
याध्यात्मिक। न उसमें विद्रोह है, न जंग ही का
नामोनिशान है और न वहां कोई ऊंचा है, न
नीचा। न कोई वहां धनवान् है और न कोई
निर्धन। वहां तो प्रेम और एकता का अखंड राज्य
रहता है।

हर एक पदार्थ को परमाणुश्रों में परिणत करके उसके प्रत्येक परमाणु में अपने आपको ढूंढ़ना—अपने आपको -एकत्र करना—अपने आचरण को प्राप्त करना है।

श्राचरण की प्राप्ति एकता की दशा की प्राप्ति है। चाहे फुलों की शया हो चाहे कांटों की; चाहे निर्धन हो चाहे धनवान् ; चाहे राजा हो चाहे किसान ; चाहे रोगी हो चाहे नीरोग-हृदय इतना विशाल हो जाता है कि उसमें सारा संसार बिस्तर लगाकर ग्रानंद से आराम कर सकता है; जीवन आकाशवत् हो जाता है और नाना रूप और रंग अपनी अपनी शोभा में बेखटके निर्भय होकर स्थित रह सकते हैं। आचरणवाले नयनों का मीन व्याख्यान केवल यह है-"सब कुछ श्रच्छा है, सब कुछ भला है।" जिस समय श्राचरण की सभ्यता संसार में श्राती है उस समय नीले त्राकाश से मनुष्य को वेद-ध्वनि सुनाई देती है, नरनारी पुष्पवत् खिल जाते हैं ; प्रभात हो जाता है, प्रभात का गजर बज जाता है, नारद की वीणा अलापने लगती है, भ्रुव का ग्रांख गूंज उठता है; शिव का डमरू बजता है, क्रिया की बांसरी की धुन प्रारंभ हो जाती है। जहां ऐसे शब्द होते हैं, जहां ऐसे पुरुष रहते हैं, जहां ऐसी ज्योति होती है, वहीं ग्राचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है। वही देश मनुष्य का खदेश है। जब तक घर न पहुंच जाय, सोना अच्छा नहीं। चाहे वेदों में, चाहे इंजील में, चाहे कुरान में, चाहे विषिटक में, चाहे इस स्थान में, चाहे



HINDI SELECTIONS

उस स्थान में, कहीं भी सोना अच्छा नहीं। आलस्य मृत्यु है।

लेख तो पेड़ों के चित्र सदृश होते हैं, पेड़ तो होते ही नहीं जो फल लावें। लेखक ने यह चित्र इसलिये श्रंकित किया है कि इस चित्र को देखकर शायद कोई असली पेड़ को जाकर देखने का यत्न करे।



पद्यांश

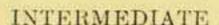
CONTRACTOR OF THE STATE OF THE

CENTRAL LIBRARY

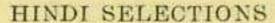
कबीर की साखियां

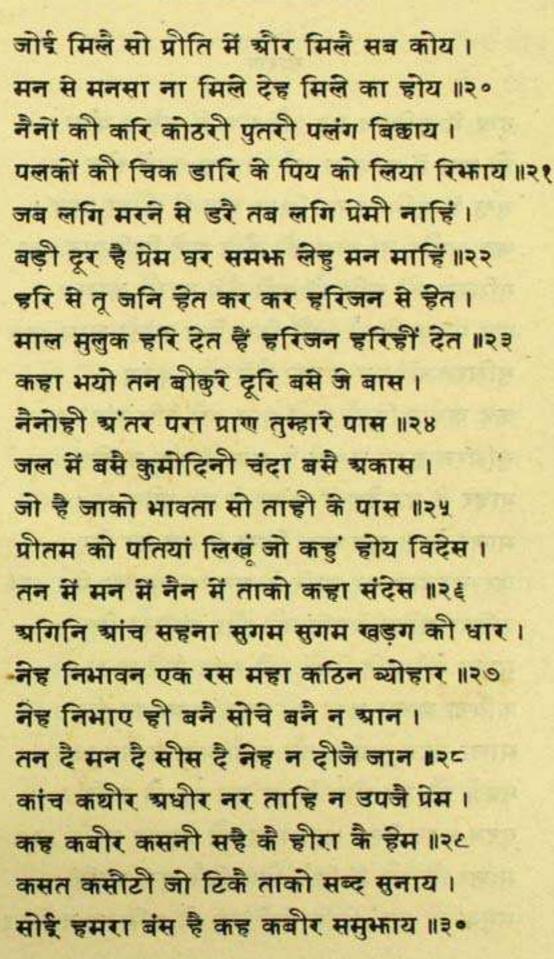
प्रेम

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे भुद्रं धरे तब पैठे घर माहिं॥१ सीस उतारे भुद्रं धरे ता पर राखे पाव। दास कबीरा यों कहै ऐसा होय ती आव ॥२ प्रेम न बाड़ी जपजै प्रेम न हाट बिकाय। राजा परजा जिहिं रुचै सीस देद लै जाय ॥३ प्रेम पियाला जो पियै सीस दिच्छना देय। लोभी सीस न दै सकी नाम प्रेम का लिय ॥४ किन हिं चढ़ें किन जतरे सो तो प्रेम न होय। अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सीय ॥५ जब में यां तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं। ग्रेम गली अति सांकरी ता मैं दो न समाहिं॥ई जा घट प्रेम न संचरे सो घट जान मसान। जैसे खाल लोहार की सांस लेत बिनु प्रान ॥७ उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास। तिनका तिनका से मिला तिन का तिन के पास ॥८



सी जोजन साजन बसै मानो हृदय मंभार। कपट सनेही यांगने जानु समुदर पार ॥८ यह तत वह तत एक है एक प्रान दुइ गात। अपने जिय से जानिए मेरे जिय को बात ॥१० इम तुम्हरो सुमिरन कर तुम मोहिं चितवी नाहिं। सुमिरन मन की प्रीति है सो मन तुमहीं माहिं॥११ प्रीति जो लागी घुल गई पैठि गई मन माहिं। रोम रोम पिड पिड करें मुख की सरधा नाहिं॥१२ जो जागत सो खप्न में ज्यों घट भीतर खांस। जो जन जाको भावता सो जन ताकी पास ॥१३ पीया चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान। एक स्थान में दो खड़ग देखा सुना न कान ॥१४ कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय। रोम रोम में रिम रहा और अमल क्या खाय ॥१५ कबिरा इम गुरु रस पिया बाको रही न छाक। पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़सी चाक ॥१६ सबै रसायन में किया प्रेम समान न कीय। रती एक तन संचर सब तन कंचन होय ॥१७ राता माता नाम का पीया प्रेम अवाय। मतवाला दीदार का मांगै मुकुति बलाय ॥१८ मिलना जग में कठिन है मिलि बिकुड़ी जिन कोय। बिकुड़ा साजन तेहि मिलै जिन माथे मनि होय॥१८







दुख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कीय। जो सुख में सुमिरन कर तो दुख काई होय ॥३१ सुख में सुमिरन ना किया दुख में कीया याद। कइ कबीर ता दास की कीन सुनै फिरियाद ॥३२ सुमिरन की सुधि यों करी जैसे कामी काम। एक पलक बिसरे नहीं निस दिन बाठी जाम ॥३३ सुमिरन सीं मन लाइए जैसे नाद क्रांग। कह कबीर बिसरे नहीं प्रान तजे तेहि संग ॥३४ सुमिरन सुरत लगाइ के मुख तें कछू न बोल। बाहर के पट देइ के अंतर के पट खोल ॥३५ माला फेरत जुग गया फिरा न मन का फेर। कर का मन का डारि दे मन का मनका फेर ॥३६ कबिरा माला मनहिं की और संसारी भेख। माला फेरे हरि मिलें गले रहंट के देख ॥३७ कविरा माला काठ की बहुत जतन का फेर। माला खास उसास की जामें गांठ न मेर ॥३८ सइजै ही धुन होत है हर दम घट के माहिं। सुरत सबद मेला भया मुख की हाजत नाहिं॥३८ माला ती कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं। मनुवां तो दहुं दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं॥४०



HINDI SELECTIONS

तन थिर मन थिर बचन थिर सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर एहि पलक का कलप न पार्व कीय ॥४१
जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में ताहि काल नहि खाय ॥४२
कबिर कुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको ट्कड़ा डारि के सुमिरन करी निसंक ॥४३
विश्वास

किवरा का मैं चिंतह' सम चिंते का होय।

सरी चिंता हिर करें चिंता सोहिं न कोय ॥४४

साधू गांठि न बांधई उदर समाता लेय।

श्राग पाके हिर खड़े जब मांगे तव देय ॥४५

पी फाटी पगरा भया जागे जीवा जून।

सब काह को देत है चींच समाता चून ॥४६

करम करीमा लिखि रहा श्रव कुछ लिखा न होय।

मासा घटै न तिल बढ़े जो सिर फोरै कोय ॥४०

साई' इतना दीजिए जामें कुटुंम समाय।

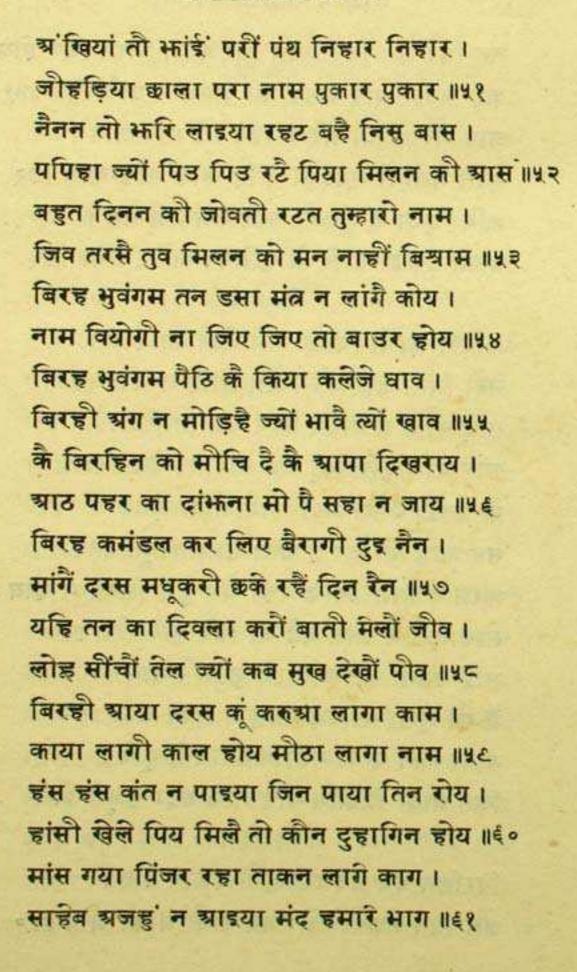
मैं भी भूखा ना रह्रं साधु न भूखा जाय॥४८

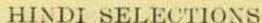
गाया जिन पाया नहीं श्रनगाए तें दूरि।

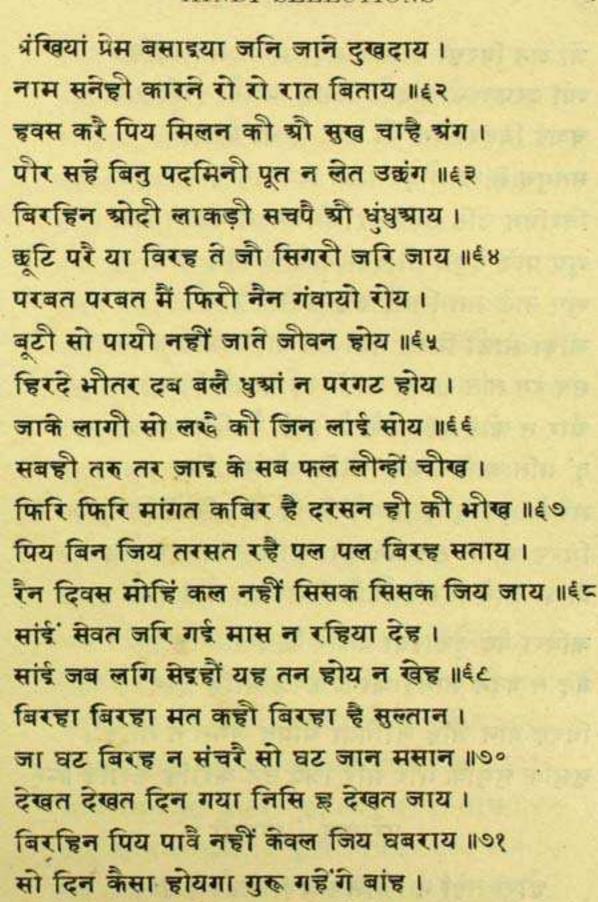
जिन गाया विस्तास गहि ताके सदा हजूरि ॥४८

बिरहिन

बिरहिन देय संदेसरा सुनी हमारे पीव। जल बिन मक्सी क्यों जिए पानी में का जीव॥५०







अपने कर बैठावहीं चरनकंवल की छांइ ॥७२



जो जन बिरही नाम के सदा मगन मन मांहि। ज्यों दरपन की सुंदरी किनइ पकरी नाहिं॥७३ चकई विकुरी रैन की आय मिली परभात। सतगुरु से जो बीकुरे मिले दिवस निहं रात ॥७४ बिरहिन उठि उठि भुद्रं परै दरमन कारन राम। मूए पाछे देहुगे सो दरसन केहि काम ॥७५ मूए पाछे मत मिली कहै कबीरा राम। लोहा माटी मिलि गया तब पारस केहि काम ॥७६ सब रग तांत रवाब तन बिरह बजावै नित्त। श्रीर न कोई सुनि सके के सांई के चित्त ॥७७ तुं मित जानै बीसक्ं प्रीति घटै मम चित्त। मरोंती तुम सुमिरत मरीं जिश्रों ती सुमिरीं नित्त ॥७८ बिरह अगिन तन मन जरा लागि रहा तत जीव। कै वा जाने बिरहिनी के जिन भेंटा पीव ॥७८ कबिरा बैद बुलाइया पकरि के देखी बांह। बैद न बेदन जानई करक करेजे माहिं॥८० बिरह बान जीहि लागिया श्रीषध लगत न ताहि। सुसुकि सुसुकि मरि मरि जियै उठै कराहि कराहि॥८१

परीचक (पारखी)

हीरा तहां न खोलिए जहं खोटी है हाट। कस करि बांधो गाठरी उठिकर चाली बाट ॥ ८२



हीरा पाया परिख के घन में दीया आन। चोट सही फूटा नहीं तब पाई पहिचान ॥८३ जो इंसा मोती चुगै कांकर क्यों पतियाय। कांकर माथा ना नवे मोती मिले तो खाय ॥८४ हंसा बगुला एक सा मानसरोवर माहिं। बगा ढंढोरै माक्ररी हंसा मोती खाहिं॥८५ चंदन गया बिदेसड़े सब कोइ कहै पलास। ज्यों ज्यों चूल्हे भोंकिया त्यों त्यों ऋधिकी बास ॥८६ एक अचंभा देखिया हीरा हाट विकाय। परखनहारा बाहिरी कीड़ी बदले जाय ॥८७ दाम रतन धन पाइकै गांठि बांधि ना खोल। नाहिं पटन नहिं पारखी नहिं गाहक नहिं मोल ॥८८ पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया परख भया टकसार ॥८८ असत केरी पूरिया बहु बिधि लीन्ही छोरि। ग्राप सरीखा जो मिले ताहि पित्राजं घोरि ॥८० काजर ही की कोठरी काजर ही का कोट। ती भी कारी ना भई रही जो बोटहिं बोट ॥८१ ज्ञान रतन की कोटरी चुप करि दीन्ही ताल। पारिख आगे खोलिए कुंजी बचन रसाल ॥८२ नग पखान जग सकल है लखि आवे सब कोइ। नग ते उत्तम पारखी जग में बिरला कोइ ॥८३



बिलहारी तिहि पुरुष की पर चित परखनहार।
साई दोन्ही खांड़ को खारी बूभ गंवार ॥८४
हीरा वही सराहिए सहै घनन की चोट।
कपट कुरंगी मानवा परखत निकसा खोट॥८५
हीरा परा बजार में रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चिल गए पारिख लिया उठाय॥८६
किल खोटा जग आंधरा सबद न मानै कोय।
जाहि कहैं। हित आपना सो उठि बैरी होय॥८७
—कबीरदास।

श्री उद्धव को मधुरा से ब्रज भेजते समय की कवित्त

न्हात जमुना में जलजात एक देखी जात
जाकी अध-ऊरध अधिक मुरभायी है।
कहै रतनाकर उमिह गिह स्थाम ताहि
बास-बासना में नेंकु नासिका लगायी है॥१
त्योंहीं कछ वूमि भूमि बेसुध भए के हाथ
पाय पर उखरि अभाय मुख छायी है।
पाए घरी हैक में जगाद खाद ऊधी तीर
राधा-नाम कीर जब श्रीचक सुनायी है॥२



आए भुज-बंध दिए जधव-सखा कें कंध डग-मग पाय मग धरत धराए हैं। कहै रतनाकर न बूकें ककु बोलत श्री खोलत न नैन हं अचैन चित छाए हैं॥३

पाइ बहे कं ज मैं सुगंध राधिका की मंजु
ध्याए कदली-बन मतंग लीं मताए हैं।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सीं
नीकैं तहां नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं॥

देखि दूरि ही तें दीरि पीरि लगि भेंटि ल्याइ श्रासन दे सांसनि समेटि सकुचानि तें। कहै रतनाकर यों गुनन गुबिंद लागे जीलों ककू भूले से भ्रम से श्रकुलानि तें॥ ५

कहा कहैं जधी सीं कहैं हां तो कहां लों कहें कैसें कहैं कहें पुनि कीन सी उठानि तें। तीलों अधिकाई तें उमिंग कंठ आद सिंचि नीर हीं बहन लागी बात अंखियानि तें॥ई

बिरइ-बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सीं।
कहै रतनाकर बुभावन लगे ज्यों कान्ह
जधी की कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सीं॥०

गहबरि श्रायी गरी भभरि श्रचानक त्यों
प्रेम पर्यी चपल चुचाइ पुतरीनि सीं।
नैंकु कही बैननि, श्रनेक कही नैननि सीं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सीं॥

नंद श्री जसोमित के प्रेम-पर्ग पालन की लाड़-भरे लालन की लालच लगावती। कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सीं मढ़ी मंजु स्गनैनिनि के गुन-गन गावती॥८

जमुना-कक्टारिन की रंग-रस-रारिन की बिपिन-बिद्धारिन की होंस हुमसावती। सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की जधी नित हमकों बुलावन को आवती॥१०

चलत न चार्यो भांति कोटिनि बिचार्यो तज दाबि दाबि हार्यो पै न टार्यो टसकत है। परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली चाह-चिमटी हं सों न खेंची खसकत है॥११

कढ़त न क्यों हं हाय बिथके उपाय सबै धीर-श्राक-छीर हं न धारें धसकत है। जधी ब्रज-बास के बिलासनि की ध्यान धंस्यी निसि-दिन कांटे लीं करेजें कसकत है॥१२



रूप-रस पीवत अघात ना इते जो तब सोई अब आंस है उबरि गिरिबी करें। कहै रतनाकर जुड़ात इते देखें जिन्हें याद किए' तिनकीं अंवां सीं घिरिबी करें॥१३

दिननि के फेर सों भयी है हेर-फेर ऐसी जाकों हिर फेरि हेरिबीई हिरिबी करें। फिरत हुते जू जिन कुंजिन मैं आठों जाम नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबी करें॥१४

गोक्त की गैल-गैल गैल-गैल ग्वालिन की गोरस कें काज लाज-बस के बहाइबी। कहै रतनाकर रिभाइबी नवेलिनि कीं गाइबी ग्वाइबी श्री नाचिबी नचाइबी॥१५

कीबी समहार मनुहार के बिविध विधि
मोहिनी सदुल मंजु बांसरी बजाइबी।
जधी सख-संपति-समाज ब्रज-मंडल के
भूलें ह' न भूलें भूले हमकों भुलाइबी॥१६

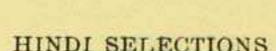
मोर के पखीवनि की मुकुट छबीली छोरि कीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा। कहै रतनाकर त्यों माखन-सनेही बिनु षट-रस ब्यंजन चवाइ करिहें कहा॥१९ गोपी ग्वाल-बालिन कों भोकि बिरहानल में हरि सुर-ब्रंद की बलाइ करिहैं कहा। प्यारी नाम गोबिंद गुपाल की बिहाइ हाय ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा॥१८

कहत गुपाल माल मंजु मिन-पुंजिन की
गुंजिन की माल की मिसाल कि कि कार्व ना।
कहै रतनाकर रतन-मै किरीट अच्छ
मोर-पच्छ-अच्छ-लच्छ-अंसई सु-भाव ना॥१८

जसमित मैया की मलैया अरु माखन की काम-धेनु-गोरस इ गूढ़ गुन पार्व ना। गोकुल की रज के कनूका भी तिनूका सम संपति विलोक की बिलोकन मैं भाव ना॥२०

राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सीं प्रेम-रतनाकर हियें यों उमगत है। त्योंहीं विरहातप प्रचंड सीं उमंडि ग्रति जरध उसास की भकोर यों जगत है॥२१

केवट बिचार की बिचारी पिच हारि जात होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है। करत गंभीर धीर-लंगर न काज कक मन की जहाज डिंग डूबन लगत है॥२२



मील-सनी सुरुचि सु-बात चलें पूरव की
ग्रीर श्रोप उमगी हगनि मिदुराने तें।
कहै रतनाकर अचानक चमक उठी
उर घनस्थाम कें अधीर अकुलाने तें॥२३

श्रासाक्षत्र दुरदिन दीस्थी सुरपुर माहिं ब्रज मैं सुदिन बारि-ब्रंद हरियाने तें। नीर की प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यी धीर बह्यी जधी-जर-श्रचल रसाने तें॥२४

प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत
जधव अवाद रहे ज्ञान-ध्यान सरके।
कहै रतनाकर धरा की धीर धूरि भयी
भूरि-भीति-भारनि फनिंद-फन करके॥२५

सुर सुर-राज सुड-स्वारथ-सुभाव-सने
संसय समाए धाए धाम बिधि हर के।
आई फिरि औप ठाम-ठाम ब्रज-गामनि के
बिरहिनि बामनि के बाम अंग फरके॥२६

हेत-खेत माहिं खोदि खाई' सुद खारथ की प्रेम-त्रन गोपि राख्यी ताप गमनी नहीं। करिनी प्रतीति-काज करनी बनावट की राखी ताहि हिरे हियें होंसनि सनी नहीं॥२०

घात में लगे हैं ये बिसासी ब्रजबासी सबै इनके अनोखे कल-कंदनि कनी नहीं। बारनि कितेक तुम्हें बारन कितेक करें बारन-उबारन है बारन बनी नहीं॥२८

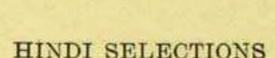
पांची तत्त्व माहिं एक सत्त्व ही की सत्ता सत्य याही तत्त्व-ज्ञान की महत्त्व सुति गायी है।

तुम ती विवेक रतनाकर कही क्यों पुनि भेद पंचभौतिक के रूप में रचायी है ॥२८

गोपिनि में, आप में, वियोग श्री संजोग हं में एके भाव चाहिए सचीप ठहरायी है। आपु ही सों आपुकी मिलाप श्री विक्रोह कहा मोह यह मिथा सुख-दुख सब ठायी है ॥३०

दिपत दिवाकर कों दीपक दिखावे कहा तुमसन ज्ञान कड़ा जानि कड़िबो करें। कहै रतनाकर पै लीकिक-लगाव मानि सरम अलीकिक की याह यहिबी करें ॥३१

यसत यसार या पसार में हमारी जान जन भरमाए सदा ऐसे रिहबी करें। जागत औ पागत अनेक परपंचनि मैं जैसें सपने में अपने कों लिइबी करें ॥३२



हा! हा! इन्हें रोजन कों टोज न लगावी तुम बिसद - बिबेज - ज्ञान - गौरव - दुलारे है। प्रेम-रतनाकर कहत इसि जधव सीं यहरि करेजी थासि परम दुखारे हैं॥३३

सीतल करत नैंकु हीतल हमारी परि विषम-वियोग - ताप - समन पुचारे है। गोपिनि के नैन-नीर ध्यान-नलिका है धाद

दगिन हमारें आद इटत पुहारे है।।३४

प्रेम-नेम निफल निवारि उर-श्रंतर तें , ब्रह्म-ज्ञान श्रानंद-निधान भरि लैहें हम।

कहै रतनाकर सुधाकर सुखीनि ध्यान ग्रांसुनि सीं धोद जोति जोद जिर लैहें हम ॥३५

श्रावो एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहें हम। मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर-श्रांखिनि सौं जधव तिहारी सीख भीख करि लैहें हम॥३६

बात चलें जिनकी उड़ात घीर घूरि भयी
जधी मंत्र फूंकन चले हैं तिन्हें ज्ञानी है।
कहै रतनाकर गुपाल के हिये मैं उठी
हक सूक भायनि की अकह कहानी है॥३०



गहबर कंठ है न कढ़न संदेस पायी नैन-मग तीलीं श्रानि बैन श्रगवानी है। पाकत प्रभाव सीं पलट मनमानी पाइ पानी श्राज सकल संवार्यी काज बानी है॥३८

जधव कें चलत गुपाल उर माहिं चल-

आतुरी मची सो परै कहिन कबीनि सों। कहैरतनाकर हियो इंचलिबै कों संग

लाख अभिलाष लै उमहि बिक्लीनि सौं ॥३८

यानि हिचकी है गरें बीच सकस्यीई परै

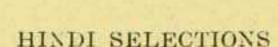
खेद है रस्थोई परै रोम-भंभरीनि सौं। ग्रानन-दुवार तें उसांस है बढ़गीई परै ग्रांस है कढ़यीई परै नैन-खिरकीनि सौं॥४०

-- जगन्नायदासजी 'रत्नाकर'।

सूरदास की पद

राग विलावल

नंद घरिन ग्रानंदभरी सृत स्थाम खेलावै। कबिं घुटुक्विन चलिंगे कि विधित्तं मनावै॥ कबिं दंतुली दे दूध की देखों दन नैनिन। कबिं कमलमुख बोलिहैं सुनिहों उन बैनिन॥



चूमित कर पग अधर पुनि लटकित लट चूमित। कहा बरिन 'सूरज' कहै कहां पावे सो मित ॥१
राग विलावल

जसमित मन श्रमिलाष करे।

कव मरो लाल घुटुक्वन रंगे कव धरनी पग देक धरे॥

कव दे दंत दूध के देखों कब तुतर मुख बैन भरे।

कव नंदि कि बाबा बोले कब जननी कि मोहि ररे॥

कव मरो श्रंचरा गिंह मोहन जोद्र सोद कि मोसों भगरे।

कव घों तनक तनक ककु खैहै अपने कर सो मुखिंहं भरे॥

कव हंसि बात कहैगो मोसों छिब पेखत दुख दूरि टरे।

स्थाम श्रकेले श्रांगन छांड़े श्रापु गई ककु काज घरे॥

एहि श्रंतर श्रंधवाद उठी दक गरजत गगन सहित थहरे।

'स्रदास' बज लोग सनत धुनि

जो जहं तहं सब मतिहि डरै॥२ राग धनाश्री

हरि किलकत जसुदा की किनयां। निरुखि निरुखि सुख इंसति स्थाम

को मो निधनी के धनियां॥

श्रित कोमल तनु स्थाम को बार बार पिक्रतात।

कैसे बच्चो जाउं बिल तेरी द्यनावर्त के घात॥

ना जानी धीं कौन पुन्य तें कों किर लेत सहाइ।

वैसो काम पूतना कीनो इहि ऐसो कि खो शाई॥



माता दुखित जानि इरि बिइंसे नान्हीं दंतुरि दिखाई। 'स्रदास' प्रभु माता चित तें दुख डाखो बिसराई॥३

राग धनाश्री

कहां लों बरनी सुन्दरताई। खेलत कुंवर कनक ग्रांगन में नैन निरखि छवि छाई॥ कुलहि लसत सिर स्थाम सुभग

श्रति बहुबिधि सुरंग बनाई। मानो नव घन जपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई॥ श्रति सुदेस सुदु चिकुर हरत

मन मोइन मुख बगराई।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल चलि चवली फिरि चाई॥
नील सेत पर पीत लालमनि लटकन भाल लुनाई।
सनि गुरु-चसुर देवगुरु मिलि

मनी भीम सहित समुदाई॥
दूध दंत दुति किह न जाति श्रित श्रदभुत एक उपमाई।
किलकत हंसत दुरत प्रगटत मनी घन में बिज्जु छपाई॥
खंडित बचन देत पूरन सुख श्रलप जलप जलपाई।
घुटुकन चलत रेनु तनु मंडित 'स्रदास ' बिल्जाई॥४

राग बिलावल

सिखवत चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धर पैया॥



कबहुं क संदर बदन बिलोकति

उर यानंद भरि लेति बलैया।

कबहुं क बलको टेरि बुलावति

इहि ग्रांगन खेली दोउ भैया ॥

कबहुं क कुल देवता मनावति

चिरजीवै मेरो बाल कन्हैया।

'स्रदास' प्रभु सब सुखदायक

अति प्रताप बालक नंदरैया ॥५

राग विलावल

बाल गोपाल खेली मेरे तात।

बलि बलि जाउं मुखारबिंद की

श्रमी बचन बोलत तुतरात॥

उनिंदे नयन विसाल की सोभा

कहत न बनि आवै ककु बात।

दूरि खरे सब सखा बोलावत

नयन मोरि उठि श्राए प्रभात॥

दुइं कर माठ गहे नंदनंदन

क्टिटिक बूंद दिध परत अघात।

मानचु गजमुकता मरकत पर सोभित सुभग सांवर गात॥ जननी प्रति मांगत मन मोचन दै माखन रोटी उठि प्रात।

लोटत पुडुमि 'सूर' संदर घन

चारि पदारय जाके हात ॥ई



राग विलावल

भृति धूसि जटा जटिन हिर किए हर भेषु ॥
नीलपाट पिरोइ मिनगन फिनस धोखो जाइ ।
खुनखुना कर हंसत मोहन नचत डींक बजाइ ॥
जलजमाल गोपाल पहिरे कहीं कहा बनाइ ।
मंडमाला मनोहर गर ऐसि सोभा पाइ ॥
स्वातिसुत माला बिराजत स्थामतन थीं भाइ ।
मनो गंगा गीरि डर हर लिए कंठ लगाइ ॥
केहरी के नखिहं निरखत रही नारि बिचारि ।
बाल सिस मनी भालते ले डर धखो चिपुरारि ॥
देखि अंग अनंग डरप्यो नंदसुत को जान ।
सूर के हियरे बसो यह स्थाम सिव को ध्यान ॥ ७

राग धनायी

कजरी को पय पियह लला तेरी चोटी बढ़ें।

सब लरिकन में सुनु सुन्दर सुत तो श्री अधिक चढ़ें॥
जैसे देखि श्रीर बज बालक त्यों बल बयस बढ़ें।
कंस किस बक बैरिन के उर अनुदिन अनल उढ़ें॥
यह सुनि के हरि पीवन लागे, ज्यों त्यों लियो पढ़ें।
श्रंचवत पै तातो जब लाग्यो रोवत जीभ गढ़ें॥
पुनि, पीवत ही कच टकटोवै भूठै जननि रहें।
'सूर' निरखि मुख हंसत जसोटा सो सुख मुख न कढ़ें॥



राग रामकली

मैया कब हिं बढ़ैगी चोटी।

किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजह है कोटी॥

तू जो कहित बल की बेनी ज्यों है है लांबी मोटी।

काढ़त गुहत न्हवावत ओं कत नागिनि सी भुंद लोटी॥

काचो दूध पियावत पिच पिच देत न माखन रोटी।

'स्र' स्थाम चिरजिव दोड

भैया इरि इलधर की जोटी ॥८ राग देवगान्धार

कहन लागे मोहन मैया मैया।

पिता नंद सी बाबा अरु इलधर सी भैया भैया॥

ऊ'चे चढ़ि चढ़ि कहत जसोना लै लै नाम कन्हैया।

दूरि कह्रं जिनि जाइ लला रे मारैगी काइ की गैया॥

गोपी खाल करत कीतूहल घर घर लेत बलैया।

मनि खंभन प्रतिबंब बिलोकत नचत कुंवर निज पैया॥

नंद जसोदाजी के उर ते इह छबि अनत जैनया।

'स्रदास' प्रभु तुमरे दरस की चरनन की बिलगइया॥१०

राग कान्हरो

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने हरिहि लिये चंदा देखरावत। रोवत कत बलि जाउं तुम्हारी

देखीं धीं भरि नैन जुड़ावत॥

TATOTALA

चिते रहै तब आपुन ससि तन अपने कर लै लै जु बतावत। मीठो लगत किधौं यह खाटो

> देखत अति सुंदर मन भावत ॥११ राग बिलावल

जागिये ब्रजराज कुंवर कमल कुसम फूले। कुसुद इन्द सकुचित भए भृंग लता सूले॥ तमचुर खग रोर सुन हु बोलत बनराई। रांभति गो खरिकन में बक्टरा हित धाई॥ बिधु मलीन रियप्रकास गावत नर-नारी। 'सूर' स्थाम प्रात उठी अंबुज कर धारो॥१२

राग गौरी

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिकायो।

मोसों कहत मोल को लोनो तोहि जसमित कब जायो॥

कहा कहीं एहि रिस के मारे खेलन हीं निहं जातु।

पुनि पुनि कहत कीन है माता को है तुमरो तातु॥

गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्थाम सरीर।

चुटकी दैदै हंसत खाल सब सिखे देत बलबीर॥

तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुं न खीकै।

मोहन को मुख रिस समेत लखि जसमित सुनि सुनि रीकि॥

सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत।

'स्र' स्थाम मोहि गोधन की सौं हों माता तू पूत॥१३



राग गौरी

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जब हिं मो हिं देखत लिरकन संग तब हिं खिभत बल भैया॥
मोसीं कहत पूत बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो ककु दै बसुदेव को किर किर जतन बढ़ैया॥
अब बाबा कि कहत नंद सीं जसुमित को कहै भैया।
ऐसे कि सब मो हिं खिभावत तब उठि चलीं खिसैया॥
पाई नंद सुनत हैं ठाढ़े हंसत हंसत उर लैया।
'सूर' नंद बलराम हिं विरयो सुनि मन हरष कहैया॥१४

राग सारंग

जंवत स्थाम नंद की किनयां।
ककुक खात ककु धरिन गिरावत कि निरखत नंदरिनयां॥
बरी बरा बेसन बहु भांतिन व्यंजन बहु अनगिनयां
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दिध-दिनयां।
मिसिरी दिध माखन मिसित किर मुख नावत कि बिधनियां
अपन खात नंद-मुख नावत सो मुख कहत न बिनयां॥
जो रस नंद जसोदा बिलसत सो निहं तिहं भुवनियां।
भोजन किर नंद अंचवन की नहों मांगत 'सूर' जुठनियां॥१५

राग रामकली

मो देखत जसुमित तेरी ढोटा अवहीं माटी खाई। इह सुनि के रिस करि उठि धाई बांह पकरि ले अई॥ दक कर सीं भुज गिंह गाढ़े किर दक कर लीने सांटी।

मारित हीं तोहि अबिंह कन्हेंया बींग न उगले माटी॥

ब्रज लिरका सब तेरे आगे भूंठी कहत बनाई।

मेरे कहे नहीं तू मानित दिखरावों मुख बाई॥

अखिल ब्रह्मांडखंड की महिमा देखराई मुख माहीं।

सिंधु सुमेर नदी बन परवत चिकत भई मनमाहीं॥

कर ते सांटि गिरत निहं जानी भुजा छांड़ि अकुलानी।

'स्र' कहै जसुमित मुख मूंदेड बिल गई सारंग-पानी॥१६

राग मलार

महिर तें बड़ी किपन है माई।

दूध दही बिधि को है दीनो सुत डर धरित किपाई।

बालक बहुत नाहिं री तेर एक कुंवर कन्हाई।
सोज तो घर ही घर डोलत माखन खात चुराई॥

बह बैस पूरे पुन्यनि तें तें बहुतें निधि पाई।

ताह को खैंवे पियवे को कहा करित चतुराई॥

सुनहु न बचन चतुर नागिर के जसुमित नंद सुनाई।

'सूर' स्थाम को चोरी के मिस है देखेन को आई॥१०

राग नट

अनत सत गोरस को कत जात। घर सुरभी नव लाख दुधारी और गनी नहिं जात॥ नित प्रति सबै उरहने के मिस आवित हैं उठि प्रात। अन-ससुभे अपराध लगावित बिकट बनावित बात॥



श्रितिह निसंक विवादित सनमुख सुनि मोहि नंद रिसात। 'मो सों कपिन कहत तेरे ग्रह ढोटाऊ न श्रघात॥ करि मनुहारि उठाय गोद लै सुत को बरजित मात। 'स्र' स्थाम नित सुनत उरहनो दुख पावत तेरो तात॥१८

राग रामकली

मैया! मैं नाहीं दिध खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो॥
देखि तृही छींने पर भाजन ऊ'चे घर लटकायो।
तृही निरिख नाहे कर अपने मैं कैसे किर पायो॥
मुख दिध पोक्टि कहत नंदनंदन दोना पीठि दुरायो।
डारि सांट मुसकाइ तबहिंगहि सुत को कंठ लगायो॥
बाल बिनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप देखायो।
'स्रदास' प्रभु जसुमति के सुख सिव बिरंचि बीरायो॥१८

राग विहागरो

देखी माई कान्ह हिचिकियन रोवै। तनक मुखिहं माखन लपटान्यो डरिन ते यं सुवन धोवै॥ माखन लागि उलूखल बांध्यो सकल लोग ब्रज जोवै। निरिख कुरुख उन बालिन की

दिसि लाजन अंखियन धोवै॥ ग्वाल कहें धनि जननि हमारी खकर सुरिभ नित नोवै। बरबस ही बैठारि गोद में धारें बदन निचोवै॥ ग्वालि कहैं या गोरस कारन कत सुत की पित खोवै। ग्रानि देहिं हम ग्रपने घर तें चाहित जितकु जसोवै॥ जब जब बंधन छोखो चाहित 'सूर' कहै यह को वै। मन माधव तन, चित गोरस में

> इहि विधि महरि विलोवै ॥२० राग कान्हरो

में दुहिहों मोहिं दुहन सिखावह । कैसे धार दूध की बाजत सोद

सोइ बिधि तुम मोहिं बतावह ॥ कैसे दुहत दोहनी घुटुवन कैसे बक्करा यनहि लगावह । कैसे लै नाई पग बांधत कैसे पगैया लै अटकावह ॥ निकट भई अब सांभ कन्हैया

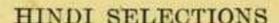
गाइन पै कहुं चोट लगावहु।

'सूर' स्थाम सीं कहत ग्वाल सब

धेनु दुहन प्रातिह उठि श्रावह ॥२१ भैरवी

मैया, मैं न चरैहों गाई।

सिगरे खाल घिरावत मोसों, मेरे पाइ पिराई॥
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं, अपनी सौंहं दिवाई।
यह सुनि सुनि जसुमति खालनि को, गारी देत रिसाई।
मैं पठवति अपने लरिका कों, आवै मन बहराई।
'सूर' स्थाम मेरो अति बालक, मारत ताहि रिंगाई॥२४





बहुत दिन जीयौ पिषहरा प्यारो।
वासर रैनि नांव लै बोलत, भयो बिरह-ज्बर कारो॥
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नांव तुम्हारो।
देखो सकल बिचारि सखी जिय, बिकुरन की दुख न्यारो।
जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम-बान अनियारो।
'स्रदास' प्रभु खातिबूंद लगि, तज्यो सिंधु करि खारो॥२५
—स्रदास

अयोध्याकाग्ड

कीर के कागर ज्यों तृपचीर विभूषन, उप्पम श्रंगनि पाई। श्रीध तज्यी मगवास के रूख ज्यों,

पंघ के साधी ज्यों लोग-लुगाई । संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनी धर्म क्रिया धरि देह सुहाई । राजिवलोचन राम चले तिज

बाप को राज बटाऊ की नाई॥१॥

कागर-कीर ज्यों भूषन चीर

सरीर लस्यो तिज नीर ज्यों काई। मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई।



संग सुभामिनि भाई भलो, दिन है जनु श्रीध हुते पहुनाई। राजिवलोचन राम चले तिज

बाप को राज बटाऊ की नाई ॥२॥

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमिवाजू सों,

मैं न लखी सीति, सखी ! भगिनी ज्यों सिई है। कहैं मोहिं मैया, कहों, "मैं न मैया; भरत की; बलैया लैहों, भैया ! मैया तेरी कैंकेयी है"।

'तुलसी' सरल भाय रघुराय माय मानी,

काय मन बानी हंन जानी कै मतेई है। बाम बिधि मेरो सुख सिरिससुमन सम, ताको कल-कुरी काइ-कुलिस लै टेई है॥३॥

"कीजै कहा, जीजी जू!" समित्रा परि पायं कहै,

''तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है। रावरो सुभाव राम जन्म ही तें जानियत,

भरत की मातु को कि ऐसी चहियतु है ? जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहं,

राज-पूत पाए हं न सुख लहियतु है। देह सुधागेह ताहि सुगह मलीन कियो,

ताइ पर बाद्द बिनु राद्द गहियतु है"॥॥॥

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े। जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥



तुलमी जेहि के पद-पंकज तें

प्रगटी तटिनी जो हरे अघ गाढ़े।

सो प्रभु स्वै सरिता तरिवे कहं

मांगत नाव करारे हैं ठाढ़े॥५॥

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै

किट लीं जल-याइ दिखाइहीं जू।

परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समभाइहीं जू? तुलसी अवलंब न और कक्र,

लरिका केहि भांति जियादहीं जू?

वरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए,

हों नाथ न नाव चढ़ाइहीं जू॥६॥

रावरे दोष न पायंन को, पगधूरि को भूरि प्रभाव महा है। पाइन तें बन-बाइन काठ को कोमल है, जल खाद रहा है॥ पावन पायं पखारि कै नाव

चढ़ाइहों, आयस होत कहा है ?

तुलसी सुनि केवट के बर बैन

हंसे प्रभु जानकी ग्रोर हहा है ॥ ॥

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,

केवट की जात ककु बेद ना पढ़ाइहीं।

सब परिवार मेरो याही लगि, राजा जू,

हों दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहीं ?

गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरेगी मेरी,
प्रभु सीं निषाद हैं के बाद ना बढ़ाइहों।
'तुलसी' के ईस राम रावरी सीं, सांची कहीं,
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहों॥८॥

प्रभुक्ख पाइ की बोलाइ बाल, घरनिष्ठि, बंदि की चरन चहुं दिसि बैठे घेरि घेरि। कोटो सो कठीता भरि आनि पानी गंगाजू को, धोइ पायं पीयत पुनीत बारि फेरि फेरि॥

तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर, वरषें सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि। विवुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी, इंसे राघी जानकी लघन तन हेरि हेरि॥१०॥



पुर तें निकसीं रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग है। भलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूख गए मधुराधर वै॥ फिरि बूभिति हैं "चलनी अब केतिक,

पर्णकुटी करिही कित है ?"

तियकीलखि आतुरतापियकी अंखियां अति चारु चलीं जलचै ॥११॥

जल को गए लक्खन हैं लरिका,

परिखी पिय, छांच घरीक है ठाढ़े।

पोक्टि पसेड बयारि करों, अरु

पांय पखारिहों भूभुरि डाढ़े॥

'तुलसी' रघुबीर प्रिया स्नम जानि कै

बैठि बिलंब लीं कंटक काढ़े।

जानकी नाइ को नेइ लखी,

पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े ॥१२॥

ठाढ़े हैं नी द्रुम डार गहे, धनु कांधे धरे, कर सायक लै। बिकटी भ्रुकुटी बडरी ग्रंखियां, ग्रनमोल कपोलन की छबि है। 'तुलसी' ग्रस मूरति ग्रानि हिये

जड़ डारिहों प्रान निकावरि कै।

स्रम-सीकर सांवरि देह लसै

मनो रासि महा तम तारक मै ॥१३॥

जलज-नयन, जलजानन, जटा है सिर जोवन उमंग यंग उदित उदार हैं। मांवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,

मुनिपट धरे, उर फूलिन के हार हैं॥ करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,

यतिही यनूप काइ भूप के कुमार हैं। 'तुलसी' विलोक के तिलोक के तिलक तीनि,

रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥१४॥

आगे सोहै सांवरो कुंवर, गोरी पाछ पाछे, याछे मुनि वेष धरे लाजत यनंग हैं।

बान बिसिषासन ; बसन बन ही के किट,

कसे हैं बनाई, नीके राजत निषंग हैं।

साय निसिनायमुखी पायनाय-नन्दिनी सी,

'तुलसी' विजीके चित लाइ लेत संग हैं।

यानन्द उमंग मन, जोवन उमंग तन, रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं ॥१५॥

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन, मंजुल प्रस्न माथे मुकुट जटनिके। असनि सरासन लसत, सुचि कर सर, तून कटि, मुनिपट लटक पटनि के॥



नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबिट कै, बिधि बिरचे बरूथ विद्युत क्टिन के। गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै, सांबरे बिलोके गर्व घटत घटनि के ॥१६॥

बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि, रूप के निधान, घन-दामिनी-बरन हैं।

'तुलसी' सुतीय संग सइज सुद्वाए अ'ग, नवल कंवल ह ते कोमल चरन हैं॥ और सो बसन्त, और रित, और रितपित,

मूरित विलोके तन-मन के हरन हैं। तापस बेषे बनाइ, पिथक पथे सुहाइ, चिसे लोक-लोचनिन सुफल करन हैं॥१०॥

बनिता बनि स्थामलगीर के बीच, बिलोकचु, री सखी! मोच्चिं सी ह्वै।

मग जोग न, कोमल क्यों चिलिहें ?

सकुचात मही पद-पंकज कूँ॥

'तुलमी' सुनि ग्रामबधू विथकीं,

पुलकीं तन ग्री चले लोचन स्वै।

सब भांति मनोहर मोहन रूप, ग्रनप हैं भूप के बालक हैं॥१८॥ सांवर गोर सलोने सुभाय,

मनोहरता जिति मैन लियो है।

बान कमान निषंग कसे,

सिर सोहैं जटा, सुनि वेष कियो है॥

संग लिये बिधु बैनी बधू,

रित को जेहि रंचक रूप दियो है।

पांयन ती पनही न, प्यादेहि

क्यों चिल हैं ? सकुचात हियो है॥१८॥

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाइन ह ते कठोर हियो है। राजह काज अकाज न जान्यो,

कह्यो तिय को जिन कान कियो है। ऐसी मनोहर मूरति ये, बिकुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है? आंखिनमें, सखि। राखिबे जोग,

इन्हें किमि के बनबास दियो है॥२०॥

सीस जटा, उर बाइ बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीक्टीसी भौंहैं। तून सरासन बान धरे, 'तुलसी' बन मारग में सुठि सोहैं॥



सादर बारहिं बार सुभाय चिते

तुम त्यों इसरो मन मोहैं।

पूक्ति ग्रामबध सियसी "कही सांवर से,

सिख रावरे को हैं ?" ॥२१॥

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने,
सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरक्टे करि नैन, दै सैन तिन्हें
समुभाद ककू मुसकाद चली॥
'तुलसी' तेहि श्रीसर सोहैं सबै

अवलोकित लोचन लाइ अली। अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥२२॥

धरि धीर कहैं "चलु देखिय जाद जहां सजनी रजनी रहि हैं। कहि है जग पोच, न सोच ककू, फल लोचन आपन तौ लहि हैं॥

सुख पाइहैं कान सुने बितयां,

कल आपुस में कछ पै किह हैं।

'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकें,

पुलकीं लिख राम हिये महिहै॥२३॥

पद कोमल, स्थामल गौर कलेवर,

राजत कोटि मनोज लजाए।

कर बान सरासन, सीस जटा,

सरसीरु लोचन सो न सुहाए॥

जिन देखे, सखी! सतभाय हुतें

'तुलसी' तिनती मन फेरिन पाए।

यहि मारग त्राजु किसोरबध्

बिध-बैनीसमेत सुभाय सिधाए॥२४॥

मुख पंकज, कंज बिलोचन मंजु,

मनोज-सरासन सी बनी भोंई।

कमनीय कलेवर, कोमल,

स्थामल गौर किसोर, जटा सिर सोईं॥

'तुलसी' कटि तून, धरे धनु बान,

अचानक दीठि परी तिरहीं हैं।

केहिभांतिकहीं, सजनी ! तोहिसीं,

मदुम्रतिद्वं निवसीं मनमोहैं ॥२५॥

प्रेम सीं पीछे तिरीछे प्रियाहि

चित चितु दै, चले लै चित चोरे।

स्याम सरीर पसेउ लसे, चुलसे

'तुलसी' किब सो मन मोरे।



लोचन लोल चलें भ्रूकुटी,
कल काम-जमान हु सो त्रन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग,

निषंग कसे, धनु सो सर जोरे॥२६॥ सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि,

पानि सरासन सायक लै। वनखेलतराम फिरैं मृगया,

'तुलसी' छबि सो वरने किमि कै ? अबलोकि अलीकिक रूप सगीसग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।

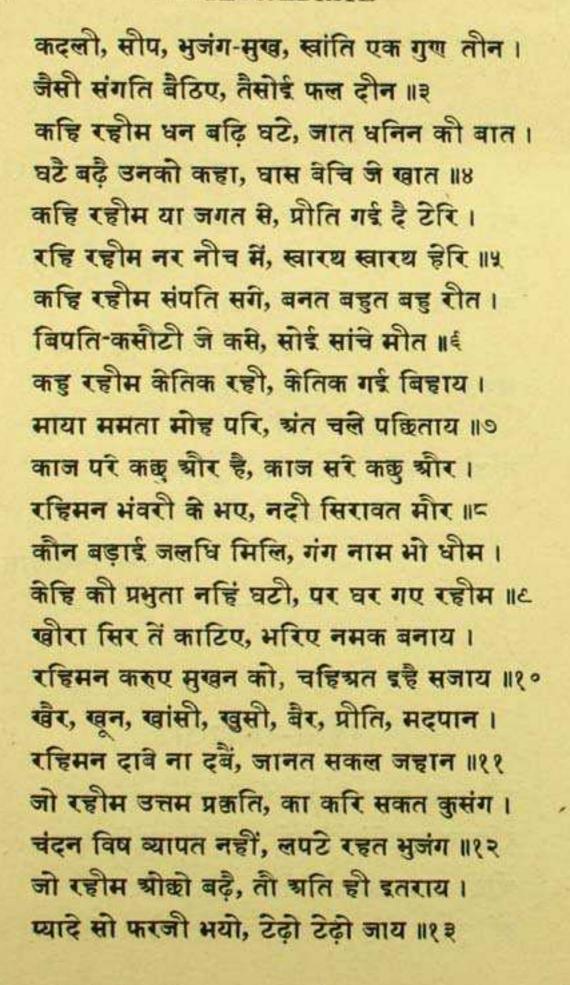
न डगें न भगें जिय जानि सिलीमुख

पंच धरे रतिनायक है ॥२०॥

-तुलसीदास।

रहीम-रत्नावली

एके साध सब सधे, सब साध सब जाय। रिहमन मूलिं सींचिबो, फूलिंड फलिंड अघाय॥१ श्रोको काम बड़े करें, तो न बड़ाई हीय। ज्यों रहीम हनुमन्त कीं, गिरधर कहै न कीय॥२





जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत र ति सोय। बारे उजियारो लगै, बढ़े अंधेरो होय॥१४ जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय। बढ़े उजेरो तेहि रहे, गए अंधेरो होय ॥१५ जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहुं किन जाहि। जल में जो द्वाया परे, काया भीजति नाहिं ॥१६ टूटे सुजन मनाइए, जी टूटे सी बार। रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार ॥१७ तबहीं लों जी बो भलो, दीबो होय न धीम। जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥१८ तक्वर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान। कहि रहीम पर काज हित, संपति संचहि सुजान ॥१८ देनहार कोउ और है भेजत सो दिन रैन। लोग भरम इस पै धरें, यात नीचे नैन ॥२० धूर धरत नित सीस पै, कचु रहीम केहि काज। जिहि रज मुनि-पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज ॥२१ रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ। जाहि निकारी गेहते, कस न भेद कहि देद ॥२२ रहिमन योछे नरन सीं, बैर भलो ना प्रीति। काटे चाटे खान के, दोऊ भांति विपरीति ।२३ रहिमन कठिन चितान ते, चिन्ता को चित चेत। चिता दहति निर्जीव को, चिन्ता जीव समेत ॥२४ 21-1421 B.T.



रहिमन चुप है बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै वेर ॥२५
रिहमन निज सम्पति बिना कोछ न विपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, निहं रिव सकै बचाय ॥२६
रिहमन पानी राखिए, बिनु पानी सब स्न।
पानी गए न जबरे, मोती, मानुस, चन ॥२७
रिहमन जाचकता गहे, बड़े छोट है जात।
नारायनह को भयो, बावन आंगुर गात ॥२८
रिहमन रिहबो वा भलो, जी लौं सील समूच।
सील ठील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥२८

- अञ्चल रहीम खान खाना।

रसखान

मानुस हों, तो वही रसखानि,

बसीं ब्रज-गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पस हों, तो कहा बस मेरो,

चरीं नित नन्द की धेनु मंभारन॥

पाइन हों, तो वही गिरि की,

जो धखी कर छत्र पुरंदर-धारन।



जो खग हों, ती बसरो करों,

मिलि कालिंदीकुलकदम्ब की डारन ॥१॥

या लकुटी अरु कामरिया पर,

राज तिइं पुर को तिज डारीं।

आठडुं सिडि नवोनिधि को सुख,

नन्द की गाइ चराइ बिसारीं॥

इन आंखिन सीं रसखानि कवीं

ब्रज के बन-वाग-तड़ाग निहारीं।

कोटिक हों कलधीत के धाम,

करील की कुंजन जपर वारों ॥२॥

मोर-पखा सिर जपर राखिहों,

गुंज की माल गरे पहिरों गी।

ग्रोढ़ि पितम्बर, लै लकुटी बन,

गोधन खारनि संग फिरोंगी॥

भावतो वोहि मेरो रसखानि, सो

तेरे कहे सब खांग भरोंगी।

या सुरली सुरलीधर की

अधरान-धरी अधरा न धरींगी ॥३॥

गावें गुनी गनिका गंधर्व, श्री

सारद सेस सबै गुन गावै।

नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों,

ब्रह्मा विलोचन पार न पावें॥

जोगी जती तपसी अरु सिंड,

निरन्तर जाहि समाधि लगावैं।

ताहि यहीर की कोहरियां,

किख्या भरि काक पै नाच नचावें ॥४॥

सेस महेस गनेस दिनेस,

सुरेसडुं जाहिं निरन्तर गावैं।

जाहिं यनादि यनंत यखंड,

अक्टेंद अभेद सुबेद बतावें॥

नारद-से सुक ब्यास रहें,

पचि हारे तज पुनि पार न पावें।

ताहि अहीर की छोइरियां,

ककिया भरि काक पै नाच नचावें ॥५॥

कौन ठगौरी भरी इरि श्राजु,

वजाई है बांसरिया रंग भीनी।

तान सुनी जिनहीं तिनहीं तब हीं,

कुल लाज बिदा करि दीनी॥

घूमें घरी-घरी नन्द के दार,

नवीनी कहा कई बाल प्रबीनी।



या ब्रजमंडल में रसखानि,

सु कीन भटू, जो लटू निहं कीनी ॥६॥

धूरि-भरे अति सोभित स्थामजू,

तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।

खेलत-खात फिरें श्रंगना, पग

पैजनीं बाजतीं, पीरी कक्कोटी ॥

वा कृबि कीं रसखानि बिलोकत,

वारत काम-कलानिधि कोटी।

काग के भाग कहा कहिए, हरि-

हाय सीं लै गयोमाखन रोटी ॥७॥

सोइत हैं चंदवा सिर मीर के,

जैसियै सुंदर पाग कसी है।

तैसियै गोरज भाल बिराजति,

जैसी हिये' बनमाल लसी है॥

रसखानि बिलोकति बौरी भई,

हग मूं दिकी ग्वारि पुकारि इंसी है।

खोलि री घूंघट, खोलीं कहा,

वह मूरति नैननि मांभ बसी है ॥८॥

ब्रह्म में ढूंढ्यों पुरानन गानन,

बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।

देखीं सुन्धों कबह्रं न कित्,

वह कैसे सुरूप श्री कैसे सुभायन ॥

टेरत-हरत हारि पछी रसखानि, बतायो न लोग-लुगायन।

देख्यो, दुखी वह कुंज-कुटीर में,

बैठो पलोटतु राधिका-पायन ॥८॥

दानी भये नये मांगत दान,

सुनै जु पै कांस ती बांधिकी जैही।

रोकत ही बन में रसखानि,

पसारत हाथ, घनी दुख पैही॥

ट्टे करा बकरा अरु गोधन,

जो धन है सु सबे धरि देही।

जहै अभूषन काइ सखी की,

तो मोल कला के, लला न बिकैही ॥१०॥

द्रीपदी श्री गनिका गज गीध,

अजामिल सों कियो सो न निहारी।

गौतम-गेहिनी कैसे तरी,

प्रहलाद की कैसे हखो दुख भारी॥

काई कों सोच करै रसखानि,

कहा करिहै रविनंद बिचारी।

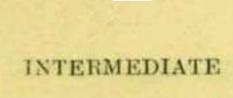
कौन की संक परी है जु माखन-

चाखनहारो है राखनहारो ॥११॥



बिहारी की दोही

मेरी भवबाधा हरी राधा नागरि सोय। जा तन की भांई परे स्थाम हरित दुति होय ॥१॥ सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल। यहि बानिक मो मन बसी सदा बिहारीलाल ॥२॥ मोइनि मूरति स्थाम की अति अदुभुत गति जोय। बसति सुचित अन्तर तक प्रतिबिंबित जग होय ॥३॥ तजि तीर्थ इरि-राधिका तन-दुति करि अनुराग। जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ॥४॥ सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर। मन है जात अजों वहै वा जमुना के तीर ॥५॥ गिरि ते ज'चे रसिक मन बूड़े जहां हजार। वहै सदा पसु नरन कहं प्रेम पयोधि पगार ॥६॥ कवों न श्रोछे नरन सों सरत बड़ेन को काम। मढ़ो दमामो जात कहुं किह चूहे के चाम ॥७॥ बसै बुराई जासु तन ताही को सनमान। भलो भलो किं कोड़िये खोटे यह जप दान ॥८॥ कहैं इहै सब श्रृति सुमृति इहै सयाने लोग। तीन दबावत निसक ही पातक, राजा, रोग ॥८॥ बड़े न हजे गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय। कहत धतूरे सीं कनक गहनी गढ़ी न जाय ॥१०॥



गुनी गुनी सब कोउ कहै निगुनी गुनी न होत। सुन्यो कहं तर अर्क ते अर्क समान उदोत ॥११॥ संगति सुमति न पावहीं परे कुमति के धंध। राखी मेलि कपूर में हींग न होत सुगंध ॥१२॥ सबै इंसत करतारि दै नागरता के नांव। गयो गरब गुन को सबै बसे गंवारे गांव ॥१३॥ नर की अरू नलनीर की गति एके करि जोइ। जितो नीचो है चलै तेतो ज'चो होद ॥१४॥ जो चाही चटक न घटै मैलो होय न मित्त। रज राजस न कुवाइये नेइ चौकने चित्त ॥१५॥ यति यगाध यति यीयरे नदी कूप सर बाय। सो ताको सागर जहां जाकी प्यास बुभाय ॥१६॥ कनक कनक तें सी गुनी सादकता अधिकाय। वा खाये बीरात है या पाये बीराय ॥१७॥ जिन दिन देखे वे सुमन गई सु बौति बहार। अब अलि रही गुलाब की अपत कंटीली डार ॥१८॥ इहि यासा यटक्यो रहै यलि गुलाब के सूल। हैहैं बहुरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल ॥१८॥ अरे इंस या नगर में, जैयो आप बिचारि। कागनि सों जिन प्रीति करि कोकिल दई बिड़ारि॥२०॥ को किह सकै बड़ेन सों लखे बड़ी ह भूल। दीने दई गुलाब को इन डारन ये फूल ॥२१॥



कर ले स्ंघ सराहि के रहें सबै गहि मीन।
गंधी गंध गुलाब को गंवई गाहक कीन ॥२२॥
को कूट्यो यहि जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों स्रिम्म भज्यो चहत त्यों त्यों उरम्मत जात ॥२३॥
पटु पांखे, भखु कांकरे, सदा पर्रई संग।
सुखी परेवा पुष्टुमि मैं, एके तुही बिहंग ॥२४॥
स्वारथ सुक्तत न अम हथा देखु विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि तूं पंकीहि न मारि ॥२५॥
दिन दस आदर पायके, करिले आपु बखान।
जीलों काग सराधपख तीलों तो सनमान ॥२६॥
मरत प्यास पिंजरा परो सुवा दिननके फेर।
आदर दे दे बोलियत बायस बलिकी वर ॥२०॥
——बिहारीलाल।

गंगा और यमुना

गंगा वर्णन

नव उक्कबल जलधार हार हीरक सी सोहति। बिच बिच छहरति बूंद सध्य सुक्तामनि पोहति॥ लोल लहर लहि पवन एक पै इक इसि आवत। जिसि नरगन सन विविध सनोर्थ करत सिटावत॥१॥

सुभग खर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत। दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥ श्रीहरि-पद-नख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस। ब्रह्म क्रमंडल मंडन भव खंडन सुर सरबस ॥२॥ शिव सिर मालति माल भगीर्थ तृपति पुन्य फल। ऐरावत गज गिरिपति हिमनग कंठहार कल ॥ सगर सुवन सठ सहस परस जलमात उधारन। अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥३॥ काशी कहं प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई। सपनेइ निहं तजी रही ग्रंकम लपटाई॥ कहं बंधे नवघाट उच गिरिवर सम सोइत। कहुं कतरी कहुं मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ॥४॥ धवल धाम चहुं श्रोर फरहरत धुजा पताका। घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥ मधुरी नीबत बजत कहं नारी नर गावत। वेद पढत कहुं हिज कहुं जोगी ध्यान लगावत ॥५॥ कडुं सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उक्कारत। जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥ धोश्रत सुन्दरि बदन करन श्रति ही छवि पावत।

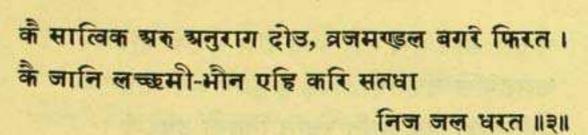
वारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत ॥६॥



सुन्दि सिंस मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत। कमलवेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥ दीठि जहां जहं जाति रहति तितही ठहराई। गंगा कवि हरिचन्द ककू बरनी नहिं जाई॥७॥

यमुना वर्णन

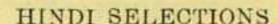
तरनि-तन्जा-तट तमाल तर्वर बहु छाये। भुके कूल सो जल-परसन हित मनहुं सुहाये॥ किधों मुकुर मैं लखत उभकि सब निज निज सोभा। कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥ मनु आतप बारन तीर की सिमिटि सबै काये रहत। कै इरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥१॥ कहं तीर पर कमल अमल सोभित बहु भांतिन। कइं सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पांतिन॥ मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत व्रज सोभा। कै उसरी पिय प्रिया प्रेस के अनगित गोभा ॥ कै करि के कर बहु पीय की टेरत निज ढिग सोहई। कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥२॥ कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत। कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उचारत ॥ के व्रज तियगन बदन कमल की भलकत भाई। के व्रज हरिपद-परस-हेत कमला बहु आई'॥

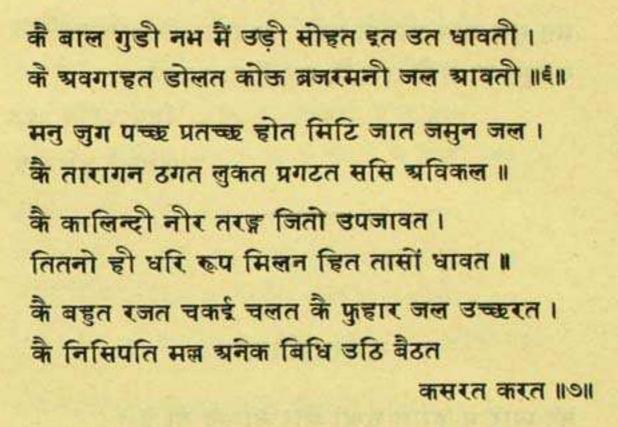


तिन पें जिहि छिन चन्द जोति राका-निसि आवित।
जल मैं मिलि के नभ अवनी लों तान तनावित॥
होत मुकुरमय सबै तबैं उज्ज्वल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ावत देखि सुंदर सो सोभा॥
सो को किब जो छिब किह सकै ताछन जमुना नीर की।
मिलि अविन और अम्बर रहत छिब इकसी
नभ तीर की॥॥॥

परत चन्द-प्रतिबिम्ब कहं जल मधि चमकायो।
लोल लहर लिह नचत कब हुं सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
के तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित क्रबि क्रायो॥
के रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
के जल उर हरि मूरति बसति ता-प्रतिबिंब लखात है॥॥॥

कबहुं होत सत चन्द कबहुं प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुनजल लोटत डोलै।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥





कूजत कहं कलहंस कहं मज्जत पारावत।
कहं कारंडव उड़त कहं जलकुकुट धावत॥
चक्रवाक कहं बसत कहं बंक ध्यान लगावत।
सक पिक जल कहं पियत कहं भ्रमराविल गावत॥
कहं तट पर नाचत मोर बह रोर विविध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब
निज धरत॥
म

कहं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई। उज्जल भलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥ पिय के आगम हेत पांवड़े मनहुं बिछाय। रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराय॥



मनु मुक्त मांग सोभित भरी, श्वाप्रनीर चिकुरन परिस । सतगुन कायो के तीर में, व्रज निवास लिख हिय हरिस ॥८॥

—'भारतेन्दु' इरियन्द्र

यशोदाविलाप

मेरे प्यारे स-कुशल सुखी और सानन्द तो हैं ?

कोई चिन्ता मिलन उनको तो नहीं है बनाती ?

ऊधी छाती बदन पर है म्हानता भी नहीं तो ?

हो जाती हैं हृदयतल में तो नहीं वेदनायें ? ॥१॥

मीठे-मेंवे स्टुल नवनी और पकान्न नाना ।

धीरे, प्यारों-सहित सुत को कीन होगी खिलाती ।

प्रात: पीता सु-पय कजरी गाय का चाव से था ।

हा ! पाता है न अब उसको प्राण-प्यारा हमारा ॥२॥

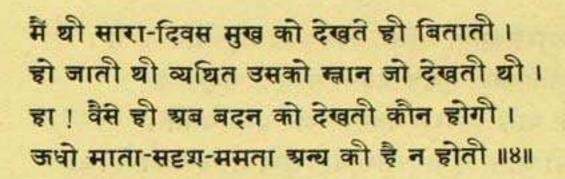
संकोची है परम अति ही धीर है लाल मेरा ।

लज्जा होती अमित उसको मांगने में सदा थी ।

जैसे लेके स-रुचि सुत को अंक में मैं खिलाती ।

हा ! वैसे ही अब नित खिला कीन बामा सकेंगी ॥३॥

HINDI SELECTIONS



खान पीन शयन करने आदि की एक-वेला। जो जाती थी कुछ टल कभी खेद होता बड़ा था। जधो ऐसी दुखित उसके हितु क्यों अन्य होगी। माता की सी अवनितल में है अ-माता न होती॥५॥

जो पाती हं कुंवर-सुख के जोग मैं भोग-प्यारा। तो होती हैं हृदय-तल में वेदनायें-बड़ी ही। जो कोई भी सु-फल सुत के योग्य मैं देखती हं हो जाती हं व्यथित-श्रति ही, दग्ध होती महा हं ॥६॥

जो लाती थीं विविध-रंग के मुख्कारी खिलीने। वे आती हैं सदन अब भी कामना में पगी सी। हा! जाती हैं पलट जब वें हो निराशा-निमग्ना। तो उन्मत्ता-सदृश मग की ओर मैं देखती हूं॥॥॥

श्रात-लीला निपुण-नट हैं श्राज भी बांध श्राशा। कोई यों भी न श्रव उन के खेल को देखता है। प्यारे होते मुदित जितने कीतुकों से सदा थे। वे श्रांखों में बिषम-दव हैं दर्शकों के लगाते॥८॥ प्यारा खाता क्चिर नवनी को बड़े चाव से था। खाते खाते पुलक पड़ता नाचता कूदता था। ये बातें हैं सरस नवनी देखते याद आतीं। हो जाता है सधुरतर औ स्निग्ध भी दग्धकारी॥८॥

हा! जो वंशी सरस रव से विश्व को मोहती थी। सो आले में मिलन बन श्री मूक हो के पड़ी है। जो किट्रों से श्रीमय बरसा मूरि थी मुखता की। सो उन्मत्ता परम-बिकला उन्मना है बनाती॥१०॥

प्यारे जधो सुरत करता लाल मेरी कभी है ? क्या होता है न अब उस को ध्यान बूढ़े-पिता का। रो रो, हो हो बिकल अपने बार जो हैं बिताते। हा! वे सीधे सरल-शिश्य हैं क्या नहीं याद आते॥११॥

कैसे भूलीं सरस-खनि सी प्रीति की गोपिकायें। कैसे भूले सुद्धदपन के सेतु से गोपग्वाले। शान्ता घीरा मधुर-द्वदया प्रेम-रूपा रसज्ञा। कैसे भूली प्रणय-प्रतिमा-राधिका मोइमग्ना॥१२॥

कैसे ब्रन्टा विधिन विसरा क्यों लता-वेलि भूलों। कैसे जी से उतर सिगरी कुंज-पुंजें गई हैं। कैसे फूले विपुल-फल से नम्त्र भूजात भूले। कैसे भूला विकच-तक सो कालिंदी-कूल वाला ॥१३॥



HINDI SELECTIONS

सोती सोती चिद्व'क कर जो ग्याम को है बुलाती। जधो मेरी यह सदन की सारिका कान्त-कर्छा। पाला पोसा प्रति-दिन जिसे ग्याम ने प्यार से है। हा! कैसे सो हृदय-तल से दूर यों हो गई है ॥१४॥

कु'जों कु'जों प्रतिदिन जिन्हें चाव से या चराया। जो प्यारी यों परम, ब्रज के लाड़िले को सदाही। खिन्ना दीना-बिकल बन में आज जो घूमती हैं। जधों कैसे हृदय-धन को हाय! वे धेनु भूलीं॥१५॥

ऐसा प्रायः अब तक सुक्ते नित्य ही है जनाता। गो गोपों के सहित बन से सदम है ग्याम आता। यों ही आके हृदय तल को बेधता मोह लेता। मीठा-मीठा-सुरलि-रव है कान में गूंज जाता ॥१६॥

रोते रोते तिनक लग जो आंख जाती कभी है। तो योंही मैं युगल-टग को चौंक के खोलती हं। प्राय: ऐसा प्रति-रजनि में ध्यान होता मुक्ते है। जैसे आ के सुअन मुक्तको प्यार से है जगाता ॥१०॥

ऐसा ऊधी प्रति-दिन कई बार है जात होता। कोई यों है कथन करता लाल याया तुम्हारा। भान्ता सी मैं यब तक गई दार पे बार लाखों। हा। यांखों से न वह बिकुड़ी-ध्यामली-मूर्त्त देखी॥१८॥



पूले-कंजों-सहश-हग से मोहते मानसों को। प्यारे प्यारे बचन कहते खेलते मोद देते। जधो ऐसी अनुमिति सदा हाय! होती मुभे है। जैसे आता निकल अबही लाल है मंदिरों से॥१८॥

आ के मेरे निकट नवनी लालची लाल मेरा। लीलायें या बिबिध करता धूम भी या मचाता। जधो बातें न यक पल भी हाय! वे भूलती हैं। हा! हा जाता युगल हम में आज भी सो समा है॥२०॥

मैं हाथों से कुटिल-अलके लाल की थी बनाती। पुष्पों को थी युगल-श्रुति के कुण्डलों में सजाती। सुक्ताओं को थिर सुकुट में सुग्ध हो थी लगाती। पीके शोभा निरख सुख की थी न फूली समाती॥२१॥

में प्रायः ले कुसुमकलिका चाव से थी बनाती। श्रीभा-वाले-बिबिध गजरे क्रीट श्री कुण्डलों को। पीछे प्यारों सहित इन को श्याम को थी पिन्हाती। श्री उत्पुत्ता ग्रथित-कलिका तुल्य थी पूर्ण होती॥२२॥

पैन्हे प्यारे-बसन कितने दिब्य-श्राभूषणों को।
प्यारी-बाणी बिहंस-कहते पर्ण-उत्पुक्त होते।
श्रोभा-श्राली-सुश्रन जब था क्रीड़ता सदम मेरे।
तो पा जाती श्रमर-पुर की सर्व सम्पत्ति मैं थी॥२३॥



होता राका-ग्रिश उदय था फूलता पद्म भी था। प्यारी-धारा उमग बहती चाक्-पीयूष की थी। मेरा प्यारा तनय जब था गेह में नित्य ही तो। बंगी-हारा मधुर-तर था स्वर्ग-संगीत होता ॥२४॥

जधो मेरे दिवस अब वे हाय ! क्या हो गये हैं। हा ! यों मेरे सुख-सदन को कीन क्यां है नसाता। वैसे प्यारे-दिवस अब मैं क्या नहीं पा सकूंगी। हा ! क्या मेरी न अब दुख की यामिनी दूर होगी ॥२५॥

जधो मेरा हृदय-तल या एक उद्यान-न्यारा। श्रोभा देतीं श्रमित उस में कल्पना-क्यारियां थीं। प्यारे-प्यारे-कुसुम कितने भाव के थे श्रनेकों। उत्साहों के बिपुल-बिटपी मुखकारी-महा थे॥२६॥

सिचन्ता की सरस-लहरी-संकुला-बापिका थी। लोनी-लोनी नवल-लितका थीं अनेकों-उमंगें। धीरे-धीरे-मधुर हिलतीं बासना-बेलियां थीं। सहांका के बिहग उस के मंजु-भाषी बड़े थे॥२०॥

प्यारा-प्यारा-मुख सत-बधू-भाविनी का सलोना।
प्राय: होता प्रगट उस में फुल-ग्रंभोज सा था।
बेटे द्वारा बिबिध-सुख के लाभ की लालसायें।
हो जाती थीं बिकच बहुधा माधवी-पृष्पिता सी ॥२८॥



प्यारी-श्राशा-पवन जब थी डोलती स्निम्ध होके। तो होती थी अनुपम-कटा बाग के पादपों की। हो जाती थीं सकल लितका-विलियां श्रोभनीया। सदुभावों के सुमन बनते सीरभी ले-बड़े थे॥२८॥

राका-स्वामी-सरस-सुख की दिव्य-न्यारी-कलायें। धीरे धीरे पतित जब थीं स्निग्धता साथ होतीं। तो आभा में अतुल-कृबि में श्री मनोहारिता में। हो जाता था अधिक-तर सा नन्दनोद्यान से भी॥३०॥

ऐसा प्यारा-सरस अति ही रस्य उद्यान मेरा।

मैं होती हं व्यथित कहते आज है ध्वंस होता।

स्वे जाते सकल-तर हैं नष्ट होती लता हैं।

निष्युष्या हो विपुल-मिलना वेलियां हो रही हैं॥३१॥

प्यार-पीधे कुसुम-कुल के पुष्प ही हैं न लाते। भूले जाते बिहग अपनी बोलियां हैं अनूठी। हा! जावेगा बिनस अति ही मंजु-उद्यान मेरा। जो सींचेगा न घन-तन आ स्नेह-सद्दारि-दारा॥३२॥

जधो त्रादौ तिमिर-मय या भाग्य-त्राकाश मेरा। धीरे धीरे फिर वह हुत्रा खच्छ सत्कान्ति-शाली। ज्योतिर्माला-बलित उस में चन्द्रमा एक न्यारा। प्यारा-प्यारा-ससुदित हुत्रा चित्त-उत्पुत्त-कारी॥३३॥



आभा वाले उस गगन में हाय! दुर्भाग्यता की। काली काली अब फिर घटा है महा-घोर काई। हा! आंखों से सुबिध जिस से हो गया दूर मेरा। जधों कैसे यह दुख-मयी मेघ-माला टलेगी॥३४॥

पूले नीले-बनज-दल सा गात का रंग-प्यारा। मीठी-मीठी मिलन मन की मोदिनी मंजु-बातें। सींध-डूबी-अलक जब हैं ग्याम की याद आतीं। जधो मेरे हृदय पर तो सांप है लोट जाता॥३५॥

पीड़ा-कारी-करूण-खर से हो महा-उन्तना सी। हा! रो रोके स-दुख जब यो शारिका पूछती है। वंशीवाला हृदय-धन सो श्याम मेरा कहां है। तो है मेरे हृदय-तल में शूल सा बिंद होता ॥३६॥

त्यीहारीं को अपर कितने पर्व औं उत्सवों को। मेरा प्यारा-तनय अति ही भव्य देता बना था। आते हैं वे ब्रज अवनि में आज भी किन्तु जधो। दे जाते हैं परम दुख औं बेदना हैं बढ़ाते॥३०॥

कैसा-प्यारा जनम दिन था धूम कैसी मची थी। संस्कारी के समय सत के र'ग कैसा जमा था। मेरे जी में उदय जब वे दृश्य हैं ग्राज होते। हो जाती तो प्रबल-दुख से मूर्ति मैं हैं शिला की ॥३८॥



कालिन्दी के पुलिन पर की मध्य-हन्दाटवी की।
पूर्लीवाले-बिटप दिग की कुंज की ग्रालयों की।
प्यारी-लीला-सकल जब हैं लाल की याद ग्रातीं।
तो कैसा है हृदय मलता मैं बता क्यों उसे दूं॥३८॥

मारा मझोंसहित गज को क'स से पातकी को।

मेटीं सारी नगर-भर की दानवी-आपदायें।

काया सच्चा-स्यग्र जग में पुख्य की बेलि बोई।
जो प्यारे ने स-पति-दुखिया-देवकी को कुड़ाया ॥४०॥

जो होती है सुरत उन के कम्प-कारी दुखों की। तो श्रांस् हैं बिपुल बहते श्राज भी-लोचनों से। ऐसी दग्धा परम-दुखिता जो हुई मोदिता है। जधो तो हैं परम-सुखिता हिर्षिता श्राज मैं भी ॥४१॥

तो भी पीड़ा-परम इतनी बात से हो रही है। काढ़े लेती सम हृदय क्यों स्नेह-शीला सखी है। हो जाती हुं सृतक सुनती हाय! जो यों कभी हुं। होता जाता सम तनय भी अन्य का खाड़िला है ॥४२॥

मैं रोती हं हृदय अपना क्टती हं सदा ही। हा! ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूंगी। प्यारे जीवें प्रफुलित रहें श्री बनें भी उन्हों के। धाई नाते बदन दिखला श्रीर बारेक जावें ॥४३॥



नाना पूजा अपर कितने यत्नद्वारा जरा में। मैंने ऊधो! सुक्तति बल से एक ही पुत्र पाया। सो जा बैठा अरि नगर में हो गया अन्य का है। मेरी कैसी, अहह कितनी, मर्मा-वेधी व्यथा है॥४४॥

पत्नों पुष्पों रहित बिटपी विश्व में हो न कोई। कैसी ही हो सरस सरिता बारि-शून्या न होवे। जधो सीपी-सदृश न कभी भाग फूटे किसी का। मोती ऐसा रतन अपना आह! कोई न खोवे॥४५॥

श्रंभोजों से रहित न कभी श्रंक हो बापिका का। पुष्पों-वाली कलित-लितका पुष्प-हीना न होवे। जो प्यारा है परम-धन है जीवनाधार जो है। जधो ऐसी क्चिर-बिटपी शून्य बापी न होवे॥४६॥

कीना जावे लकुट न कभी इंडता में किसी का।
जधो कोई न कल-कल से लाल लेले किसी का।
पूंजी कोई जनम भर की गांठ से खो न देवे।
सोने का भी सदन न बिना दीप के हो किसी का ॥४०॥

उदिग्ना भी विपुल-विकला क्यों न सो धेनु होगी। प्यारा लेक अलग जिस की आंख से हो गया है। जधो कैसे व्यथित-फिल सी जी सकेगा बतादो। जीवोन्सेषी रतन जिस के भीभ का खो गया है। ४८॥ कोई देखे न सब-जग के बीच छाया ग्रंधेरा। जधो कोई निज-हगों की ज्योति-न्यारी गंवावे। रो रो हो हो बिकल न सभी बार बीतें किसी के। पीड़ायें हों सकल, न कभी मर्मा-वेधी-व्यथा हो॥४८॥

जधो होता समय पर जो चारू चिन्ता-मणी है। खो देता है तिमिर छर का जो खकीया प्रभा से। जो जी में है सुरसरित की स्निग्ध-धारा बहाता। बेटा ही है अवनि-तल में रत्न ऐसा निराला ॥५०॥

ऐसा प्यारा रतन जिसका हो गया है पराया। सो होवेगी व्यथित कितनी सोच जी में तुम्हीं लो। जो आती हो सुभ पर दया अल्प भी तो हमारे। सुखे जाते हृदय-तल में शान्ति-धारा बहा दो॥ ५१॥

छाता जाता ब्रज अवनि में नित्य ही है अंधेरा। जी में आशा न अब यह है मैं सुखी हो सकूंगी। हां इच्छा है तदिप इतनी और बारेक आके। ध्यारा-प्यारा-बदन अपना लाल मेरा दिखा दे॥५२॥

— अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिश्रीध'



वसन्त और वर्षा

वसन्त वर्णन

(8)

बाटिका-बिपिन लागे छावन रंगीली छटा,
छिति से सिसिर को कसाला भयो न्यारो है।
कूजन किलोल सों लगे हैं कुल पंछिन के,
'पूरन' समीरन सुगंध को पसारो है।
लागत वसंत नव संतमन जागो मैन,
देन दुख लागो बिरहीन वरियारो है।
सुमन निकंजन मैं, कंजन के पुंजन मैं,
गुंजत मिलंदन को बंद मतवारो है॥

(2)

भयो ना विकास है सुबास को सुपास नहीं,
ग्रसन प्रकास भान जो पै विसतारो है।
रज नाहीं, रंग नाहीं, मधु को प्रसंग नाहीं,
होत न तरल ले तरंग को सहारो है।
तापें भींर रीभो, मन खीभो जात देखे दसा,
'पूरन'ये कैसो हाय नेम श्रनुसारो है।
पूल कंज हंद मकरंद को बिहाय श्ररविंद को कली में जो मिलंद मतवारो है॥



()

कंजन में सवन तमालन के पंजन में,

करत प्रवेस ना दिनेस उजियारो है।
प्यारी सुकुमारी स्थामा साज सजे ठाढ़ी तहां,
नीलमनि मालन को जाल छिब वारो है।
छिटिके बदन चंद कंतल अनंद स्थाम,
स्थामरंग पागी नाम स्थाम तासु प्यारो है।
पूरन सुअंगन पै सीरभ प्रसंग पाय,
भूमें स्थाम भौरन को भौर मतवारो है।

(8)

कूजन विहंगनि की घंटिका बजै सो मंजु,
श्रोसकन सोई मद भुरत निहारों है।
'पूरन' प्रस्नन की सुरंग अबारी सजी,
श्रंगन की भीर सो सरीर बरियारों है।
बैठो ऋतुराज ताप जग की करत सैर,
सीरभ अनेक जग माहिं बिसतारों है।
धावत महावत अनंगके दसारे बीर,
सुरिभ समीर ये मतंग मतवारों है।

(4)

तू ही है द्रमन-वृन्द समन अनंद तूही, गंगन की सोभा तूही भंगन की भीर है।



HINDI SELECTIONS

कचिर बिहंग तू ही कूजिन अभंग तू ही, ऋतु रस रंग तू ही रिसक अभीर है। जगत वसंतवारी सुखमा अनंत तू ही तू ही निकसंत तू ही दंपति अधीर है। 'पूरन' अनंद तू ही कचिर सुगंध तू ही, सीतल सुमंद तू ही सुखद समीर है।

(€)

चंदन बिलत चारू देखियतु संडदंड,
भागन की जीन रज रंजित पतीर है।
सोइत स्रवत हालें पज्जव बिसाल जीन,
मंजुल सुगंधित स्रवत मदनीर हैं।
सेत कुंद पांत एकदंत की अनंत सोभा,
मंजरी मुकुट अंग फूलन की भीर है।
'पूरन' निकुंज रूपी कुंजरबदनजूकी,
बंदत बसंत लीन्हें बिजन समीर है॥

(0)

तू ही है सुमन, तू ही रंग है प्रस्नन में,
सुखमा असीम तू ही तू ही हरियाली है।
तू ही नीर नाली घट कुंड तर-मूल तू ही,
तू ही फलवालो तू ही पात तू ही डाली है।



जगत की बाटिका को सार सब भांति तू ही, तू ही ब्रह्म 'पूरन' करत रखवाली है। भंगन पतीर तू ही भीर है विहंगन की, सीरभ समीर तू ही खामी तू ही माली है।

(5)

चंपकलता को मेल कीन्हों है तमाल संग मानी कोऊ बाला वर पायो बनमाली है। 'पूरन' सुरंग खच्छ फूलन की क्यारी रची, मानी मिन-चीकन की सुखमा निराली है। दुमन बसाय हैं बिहंग बरबैनवार, मानी गान मंगल की विदित प्रनाली है। दंपति विवाह को उकाह होत देखे जाहि, श्राली यहि बाग को प्रवीन कोड माली है॥

(E)

चंपक, निवारी, दौना, मोगरा, चमली, बेला, गेंदा, गुलदावदी, गुलाब सोभसाली है। केतकी, कनर, गुलसब्बो, गुलनार, लाला, हिना, जसवंत, कुंज, केवड़ा की बाली है। 'पूरन' विविध चार संदर प्रस्नन की, छटा छिति मंडल में है रही निराली हैं।

HINDI SELECTIONS

पूजन को मानी बनमाली के चरनकंज, साजत बसंत माली फूलन की डाली है॥

(00)

किंसुक, श्रनार, गुलनार, सहकार, कुंद,
च'पक, श्रनार, जसवंत, क्रबिवंत की।
सीतल सुगंध मंद, दायकश्रनंद पीन,
कंजवन भ'गल्ल च'द्रिका दिगंत की।
कोकिल, कलापी कीर चातक कलापन की,
मधुर श्रलापन की मंगल श्रनंत की।
ईस भगवंतजू की महिमा कथनहारी,
महिमा में लसे भूरि सुखमा वसंत की॥

वर्षा वर्णन

चातक समूह बैठ्यो बोलनको बाए सुख,
नाचन को मोर ठाढ़े पांव ही उठाये हैं।
'पूरन'जी पावस को आगम सुखद जान,
आनंद सी बेलिनके हिय लहराये हैं।
दोही दुमजाति केरे अरक जवास ऐसे!
तेरे जरिबेके अब द्योस नियराये हैं।
हीतल महीतलको सीतलकरनहारे
देख कैसे प्यारे घन कारे घेरि आये हैं॥

(7)

गाजें मेघ कार मोर जूकें मतवार रहें
पापी-वृन्द न्यारे जोर माहत जनावती।
रन्द्रचाप भाजे, बक-अवली बिराजे, कृटा
दामिनि की काजे, भूमि हरित सुहावती।
'पूरन' सिंगार साजि संदरी-समाज आज,
भूलती मनोहर मलार मंजु गावती।
चंद बिनु पावस में जानिक सुधा की हानि,
मानो चन्द्रमण्डली पियूष बरसावती॥

(()

अवली बकनकी विमल दरसाय देत,

चहं और छाए देत घटा घनी काली है।
इन्द्रकी धनुष सप्तरंगी दरसाय देत,

धरा पर देत सरसाय हरियाली है।
पावस सुहायो निज आगम जनाय देत,
धोयके बहाय देत ग्रीसम बिहाली है।

मोरन के सोरन सी कानन रसाए देत,

भंभा की भकोरन सुमाय देत डाली है।

(8)

भांति-भांति फूलन पै भूलन भ्रमर लागे, जिलालिंदी के कूलन पै कंजन अपारन में।



HINDI SELECTIONS

इन्द्र को बधूटिनके हन्द दरसान लागे, भोर सरसान लागे मोरन पुकारन में। दामिनि कटा सी घटा गाजन श्रकोर लागी, राजति हिलोर लागी सरिताकी धारन में। फूले बन फूले मन श्रानंद भरन लागे, भूले लागे परन कदंबन की डारन में॥

(4)

श्राई बरसातकी रसीली मुखदाई ऋतु,
किति पै चहं धा सरसात सुघराई है।
साज बर बसन अभूसन सकल अंग,
भूलत हिंडोरे तक्नीनिसमुदाई है।
गके भरत बिछवान की मधुर धुनि,
सुनि सुनि 'पूरन' यो उपमा सुनाई है।
हंसन की अवली भुलाय के पुरानी चाल,
श्राज ऋतु पावस को दै रही बधाई है॥

(€)

सागर हैं कुंड जाकी नारियां नदीगन हैं, व्यारियां सघन बन सुखमा निराली है। बिहरें श्रमित जन्तु, विविध प्रतच्छ तैसे, 'पूरन' सुगंध हरि-कीरति प्रनाली है।



जग है बगीचा श्रीरमावर हैं खामी तासु, ऋतु दासगनकी रहत रखवाली है। चतुर सुरेस चेरो करत सिंचाई रहै, देव चतुरानन प्रधान ताको माली है॥

(0)

धानी ग्रासमानी सुलैमानी मुलतानी मू'गी, संदली सिंदूरी सुख सीसनी सुहाय हैं। कंजई कनैरी भूरे चंपई जंगारी रूरे, पिस्तई मंजीठी सुरमई घेरि श्राये हैं। मासी नीलकंठी गुलाबासी मुखरासी तूसी, कुसमी कपासी रंग 'पूरन' दिखाये हैं। नारंजी पियाजी पोखराजी गुलेनारी घने, केसरी गुलाबी सुवापंखी मेघ काये हैं॥ —राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

भमर-ट्रत

श्री राधा बर निजजन-बाधा-सकल-नसावन। जाकी ब्रज मनभावन, जो ब्रज को मनभावन। रसिक-सिरोमनि-मन-इरन, निरमल नेह निकुंज। मोद भरन उर मुख करन, अविचल आनंद पुञ्ज रंगीलो सांवरो ॥१



क'स-मारि भूभार-जतारन खल-दल-तारन।
विस्तारन विज्ञान विमल श्रुति-सेतु-संवारन।
जन-मन-रंजन सोहना, गुन-श्रागर चितचोर।
भवभय-भंजन मोहना, नागर नन्द किसोर
गयो जब दारिका॥२

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमित माई।
ग्याम-बिरह-अकुलाती, पाती कबहुं न पाई।
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, किन किन परम अधीर।
सोचित मोचित निसि दिना, निसरत नैनन नीर
बिकल कल ना हिये॥३

पावन सावन मास नई उनई घन पांती।

सुनि-मन-भाई कई रसमई मञ्जूल कांती।
सोइन सुन्दर चहुं सजल, सरिता पोखर ताल।
लोल लोल तहं अति अमल दादुर बोल रसाल
कटा चूई परै॥४

अलवेली कहुं बेलि, द्रुमन सीं लिपटि सुहाई। धोये धोये पातन की अनुपम कमनाई। चातक चिल कोयल लिति बोलत मधूरे बोल। कूकि कूकि केकी कलित, कुंजन करत कलोल निरुख घन की छटा॥५



इन्द्रधनुस श्री इन्द्रबधूटिन की सुचि सोभा। को जग जनस्यो मनुज, जास मन निरखि न लोभा। प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहुं श्रोर। काई कवि किति पै कहरि ताको श्रोर न कोर लसै मन मोहनी॥ई

कहं बालिका पुंज कुंज लखि परियत पावन।
सख-सरसावन सरल, सहावन हिय सरसाबन।
कोकिल-कंठ-लजावनी, मनभावनी ग्रपार।
भारत-प्रेम-सरसावनी, रागत मंजु मल्हार
हिंडोलिन भूलतीं॥०

बालहन्द इरसत उर-दरसत चहुं चिल आवें।

मध्र मध्र मुसकाद रहस बतियां बतरावें।

तरुवर डार हलावहीं, 'धीरो' 'धूमरि' टेरि।

सन्दर राग अलापहीं, भौरा चकई फेरि

विविध क्रीड़ा करें। प

लखि यह सुखमा-जाल लाल-निज-बिन नंदरानी।
हरि सुधि उमड़ी बुमड़ी तन उर ग्रति ग्रकुलानी।
सुधि बुधि तजि माथी पकरि, करि करि सोच ग्रपार।
हग जल मिस मानह निकरि, बही बिरह की धार
कष्ण रटना लगी॥८



HINDI SELECTIONS

क्रणा-बिरह की बेलि नई ता उर हरियाई।
सोचन अश्व-विमोचन दोउ दलबल अधिकाई।
पाइ प्रेम रस बढ़ि गई, तन तक लिपटी धाइ।
फैल फूटि चहुंधा कई, बिथा न बरनी जाइ
अकथ ताकी कथा॥१०

कहित विकल मन महिर कहां हिर ढूंढ़न जाऊं। कब गिह लालन ललकत-मन गिह हृदय लगाऊं। मीरी कब छाती करों, कब सुत दरसन पाउं। कब मोद निज मन भरों, किहि कर धाइ पठाउं संदेसो स्थाम पै॥११

पढ़ी न श्रच्छर एक, ज्ञान सपने ना पायो।

दूध दही चारत में सबरो जनम गमायो।

मातिपता बैरी भये, शिचा दई न मोहि।

सबरे दिन योंही गये, कहा कहें तें होहि

मनहिं मन में रही॥१२

सुनी गरग सीं अनुसूया की पुख्य कहानी।
सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी।
विषद-ब्रह्मविद्या-पगी सैबेयो तिय रत।
शास्त-पारगी गारगी, मन्दालसा सयत
पढ़ीं सब की सबै॥१३

INTERMEDIATE

'जननी-जन्मभूमि सुनियत स्वर्गे हु सीं प्यारी। सो तिज सबरो मोह सांवर तुमिन विसारी। का तुम्हरी गित मित भई, जो ऐसो बरताव। किधी नीति बदली नई, ताको पखी प्रभाव कुटिल विष को भखो॥२२

'माखन कर पी'छन सी चिक्कन चारु सुद्दावत। निधुवन श्याम तमाल रह्यो जो हिय हरसावत। लागत ताके लखन सीं, मिति, चिल वाकी श्रोर। बात लगावत सखन सीं श्रावत नन्द-किसीर कितह' सीं भाजिकों॥२३

'वृही किलन्दी-कूल कदम्बन के बन छाये। बरन बरन के लता-भवन मन हरन सुहाये। वृही कुन्द की कुंज ये, परम-प्रमोद-समाज। पै मुकुन्द बिन बिस-भये, सारे सुखमा साज चित्त वांही धर्खो॥२४

'लगत पलास उदास, शोक में अशोक भारी। बीरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी। तिज तिज जिज प्रफुलित पनी, बिरह-बिधित अकुलात। जड़ ह है चेतन मनी, दीन मलीन लखात

एक माधी बिना ॥२५



HINDI SELECTIONS

'नित नूतन खन डारि सघन बंसी बट छैयां। फेरि फेरि कर-कमल, चराई जो इरि गैयां। ते तित सुधि अति ही करत, सब तन रहीं भुराय। नयन स्रवत जल, निहं चरत, व्याकुल उदर अघाय उठाये महीं फिरें॥२६

बचन-हीन ये दीन गज दुख सी दिन बितवत।
दरस-लालसा लगी चितत-चित इत उत चितवत।
एक संग तिनकी तजत, श्रलि कहियो, ए लाल।
क्यों न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल
मोह ऐसी तज्हो ॥२०

'नील-कमल-दल-खाम जास तन सुन्दर सीहै। नीलाखर वसनाभिराम विद्युत मन मोहै। भ्रम में परि घनखाम के, लखि घन खाम खगार। नाचि नाचि ब्रजधाम के, कूकत मोर खपार भरे खानन्द में ॥२८

'वा बिनु गो ग्वालनु को हित की बात बुकाबै।

श्रक् खतंत्रता, समता, सहभावता सिखाबै।

जदिप सकल बिधि ये सहत, दारुण श्रत्याचार।

पै न कक्षू मुख सी कहत, कोरे बने गंवार।

कोज श्रगुश्चा नहीं॥२८

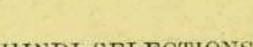


भये संकुचित-हृदय भीक श्रव ऐसे भय में। काक को विखास न निज-जातीय-उदय में। लिखयत कोड रीति न भली, निहं पूरव श्रनुराग। श्रपनी श्रपनी ढापुली, श्रपनो श्रपनो राग श्रलापैं जोर सीं॥३०

'नहिं देसीय भेस भावनु की आसा कोज। लखियत जो ब्रजभासा, जाति हिरानी सोज। आस्तिक वृधि बन्धनन से, बिगरीं सब मरजाद। सब काज के हिय बसे, न्यारे न्यारे खाद अनोखे ढंग के ॥३१

'वेलि नवेली अलबेली दोउ नम्झ मुहावें। तिनके कोमल सरल भाव को सब यस गावें। अबकी गोपी मदभरी, अधर चलै इतराय। चार दिना की छोहरी, गद्र ऐसी गरवाय जहां देखों तहां॥३२

'गोबरधन कर-कमल धारि जो इन्द्र लजायी। तुम बिन सो तिह को बदली अब चहत चुकायी। नहिं बरसावत सघन अब, नियम पूरबक नीर। जासों गो-कुल होत सब, दिन दिन परम अधीर न्यार सपनो भयो॥३३

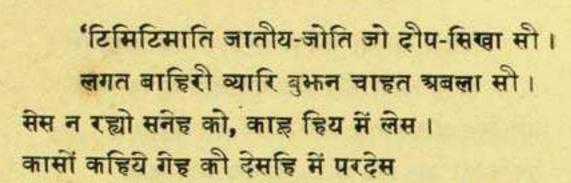


'पहले को सो अब न तिहारो यह हन्दाबन।
या के चारों श्रोर भये बहुबिधि परिवर्तन।
बने खेत चौरस नये, काटि घने बन पुंज।
देखन की बस रहि गये, निधुबन सेवा-कुंज
कहां चिर हैं गऊ॥३४

'पहली सी नहिं या जमुना ह में गहराई।
जल को यल, अह यल को जल अब परत लखाई।
कालीदह की ठीर जहं चमकत उज्जल रेत।
काकी माली करत तहं अपने अपने खेत
घरि भाजनि सों॥३५

'नित नव परम अकाल काल को चलत चक्र चहुं। जीवन को आनन्द न देख्यो जात इहां कहुं। बढ़यो यथेच्छाचार-क्षत जहं देखो तहं राज। होत जात दुर्बल विक्तत दिन दिन आर्यसमाज दिनन के फेर सीं ॥३६

'जे तजि मात्रभूमि सीं ममता, होत प्रवासी। तिन्हें बिदेसी तंग करत दै विपदा खासी। नहिं श्राय-निरदय दई, श्राय-गीरव जाय। सांप छक्टूंदर गति भई, मन ही मन श्रकुलाय रहे सब के सबै॥३०

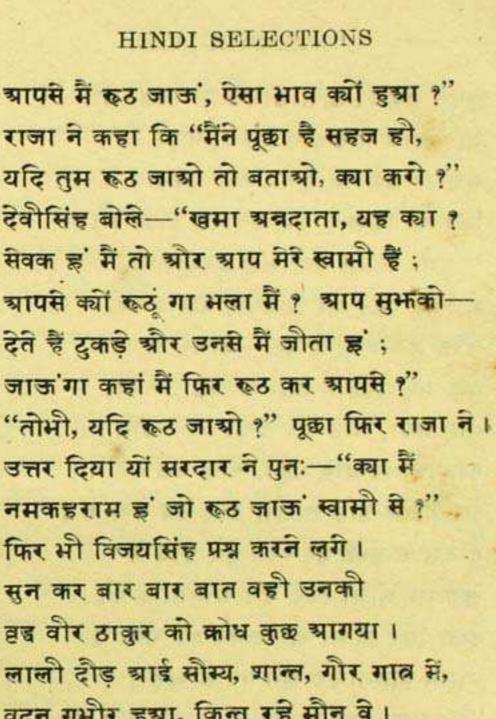


भयो अव जानिये' ॥३८

— सत्यनारायण 'कविरत्न'

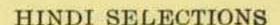
विकट भट

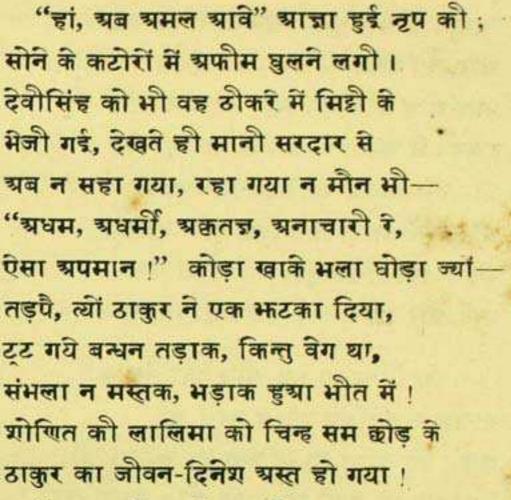
श्रीठों से हटा के रिक्त स्वर्ण-स्रा-पाव को,
सहसा विजयसिंह राजा जोधपुर के,
पोकरणवाले सरदार देवीसिंह से
बोले दरबार खास में कि—"देवीसिंहजी,
कोई यदि रूठ जाय सुभसे तो क्या करे?"
बोले सरदार—"खमा पृष्णीनाथ, यह क्या?
ऐसा कीन होगा कि जो रूठ जाय ग्राप से?"
बोले फिर भूप—"तो भी पूक्ता हं, क्या करे?"
"जीवन से हाथ धोवे श्रीर मरे सुभसे"
देवीसिंह ने यों कहा। भूप फिर बोले यों—
"श्रीर तुम रूठ जाश्रो तो बताश्रो, क्या करो?"
देवीसिंह चौंके—"खमा पृष्णीनाथ, यह क्या!



वदन गभीर हुआ, किन्तु रहे मीन वे। बोले फिर भूप—"देवीसिंहजी, कहा नहीं? यदि तुम रूठ जाओ सुभसे तो क्या करो?" "पृष्वीनाथ, मैं जो रूठ जाऊ" कहा वीर ने— "जोधपुर की तो फिर बात ही क्या, वह तो रहता है मेरी कटारी की पर्तली में ही, मैं यों 'नवकोटी मारवाड़' को जलट टूं।" कहते हुए यों ढाल सामने जो रक्वी थी, बायें हाथ से उन्होंने उलटी पटक दी! सन्नाटा सभा में हुआ, सब चुपचाप थे; सिर को हिलाते हुए सन्न रहे राजा भी!

दूसरे दिवस देवीसिंह दरबार में जान के लिए जो सिंहपीर पार करके, चौक में-करों के बल-पीनस से उतरे, एक जन पीछे से उठा के खड़ उनका, भाग गया, लीट कर देखा जी उन्होंने तो ढाल ही दिखाई पड़ी, चौंक उठे तब वे! चारीं और दृष्टि डाली, द्वार सब बन्द थे; पीनस के डगड़े पर रक्खे हुए हाथ वे चण भर सोचा किये इस अभिसन्धि को। देखा सिर जंचा कर जपर को अन्त में-सामने विजयसिंह कत पर थे खड़े। "मेरे साथ ऐसा व्यवहार! भला, अब क्या इच्छा है ?" उन्होंने कहा भूपति को देख के। याज्ञा चुई-"शीव्र इसे जीता ही पकड़ लो!" पीनस का डंडा किन्तु अब भी या हाय में, जाता कीन मरने को ठाकुर के सामने! फन्टे तब फेंके गये उनके फंसाने को और वे फंसाये गये, बांधे गये खन्भ से !





"हाय! पिता, ऐसा परिणास हुआ आपका! किन्तु आपका ही पुत्र हं मैं, यदि राजा के सामने प्रणत हो जं तो मैं नत हो जंगा अपनी ठकुरानी के आगे, यही प्रण है। आता है चढ़ाई कर पोकरण, आने दो, देखूंगा कतन्न को मैं, प्रस्तुत हो भाइयो, मान रखने को आज प्राण हमें देने हैं।" यों कह सबलिंह पोकरण दुर्ग में बोले फिर—"जाय वह प्राण जिसे प्यारे हों, प्रस्तुत हो मरने के अर्थ जो रहे वही।"



"प्रस्तुत हैं हम सब" सैनिकों ने यों कहा श्रीर, जो कहा सो सब करके दिखा दिया; प्राण-मोह छोड़ उन सुट्टी भर वीरों की— टुकड़ी ने भंभा के समान, जोधपुर के घोर दल-बादल को छिन्न-भिन्न करके श्रीर भली भांति से उड़ाके घूलि उसकी रण में सबलसिंह-युक्त गति वीरों की— पाई श्रीर मानों स्वर्ग लेकर ही शान्ति ली!

सबल पिता का पुत्र, पौत्र देवीसिंह का बालक सवाईसिंह बारह बरस का, लड़ने को उदात था; किन्तु था अकेला ही; सेना हत हो चुकी थी पहले ही। राजा का हुका हुआ—"जोधपुर हाजिर करो उसे।"

"बटा, तुर्भ राजा ने बुलाया है, न जाने से तू भी न बचेगा, किन्तु"—बीच में ही माता से बोला वीर बालक कि "जननी, मैं जाऊंगा। किन्तु इससे नहीं, कि यदि मैं न जाऊंगा तो में भी बचूंगा नहीं, किन्तु इससे कि मैं देखूंगा कतन्न और क्रूर उस राजा के सींग पूंछ हैं या नहीं, क्योंकि पश्चओं से भी नीच तथा मूढ़ महा मानता हां मैं उसे।"



HINDI SELECTIONS

बोली तब वीर-माता आंसुओं से भीग के-"वला, जाने में भी मुक्ते चेम नहीं दीखता। ससुर गये हैं और खामी गये साथ ही, मेरे लाल, तू भी चला, कैसे धरू' धैर्थ में ? रोने तक का भी अवकाश सुभी है नहीं; तो भी यानवान विना मरना है जीना भी। तुभाको भी प्राणहीन देख सकती हं मैं, किन्तु मानहीन देखा जायगा न सुभसे। सहना पड़ेगा सो सहंगी, किन्तु देखना, कहना वही जो कहा तेरे पितासह ने ; भूल मत जाना जिस बात पर वे मरे। ग्रच्छा, कह, तेरी कटारी की पर्तली में भी जोधपुर है या नहीं ?" पुत्र तब बोला यों-"इसका जवाब उसी घातक को दूंगा मैं; तू क्यों पूछती है प्रस्, क्या इस शरीर में शोणित क्रमागत नहीं है उन्हीं दादा का ? किन्तु एक प्रार्थना मैं करता हं तुभासे, अन्ततः मां, भेरा वह उत्तर सुने विना कोडना न नम्बर श्रीर यह अपना। अपने अभागे इस पुत्र के विषय में संगय लिये ही चली जाना तून तात के पौक्के, जिसमें कि उन्हें देन सके तोष तू!"



"जा, बेटा कदाचित सदा के लिये" हायरे! करुणा से कण्ड भर आया ठकुरानी का। जाकर अंधेरी एक कोठरी में वेग से, पृथ्वी पर लोट वह रोई ढाढ़ मार के, व्योम की भी छाती पर होने लगी लीक-सी!

पुनरपि जोधपुर। जीत पोकरण को पीकर विजयसिंह एक प्याला और भी, बोले आइए के सरदार जैतसिंह से-"जैतसिंह जी, क्या कहीं कोई ठीर ऐसा है डक्के को बजा कर मैं जाऊ जहां चढ़ के?" बोले जैतसिंइ—"पृथ्वीनाय, भला कौन-सा ऐसा ठौर है कि जहां जोधपुर के धनी डक्के को बजा के चढ़ें ?" भूप फिर बोले यों-"मैंने दूर दूर तक सोच कर देखा है, किन्तु तो भी दीख नहीं पड़ता है मुभको, जाऊं जहां चढ़के मैं। देखूं, तुम्हीं सोचके ऐसा ठीर बतलात्रो।" जैतसिंह बोले यों-"पृथ्वीनाथ, ऐसा कीन ठीर है बताऊं जो ?" "तो भी" कह ठाकुर की ग्रोर जो महीप ने देखा तो भ्कुटियां थीं टेढ़ी वहां हो रहीं। बोला सरदार—"पृथ्वीनाथ! पृक्ते ही हैं तो मैं कई ऐसे ठीर आपको बताऊंगा,



HINDI SELECTIONS

जैसे है उदयपुर जयपुर है, जहां— जावें तो हुजूर के भी दांत खंदे हो जावें! किन्तु वे तो दूर भी हैं, सेवक को आज्ञा हो, जाजं आहुए मैं और पृथ्वीनाथ डङ्का दे चढ़कर आवें वहीं!" वीर चुप हो गया।

"ऐसा है!" महीप बोले—"तो मैं बिदा देता हं, आहुए पधारें आप और सावधान हों।" कहके "जो आज्ञा" उठे जैतसिंह शीव ही; डिरे पर आये और आहुए चले गये।

भाई-बन्द श्रीर सब सैनिक भी श्रपने
जोड़ के उन्होंने सब हाल कहा उनसे।
बोले सब—"चिन्ता कीन-सी है? चढ़ श्राने दो,
क्या कर सकेंगे महाराज यहां श्रपना?"
सत्य ही विजयसिंह श्राहुए का, कोप से
करके चढ़ाई भी न कर सके कुछ भी।
तीन दिन बीत गये युद्ध करते हुए।
बोले तब वे कि—"श्ररे, दूटा नहीं श्राहुशा?"
उत्तर मिला यों—"खमा पृथ्वीनाय, श्रव भी
श्राहुए में जैतसिंह जीवित जो बैठे हैं।"
सोचा तब भूप ने कि टूटा नहीं श्राहुशा
यह तो कलङ्क होगा, "श्रच्छा, जैतसिंह से
जाकर कहो कि हमें दुर्ग में वे श्राने दें,

रोकें नहीं।" ठाकुर ने आज्ञा यह उनकी मान ली, यों भूपित ने आहुए के दुर्ग में जाकर प्रवेश किया, ठाकुर ने उनकी फेर दी दुहाई, नजरें दीं, मनुहारें कीं, और उनके ही साथ आये जोधपुर वे।

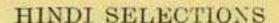
किन्तु रात को जो वहां सोय वे महल में तो फिर जगे नहीं, सबेरे यों सुना गया— "जैतिसंह मारे गये सोते हुए रात को!"

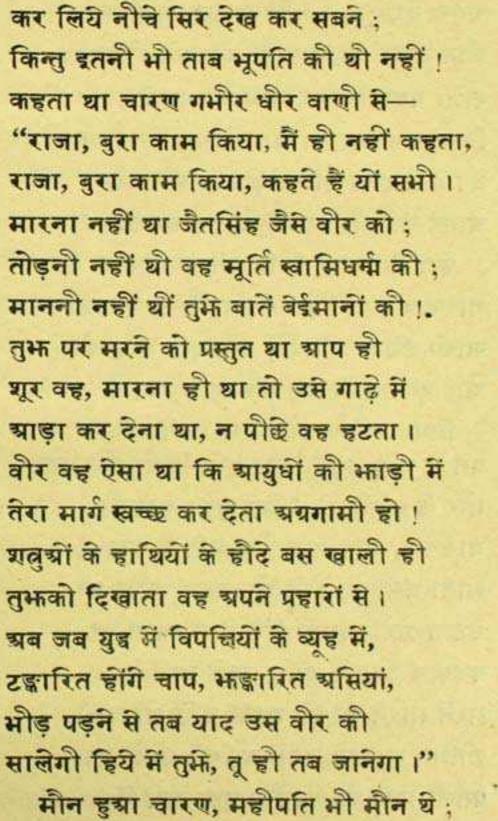
सुन सब लोग हाय! हाय! करने लगे; कहता परन्तु कीन भूपति से कुछ भी? बोला एक चारण कि—''मैं कहंगा राजा से!''

पहुंचे उसी दिन सवाईसिंह भी वहां; देख कर लोग उन्हें हाथ मलने लगे— वारी है अब हा! इस केसरी-किशोर की!

दो दो निज कर्एक जो सालते थे, टाल के बैठे हैं विजयसिंह श्राम दरबार में ; किन्तु क्यों, न जानें, श्राज भी हैं वे उदास-से। सब सरदार भी हैं बैठे मीन भाव से, मानों स्तब्ध रजनी में तारागण व्योम के!

"राजा, बुरा काम किया" गूंजी गिरा सहसा! चौंक कर भूपति ने देखा तब सामने और दरबारियों ने, चारण था कहता।





मीन हुआ चारण, महीपति भी मीन थे सचमुच जैतसिंह ऐसा ही पुरुष था। पोकरण और आहुआ थे जोधपुर के— यर्गल दो, टूट गये किन्तु यब दोनों ही कौन यवनों को, मराठों को, यब रोकेगा ? राजा पक्ताये, भर याये नेत्र उनके ; किन्तु बस क्या या यब होगया सो होगया। जी में कृद हो रहे थे भूप पर लोग जो यागई उन्हें भी दया दैन्य देख उनका!

हाय के द्रशारे से बिठाते हुए शान्ति से चारण को, बोले वे—''सवाईसिंह है कहां? लाओ उसे शीव्र" दौड़े चोबदार शीव्र ही और बुला लाये उस एक कुलदीप को।

निर्भय स्गेन्द्र नया करता प्रवेश है— वन में ज्यों, डाले विना दृष्टि किसी त्रोर त्यों, भोर के भभूके-सा, प्रविष्ट हुत्रा साहसी बालवीर, मन्द मन्द धीर गित से धरा मानो धंसी जा रही थी, वदन गभीर था, उठता शरीर मानों ग्रंगे में न त्राता था, वचस्थल देख के कपाट खुले जाते थे, मरने मारने ही को मानों किट थी कसी, शोभित सखड्ग उसमें था खरे पानी का, पर्तली पड़ी थी उपवीत-तुल्य कम्बे में, उसमें कटार खोंसी, जिसकी समानता करने को भीहें भव्य भाल पर थी तनी!



कू रहा या बायां हाय बढ़ कर जानु को, दायें हाय में थी सांग, पीठ पर ढाल थी; तोड़े के खरूप में या सोना पड़ा पैरीं में; आकृति ही देती थी परिचय प्रकृति का!

चौंक पड़ी सारी सभा देख वीर बाल को ; जान पड़ा भूप को कि देवीसिंह ही नया-जन्म लेके आ रहे हैं आज फिर से यहां! चाल वही, ढाल वही, गौरव वही तथा गर्व भी वही है! तब प्रश्न किया राजा ने— "बालक, सुनो, क्यों तुम्हें मैंने बुला भेजा है, जोधपुर रहता या पर्तली में जिसकी देवीसिंह वाली सो कटारी कहो सुभसे, अब भी तुम्हारे पास है या नहीं ?" राजा के पूछने के साथ ही सवाईसिंह ने कहा निर्भय- "कटारी ? धरा कांपी सदा जिससे ?" 'कराउ भी वही है अहा!' जी में कहा राजा ने सुन के- "कटारी ? धरा कांगी सदा जिससे ? बिजली की वेटी वह ? भीं ह महाकाल की ? शत के चवाने को कराल डाढ़ यम की ? चम्पावत ठाकुरों की 'पत' वह लोक में ? पूछते हैं ग्राप क्या उसीकी बात ?" राजा का उनके न जानते ही समाति के अर्थ में

INTERMEDIATE

माथा डुला, कहता था बालक—"तो सुनिये, दादा ने कटारी वह मेरे पिता के लिए कोड़ी, और मेरे पिता सौंप गये मुक्तको। पर्तली के साथ वह मेरे इस पार्श्व में अब भी है पृथ्वीनाथ, एक जोधपुर क्या ? कितने ही दुर्ग पड़े रहते हैं सर्वदा चात्र-कीर्ति-कोषवाली पर्तली में उसकी! सची बात कहने से आप रूठ जायंगे; किन्तु जब पृक्षते हैं कैसे कहं भूठ में ? होता जो न जोधपुर पर्तली में उसकी, कहिये तो कैसे वह प्राप्त होता आपको ?"

सिंहासन छोड़ उठे भूपित तुरन्त ही, छाती से लगा के उस चित्रयकुमार को चारण से बोले यों कि—"बारटजी, सत्य ही मैंने बुरा काम किया, भूल हुई सुभासे। किन्तु देवीसिंह और जैतसिंह दोनों ही मर के भी जीवित हैं, देखो, इस बच्चे को और आशीर्वाद दो कि यह सख से जिये। मैं भी यही आशीर्वाद आज इसे देता हं।"

—मैथिलीशरण गुप्त।



वालापन

चित्रकार! क्या करुणा कर फिर मेरा भोला बालापन मेरे यौवन के अञ्चल में चित्रित कर दोगे पावन ? १ याज परीचा तोली यपनी कुशल-लेखनी की ब्रह्मन् ! उसे याद आता है क्या वह अपने उर का भाव-रतन ? २ जब कि कल्पना की तन्त्री में खेल रहे थे तुम करतार! तुम्हें याद होगी, उससे जो निकली थी ग्रस्फुट-भङ्गार ? ३ हां, हां, वही, वही, जो जल, यल, यनिल, यनल, नभ से उस पार एक बालिका के क्रन्दन में ध्वनित हुई थी, बन साकार। ४ वही प्रतिध्वनि निज बचपन की कलिका के भीतर अविकार रज में लिपटी रहती थी नित, मध्वाला की-सी गुज्जार : ५

यौवन के मादक-हाथों ने उस कलिका को खोल अजान, कीन लिया हा! श्रोस-बिन्दु-सा मेरा मधुमय, तुतला-गान! ६

श्रहो विख्वस्ज ! पुनः गृंघ दो वह मेरा बिखरा-संगीत मा की गोदी का घपकी से पला हुआ वह स्वप्न पुनीत । ७

वह ज्योत्स्ना से हर्षित मेरा कलित कल्पनामय-संसार, तारों के विसाय से विकसित विपुल भावनाओं का हार; प्र सरिता के चिकने-उपलां-सी

मेरी इच्छाएं रङ्गीन, वह अजानता की सुन्दरता, वह-विश्व का रूप नवीन; ट

यहो कल्पनामय! फिर रच दो वह मेरा निर्भय-यज्ञान, मेरे यधरों पर वह मा के दूध से धुली सदु-सुसकान। १०



HINDI SELECTIONS

मेरा चिन्ता-रहित, अनलसित, वारि-विम्ब-सा विमल-हृदय, इन्द्रचाप-सा वह बचपन के सटुल-अनुभवों का समुदय; ११

खर्ण-गगन-सा, एक ज्योति से आलिङ्गित जग का परिचय, इन्दु-विचुम्बित बाल-जलद-सा मेरी आणा का अभिनय; १२

इस अभिमानी-अञ्चल में फिर अङ्गित करदो, विधि! अकलङ, मेरा कीना-बालापन फिर करूण! लगादो मेरे अङ! १३

विह्नग-बालिका का-सा सृदु-खर, अर्ध-खिले, नव, कोमल-अङ्ग, क्रीड़ा-कौतूहलता मन की, वह मेरी आनन्द-उमङ्ग; १४

यहो दयामय! फिर लीटादो मेरी पद-प्रिय-चञ्चलता, तरल-तरङ्गों-सी वह लीला, निर्विकार भावना-लता।१५

INTERMEDIATE

धूलभरे, घु'घराले, काले, भय्या को प्रिय मेरे बाल, माता के चिर-चुम्बित मेरे गोरे, गोरे, सस्मित-गाल ; १६

वह कांटों में उलभी साड़ी, मञ्जल फूलों के गहने, सरल-नीलिमामय मेरे हग अख-हीन, सङ्गोच-सने; १७

उसी सरलता की स्थाही से सदय! इन्हें श्रक्तित करदो, मेरे यौवन के प्याले में फिर वह बालापन भरदो! १८

हा! मेरे बचपन-से कितने बिखर गए जग के शृङ्गर! जिनकी अविकच-दुर्बलता ही थी जग की शोभालङ्गर; १८

जिनकी निर्भयता विभूति थी, सहज-सरलता शिष्टाचार, श्री जिनकी श्रवोध-पावनता थी जग के सङ्गल का दार! २०



HINDI SELECTIONS

हे विधि ! फिर अनुवादित करदो उसी सुधा-स्मिति में अनुपम मा के तन्मय-उर से मेरे जीवन का तुतला-उपक्रम ! २१

—सुमिवानन्दन 'पंत'।

वे दिन

नव मेघों को रोता था जब चातक का बालक मन, इन आंखों में करुणा के घिर घिर आते थे सावन! किरणों को देख चुराते चित्रित पंखों की माया, पलके आंकुल होती थीं तितली पर करने छाया! जब अपनी निखासों से तारे पिचलाती रातें, गिन गिन धरता था यह मन उनके आंसू की पांतें। जो नव लज्जा जाती भर नभ में कलियों में लाली, वह सदु पुलकों से मेरी छलकाती जीवन-प्याली। घर कर अविरल मेघों से जब नभमण्डल भुक जाता, अज्ञात बेदनाओं से मेरा मानस भर आता। गर्जन के द्रुत तालों पर चपला का बेसुध नर्तन; मेरे मनबालिश्यों में संगीत मधुर जाता बन।

किस भांति कहं कैसे थे वे जग से परिचय के दिन! मियी सा घुल जाता या मन कृते ही यांस्-कन। अपनेपन की छाया तब देखी न सुकुरमानस ने ; उसमें प्रतिबिब्बित सबके सुख दुख लगते थे अपने। तब सीमाहीनों से या मेरी लघुता का परिचय; होता रहता या प्रतिपल स्मित का आंस् का विनिमय परिवर्तन-पथ में दोनों शिशु से करते थे क्रीड़ा; मन मांग रहा या विसाय जग मांग रहा या पीड़ा! यह दोनों दो श्रोरें थीं संस्टित की चित्रपटी की ; उस बिन मेरा दुख सूना मुभ बिन वह सुषमा फीकी। किसने अनजाने आकर वह लिया चुरा भोलापन ? उस विस्सृति के सपने से चौंकाया कूकर जीवन। जाती नवजीवन बरसा जो करूणघटा कण कण में, निस्पन्द पड़ी सोती वह अब मन के लघु बन्धन में ! स्मित बनकर नाच रहा है अपना लघु सुख अधरों पर ; अभिनय करता पलकों में अपना दुख आंसू बनकर। अपनी लघु निम्बासीं में अपनी साधीं की कम्पन ; अपने सीमित मानस में अपने सपनों का स्पन्दन ! मेरा अपार वैभव ही मुभसे है आज अपरिचित; हो गया उद्धि जीवन का सिकता-कण में निर्वासित! स्मित ले प्रभात ग्राता नित दीपक दे सन्ध्या जाती: दिन ढलता सोना बरसा निश्चि मोती दे मुस्काती।

-महादेवी वर्मा।



HINDI SELECTIONS

यस्पुट मर्मर मं, यपनी गित की कलकल उल्माकर, मेरे यनन्तपथ में नितसंगीत विद्यात निर्मर। यह सांसे गिनते गिनते नम की पलके भप जातीं; मेरे विरिक्तियञ्चल में सीरम समीर भर जातीं। मुख जोह रहे हैं मेरा पथ में कब से चिर सहचर! मन रोया ही करता क्यों यपने एकाकीपन पर? यपनी कण कण में विखरीं निधियां न कभी पहिचानीं; मेरा लघु यपनापन है लघुता की यकथ कहानी। मैं दिन को ढूंढ रही हं जुगनू की उजियाली में; मन मांग रहा है मेरा सिकता हीरक-प्याली में!

1421 B.T.

ERRATA

Page	Line	Read	For
1	3	नाजुक	नाजक*
,,	12	ख्यी	खगी*
.,,	14	मालूम	मालम*
2	3	फैलता	फलाता
3	5	फूल	फल*
**	12	किंक तें व्यताविसूद	किंक र्तव्यता मृद
**	15	चांखें .	ष्रांखे*
7	19	वाहर	वाहर
9	17	करना	करनी
11	22	दुष्कृति	दुष्कति*
12	17	प्रवश्चन	प्रवचन*
13	2	निसां कोच	निसंकोच
. 19	9	न्यून	न्यन*
14	3	जो *	जो*
15	5	यापसवाली	आपस वाली
16	18	उसे "	उस*

Note-Words marked with * (asterisk) contain broken types, which may not be in the same condition in all the copies.

1421 B.T.



Page	Line	Read	For
19	21	यी	है
24	1	जर्मनी	जर्मन
25	19	सव	सव
33	13	खदेशीकमी	खदेशी कर्मी
35	-11	खज़ान्ची	खजानची
36	10	श्रोर	श्रीर
37	3	दिव्य	दव*
39	6	खाधीनता दे दी	स्वाधीनता दी
48	13	मीजूद	मोजद*
5()	15	ज़माना	जमाना*
51	17	बिगड़	विगड़
53	4	पैर	पर*
93	21	द्रप्रकृ	द्रशक्
54	13	नखिशिख	नख सिख
,,	"	नायिका-भेद	नायिका भेद*
5 8	1	₹;	नहीं
2,	5	बड़ी	वड़ी
60	12	सुख	सूख
61	13	करती	करते
63	9	सर्टी फ़िकेट	सार्टीफ़िकेट
66	2	कुरान	कुरान*

1
(anne
(Constant
A CONTRACTOR OF THE PARTY OF TH
CENTRAL LIBRARY
GENTRAL LIBRART

Line	Read	For
2	सीक्रेटीज	सीक्रेटीज*
3	सुख-भोग	सुख-संभोग
22	मालूम	मालम*
11	निमग्न 🔭	निमग्र
20	की	को
12	निर्मुल	निर्मल*
9	दंडी	∗दडी*
3	श्रीर ऐसी धीरता	श्रीर धीरता
9	ग्रभ	ग्रभ*
19	धंधली 💮	धंधली*
20	सोच-सोचकर	साच-सोचकर*
13	भंभलाइट	भंभलाइट
8	डाले	डाले .
18	प्रकाशित	प्रकाश
13	करता है आपकी	करता आपकी
1	के वास्ते	वास्ते
16	हीज़ीं 💮	हीजीं* 🐠
17	रही है	रहा है*
19	दाहिन	दाइने
14	सत्य हुं	सत्य*
18	उन्हीं	उन्हों
	2 3 22 11 20 12 9 3 9 19 20 13 8 18 13 1 16 17 19 19	2 सीक्रेटीज़ 3 सख-भोग 22 मालूम 11 निमग्न 20 की 12 निर्मूल 9 दंडी 3 ब्रीर ऐसी धीरता 9 ग्रुभ 19 धृंधली 20 सोच-सोचकर 13 भंभलाइट 8 डाले 18 प्रकाशित 13 करता है ब्रापकी 1 के वास्ते 16 हीज़ीं 17 रही है 19 दाहिने 14 सत्य हूं

Page	Line	Read	For
130	8	तहक़ीक़ात	तहकीकात*
131	14	ज़हर	जहर*
"	22	ज़रा	जरा*
132	20	ऐसी	ऐसा*
135	15	ज़बान	जबान*
"	18	फ़र्मा त	फर्माते*
"	22	वैकांठ	वैकांठ*
138	13	हेकर	हेकटर
"	f.n.	उदत 💮	उद्दत*
139	1	क्या	क्य*
145	3	पूका	पूंका
150	5	की	को
"	19	बाब्	बाब*
156	22	भूठा	भाठा*
162.	13	बाबू	बाब*
164	8	न त्यों	न वां
166	12	टांगी	टंगों
167	19	वालिकाभर	वालिश्तोभर
173	17	यकान	यकन
,,	22	मालूम	मालम*
175	5	मज़बत	मजबत*



Page	Line	Read	For
186	5	कमज़ोर	क मजोर*
192	22	भूरी	भरी*
196	11	ध्रवके	भ्रवके*
200	16	मंहस	मंहसे*
201	2	बद्गित	र्बदाश्त
202	20	वृत्त ।	हच
203	1	कुर्वान	कर्वान*
"	6	खु गीका	खुशीका*
205	15	खूब	खब*
,,	19	खामखा	खामखाइ
206	13	वर	. रवे
,,	"	खूब	खब*
207	3	खुगबू	खगव्*
,,	4	इत	इत्तर
212	12	खूब	खब*
218	10	गुस्रोसे	गस्रोमे*
221	17	मृत्यु के	मृत्यके*
244	10	श्रोर	श्रार*
251	17	खर्गवासी	स्वगवासी*
253	21	भगवति	भगवात*
258	6	क्रान	करान*



Page	Line	Read	For
258	19	मदारी	मदारो*
260	4	की	का*
261	17	वर्फ़ानी	वर्फानी*
263	21	चडुत	ग्रइत*
264	5	नहीं	नहा*
266	7	फ़ कीर	फकीर*
",	16	खून	खन*
268	9	तूफ़ान	तूफान*
,,	10, 12	जहाज़	जहाज*
269	21	साफ़	साफ*
271	4,8	जहाज़	जहाज*
272	10	की	का*
275	2	बर्फ़	वर्फ*
276	21	कुरान	कुरान*